भारत

भौतिक पर्यावरण

कक्षा XI के लिए पाठ्यपुस्तक

(सत्र II)

भारत
भौतिक पर्यावरण

कक्षा XI के लिए पाठ्यपुस्तक
(सत्र II)

लेखक
नूर मोहम्मद

सम्पादक
आर.पी. मिश्र

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
जनवरी 2003
पौष 1924

PD 40T RNB

ISBN 81-7450-172-X

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस श्री अरविंद मार्ग नई दिल्ली 110016	108, 100 फीट रोड, होस्डेकेरे हेली एक्सटेंशन बनाशंकरी III इस्टेज बैंगलूर 560085	नवजीवन ट्रस्ट भवन डाकघर नवजीवन अहमदाबाद 380014	सी.डब्लू.सी. कैंपस 32, बी.टी. रोड, सुखचर 24 परगना 743179

प्रकाशन सहयोग

संपादन : राजपाल
रामनिवास भारद्वाज

उत्पादन : अतुल सक्सेना
राजेश पिप्पल

आवरण : कर्णकुमार चड्ढा

मूल्य : रु. 40 .00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटर मार्क 70 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा नवटैक कंप्यूटर, 1982, गंज मीर खां, दरियागंज, नई दिल्ली 110 002 में लेजर टाईपसैट होकर शगुन **ऑफसेट प्रेस**, 92.बी, गली नं. ४ए कृष्णा नगर, सफदरजंग एन्क्लेव, नई दिल्ली.110 029 द्वारा मुद्रित

आमुख

प्रस्तुत पुस्तक *भारत : भौतिक पर्यावरण* कक्षा XI के भूगोल के विद्यार्थियों के लिए है। इसमें सत्र II का पाठ्यक्रम समाहित है। यह पुस्तक राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की विद्यालयी शिक्षा के उच्चतर माध्यमिक स्तर के लिए 2001 में संशोधित पाठ्यक्रम पर आधारित है।

दस वर्षीय सामान्य शिक्षा के उपरांत विद्यार्थियों में यथेष्ट परिपक्वता आ जाती है। वे अब अपनी रुचि, अभिरुचि और प्रवृत्ति के अनुरूप विषय का चयन करने में सक्षम हो जाते हैं। सत्र I में विद्यार्थियों ने भौतिक भूगोल के सैद्धांतिक पक्ष का अध्ययन किया था। प्रस्तुत पुस्तक में वे भारत के भौतिक पर्यावरण का अध्ययन करेंगे। देश की भौतिक संरचना में इसकी अवस्थिति, भू-आकृति, अपवाह, जलवायु, प्राकृतिक वनस्पति, मृदा और प्राकृतिक आपदाओं तथा संकटों की चर्चा विस्तारपूर्वक की गई है। इस चर्चा के द्वारा भौतिक संरचना में निहित प्रक्रियाओं और कारकों के अध्ययन पर विशेष बल दिया गया है, इससे विद्यार्थियों को सत्र IV की पुस्तक *भारत : लोग और अर्थव्यवस्था* की विषयवस्तु को बेहतर ढंग से समझने में सहायता मिलेगी।

पुस्तक में 7 अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय, विभागों और उप-विभागों में विभक्त है। अध्याय में प्रदत्त मानचित्र, सारणियाँ, बॉक्स, पुनरावृत्ति के रूप में अभ्यास और परियोजना कार्य विषयवस्तु को सहज ही बोधगम्य बना देते हैं। बॉक्सों में प्रकरणों से संबंधित अतिरिक्त जानकारी दी गई है। यह एक प्रकार की विशिष्ट अध्ययन प्रणाली है, जो विद्यार्थियों को विषय और प्रकरण से संबंधित मूल्यों को अपनाने में सहायक होगी।

विषय विशेषज्ञों, कार्यरत अध्यापकों और पाठ्यपुस्तकों के निर्माण में व्यस्त विभागीय सहयोगियों ने इस पुस्तक की समीक्षा और पुनरीक्षण किया है। पुस्तक प्रणयन के विभिन्न स्तरों पर प्रदत्त बहुमूल्य योगदान के लिए परिषद् इन विद्वानों के प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट करती है। हम आशान्वित हैं कि प्रस्तुत पुस्तक विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को पूरा करने की कसौटी पर खरी उतरेगी।

पाठ्यक्रम विकास और पुस्तक प्रणयन एक सतत् प्रक्रिया है। पुस्तक के उपभोक्ताओं से पुस्तक के गुणात्मक संवर्धन और परिवर्धन के लिए सुझावों और समीक्षाओं का सहर्ष स्वागत है।

जगमोहन सिंह राजपूत
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

अक्तूबर 2002
नई दिल्ली

भारत का संविधान

भाग 4क

नागरिकों के मूल कर्तव्य

अनुच्छेद 51क

मूल कर्तव्य – भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह –

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे,

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे,

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे,

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे,

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हों,

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे,

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे,

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे,

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे, और

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊंचाइयों को छू सके।

पाठ्यपुस्तक समीक्षा समूह

आर.पी. मिश्र
पूर्व उप-कुलपति
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

नूर मोहम्मद
प्रोफेसर, भूगोल विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

यशपाल सिंह (**अनुवादक**)
पूर्व उप-प्राचार्य
शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय
शिक्षा निदेशालय, दिल्ली

एस.एस. रस्तोगी
पूर्व प्राचार्य
शासकीय बाल उच्चतर माध्यमिक
विद्यालय, नई दिल्ली

एस.एल. गुप्ता
पूर्व रीडर
शहीद भगत सिंह महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

कमला मेनन
प्राचार्य
मीराम्बिका, नई दिल्ली

जे.सी. कलुआवत
पी.जी.टी., (भूगोल)
जवाहर नवोदय विद्यालय
बुदवा, राजस्थान

तारा भंडारी
पी.जी.टी., (भूगोल)
केन्द्रीय विद्यालय
गोल मार्केट, नई दिल्ली

जयालक्ष्मी सी. सेठ
उप-प्राचार्य
डी.टी.ई.ए. उच्चतर माध्यमिक विद्यालय
मोती बाग, नई दिल्ली

सुशील कुमार
पी.जी.टी., (भूगोल)
जवाहर नवोदय विद्यालय
दादरी, उत्तर प्रदेश

सविता सिन्हा
प्रोफेसर
सामाजिक विज्ञान और मानविकी शिक्षा विभाग
एन.सी.ई.आर.टी.
नई दिल्ली

बी.के. बनर्जी
रीडर
सामाजिक विज्ञान और मानविकी शिक्षा विभाग
एन.सी.ई.आर.टी.
नई दिल्ली

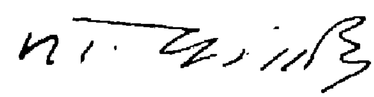
जे.पी. सिंह (**संयोजक**)
प्रोफेसर
सामाजिक विज्ञान और मानविकी शिक्षा विभाग
एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

गांधी जी का जंतर

तुम्हें एक जंतर देता हूँ। जब भी तुम्हें संदेह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आज़माओ :

जो सबसे गरीब कमज़ोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शक्ल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उसने उसे कुछ लाभ पहुँचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानि क्या उससे उन करोड़ो लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा संदेह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।



विषय-सूची

1 अध्याय

स्थिति और स्थानिक संबंध

हमारे देश भारत को इंडिया भी कहते हैं। यह अति प्राचीन काल से एक सुस्पष्ट भौगोलिक और सांस्कृतिक इकाई रहा है। पौराणिक राजा दुष्यंत के पुत्र भरत के नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा। अनेक विद्वानों के अनुसार प्राचीन काल में यहाँ रहने वाली भारत नाम की एक जनजाति के नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा है। इंडिया शब्द की व्युत्पत्ति सिंधु नदी के नाम से हुई है। पश्चिम से आने वाले हूण, यूनानी, फारसवासी, अरबवासी और अन्य देशवासी इसी नदी को पार करके भारत की मुख्य भूमि में प्रवेश करते थे। हिंदू शब्द की व्युत्पत्ति भी सिंधु नदी के नाम से हुई है। फारसवासी (आधुनिक ईरान) 'स' अक्षर का उच्चारण 'ह' के रूप में करते हैं। इसीलिए उन्होंने सिंधु का उच्चारण हिंदू के रूप में किया। अतः सिंधु के पूर्व की भूमि को हिन्दुस्तान कहा जाता था। यूनानी और रोमवासी सिंधु को इंडस और इसके पूर्व की भूमि को इंडिया कहते थे।

भौगोलिक और सांस्कृतिक भारत

भौगोलिक दृष्टि से भारत की सीमाएँ सुस्पष्ट हैं। इसके उत्तर-पश्चिम और उत्तर-पूर्व में विशाल पर्वत माला है तथा दक्षिण, पश्चिम और पूर्व में सागर हैं। विदेशी उत्तर-पश्चिम में स्थित खैबर और बोलन दर्रों से होकर ही भारत में प्रवेश कर सकते थे। खैबर, हिंदुकुश पर्वत में सफेद कोह के निकट तथा बोलन, सुलेमान और किरथर पर्वत श्रेणियों के मध्य स्थित है। पहले तो मध्य और पश्चिम एशिया की जन-जातियाँ इन्हीं मार्गों द्वारा भारत में आईं और बाद में सिकंदर, अफगानी तथा फारसी फौजों ने भी इन्हीं मार्गों का अनुसरण किया। व्यापार के लिए भारत पश्चिम एशिया, पूर्व-अफ्रीका और दक्षिण-पूर्व एशिया से समुद्री मार्गों द्वारा जुड़ा था।

संसार की जीवंत सभ्यताओं में से जितनी भी प्राचीन सभ्यताएँ हैं, भारतीय सभ्यता उनमें से एक या शायद सबसे प्राचीन है। भारत में मनुष्यों ने कब से रहना शुरू किया यह केवल अनुमान का ही विषय है। पुरातत्वीय खोजों के अनुसार मध्य पाषाणी युग में मध्य भारत के पर्वतों की गुफाओं में, गंगा नदी की घाटी के वनों में और दक्कन के पठार की ऊबड़-खाबड़ भूमि पर भोजन संग्राहक निवास करते थे। लगभग 3000 और 2000 ईसा पूर्व में इन्हीं लोगों के एक समूह ने सिंधु घाटी के आस-पास एक अति उन्नत सभ्यता का विकास किया। पाकिस्तान के पंजाब प्रांत का हड़प्पा संरक्षण की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ एक पुरातात्विक स्थल है। इसी के नाम पर इसे हड़प्पा सभ्यता कहा जाता है। कुछ कारणों से इस सभ्यता का ह्रास होने लगा। ह्रास के इन कारणों में प्रमुख थे : पहला, निचली सिंधु घाटी में विवर्तनिक उत्थान के कारण बार-बार आने वाली बाढ़े; दूसरा, प्राकृतिक संसाधनों का विशेषरूप से भूमि और वनों का अति उपयोग, और तीसरा, मध्य एशिया से आने वाली अन्य जनजातियों का भारी दबाव। ह्रास की यह प्रक्रिया 1600-1500 ईसा पूर्व में प्रारंभ हुई तथा 1300 ईसा पूर्व तक यह पूरी तरह नष्ट हो गई। हड़प्पावासी धातु के रूप में मुख्यतः कांसे का उपयोग करते थे। वे शायद लोहे के बारे में भी जानते थे, लेकिन वे इसका उपयोग यदा-कदा ही करते थे। हड़प्पावासियों के मिस्र और सुमेरिया (इराक) की समकालीन सभ्यताओं के साथ अच्छे व्यापारिक संबंध थे।

हड़प्पा की सभ्यता के विनाश के साथ ही भारत में एक नई संस्कृति का उदय हुआ। इस संस्कृति का प्रवाह आज भी जारी है। आर्य नाम से प्रसिद्ध लोगों के एक नए समुदाय का भारत में लगभग 1500 ईसा पूर्व में उदय हुआ। शायद वे मध्य एशिया से आए थे। वे संभवतः अनेक धाराओं में अनेक दशकों या शताब्दियों तक आते रहे थे। ये लोग पशु-पालन और कृषि की कला में पारंगत थे। वे लौह धातु कर्म से भी भली-भाँति परिचित थे। कुछ इतिहासकारों के अनुसार आर्य कहीं बाहर से नहीं आए थे। उन लोगों का एक समुदाय था। वे अनेक जातियों में बँटे थे। ये लोग

पश्चिम में फारस (आधुनिक ईरान), पूर्व में गंगा की घाटी तथा उत्तर में कैस्पियन सागर तक विस्तृत प्रदेश में घूमते रहे। पहले से ही कठिनाइयों से जूझ रहे हड़प्पावासियों को विस्थापित करके आर्य, गंगा और सरस्वती नदियों की घाटियों में बसने के लिए पूर्व की ओर बढ़ गए। यही नहीं, ये लोग दक्षिण में गुजरात तट तक भी पहुँच गए। वे हड़प्पावासियों और उनकी संस्कृति तथा पहले से विद्यमान अन्य जातियों में घुल-मिल गए। इन्होंने अति-उन्नत कृषि सभ्यता का विकास किया। आर्यों की भाषा वैदिक संस्कृत थी।

1000 ईसा पूर्व तक आर्य, संपूर्ण भौगोलिक भारत को एक ही सांस्कृतिक सूत्र में बांधने के लिए प्रायद्वीपीय भाग के दक्षिणी सिरे तक जा पहुँचे। आर्यों ने आदान-प्रदान की संस्कृति का विकास किया। व्यवसायों पर आधारित वर्ण-व्यवस्था स्थापित करके उन्होंने सांस्कृतिक विषमता तथा असमान सामाजिक-सांस्कृतिक विकास की समस्या का समाधान ढूँढ़ निकाला। उनके अनुसार चार वर्ण थे : ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र। अध्ययन-अध्यापन और पूजा पाठ ब्राह्मणों का दायित्व था। शत्रुओं से लोगों की रक्षा करना और शांति स्थापित करना क्षत्रियों का काम था। वैश्य अर्थव्यवस्था की जिम्मेदारी संभालते थे तथा शुद्र श्रमशक्ति प्रदान करते थे। कर्म (कर्तव्य) पर आधारित समाज का यह पूर्णतः व्यावसायिक वर्गीकरण था। काल के प्रवाह के साथ और विशेषरूप से विगत सहस्राब्दी में मानवीय दुर्बलता इस व्यवस्था पर हावी हो गई। समाज पर वर्चस्व रखने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों ने इस व्यवस्था को कट्टर बना दिया। उन्होंने कर्म का स्थान, जन्म को दे दिया। श्रम वर्ग के लोगों अर्थात् शूद्रों को उनके मौलिक मानवीय अधिकारों से भी वंचित कर दिया। देश के कुछ भागों में तो उन्हें अछूत ही माना जाने लगा। मूल सिद्धांत यह था कि सभी व्यक्ति जन्म के समय शूद्र होते थे। केवल शिक्षा (अर्थात् दूसरे जन्म) से वे ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य बन सकते थे। इस सिद्धांत को भुलाकर वर्ण-व्यवस्था जन्म पर आधारित कर दी गई।

समय के साथ वर्ण अनेक जातियों में बँट गए। परिणामस्वरूप आज भारत में सैंकड़ों नहीं, हजारों जातियाँ हैं। मूल वर्ण-व्यवस्था में तो समाज के प्रत्येक वर्ग को उसके अपने मानदंडों (नियमों), उपलब्धि के स्तर और गति के अनुसार उन्नति करने का पूरा अधिकार था। लेकिन अब तो यह वर्ण-व्यवस्था (जाति व्यवस्था) भारत की प्रगति में बहुत बड़ी बाधा बन गई है। इस व्यवस्था ने भारतीय समाज और राज्यतंत्र को इस सीमा तक विभाजित कर दिया है कि यदि कोई बाहरी खतरा नहीं है, तो वे एकजुट रह ही नहीं सकते। यह अनबन धर्मों की आपसी फूट इस सीमा तक बढ़ी कि 1947 में देश भारत और पाकिस्तान के रूप में दो टुकड़ों में बँट गया। जाति और समुदाय के आधार पर बँटे होने के बावजूद हम इस मुद्दे पर एक जुट हैं कि *भारत हमारी मातृभूमि है और हम अंतिम सांस तक इसकी रक्षा करेंगे।* लेकिन धार्मिक समुदायों के बीच समय-समय पर आपसी झगड़े होते रहते हैं। इससे देश की एकता और राष्ट्रीय अखंडता की भावना कमजोर पड़ने लगती है।

भारत ने प्रेम, अहिंसा और मानवीय भाईचारे पर आधारित एक उत्कृष्ट सभ्यता का विकास किया है। इसी देश में जन्मे बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य और महात्मा गांधी ने शांति और अहिंसा का संदेश दिया था। दुनिया को आज इस संदेश की पहले से कहीं अधिक आवश्यकता है। पत्थरों पर खुदे (पस्तर पट्टिकाओं या पट्टिकाओं पर उकेरे गए) ये संदेश भारत के पक्ष को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करते हैं और न्याय संगत पथ पर चलने के लिए लोगों का आह्वान करते हैं। काफिले गुजर जाते हैं, लेकिन यह पथ प्रशस्त रहता है। यह हमें याद दिलाता है कि भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठ विचार "वसुधैव कुटुंबकम" सारी पृथ्वी ही हमारा परिवार है, आज के भारत में फैले जातिगत और धार्मिक अलगाव के साथ कोई ताल-मेल नहीं है।

भारतीय चरित्र विविधा में उच्चकोटि की एकता को प्रदर्शित करता है। भारतीय राज्यव्यवस्था के इस अनुपम लक्षण के आविर्भाव में मदद देने वाले अनेक कारक हैं। इस सामाजिक व्यवस्था में प्रादेशिक विविधताओं के फूलन-फलन में उपमहाद्वीप के विशाल भौगोलिक विस्तार ने बहुत योगदान दिया है, भौतिक भू-दृश्यों की विभिन्नताओं ने प्रकृति के साथ मानव की अंतर्क्रियाओं की अनेक विधियों और प्रतिरूपों को जन्म दिया है। उपमहाद्वीपों के आस-पास के क्षेत्रों में विविध जातीय तत्त्वों का संकेंद्रण हो गया। इसने विशिष्ट प्रादेशिक संकेंद्रण के साथ बहुरूपी समाज को जन्म दिया है। आसानी से पहचाने जाने वाले

तीन प्रादेशिक संकेंद्रण ये हैं : पहला दक्षिण, जिसके समुद्र पार के लोगों के साथ लम्बे समय से संबंध रहे हैं, दूसरा उत्तर-पश्चिम, जिसने मध्य एवं पश्चिम एशिया के लोगों को हिमालय पर्वत के आर-पार आने-जाने के लिए मार्ग प्रदान किए हैं, और तीसरा उत्तर-पूर्व, जिसके दर्रों ने इस प्रदेश की पहाड़ियों और घाटियों में मंगोल जाति के लोगों के आकर बसने में मदद की है।

देश के सामाजिक चरित्र में निहित एकता को बढ़ाने वाले कारक ये हैं : (i) मानसून की ऋतुलय ने यहाँ के निवासियों को एकता के सूत्र में बाँधा है; (ii) देश में सांस्कृतिक एकता, एकीकरण और संघटन के मजबूत बंधन विद्यमान हैं। इन्हें विकसित करने में उत्तरदायी कारक देश के विभिन्न भागों में सांस्कृतिक तथा सामाजिक-आर्थिक विशिष्टताओं का प्रसार और निरंतर बढ़ते हुए अंतर्क्षेत्रीय संपर्क तथा आदान-प्रदान; और (iii) भारत में अंग्रेजी राज्य के दौरान क्षेत्रीय संपर्कों का विकास तथा क्षेत्रीय घरेलू बाजार का आर्विभाव। इन एकताकारी शक्तियों में सबसे महत्त्वपूर्ण थीं, प्राचीन काल की वैदिक और पौराणिक परंपराएँ। इन परंपराओं का विस्तार संपूर्ण भारत में सिंधु-गंगा के मैदान से उत्तर-दक्षिण और पूर्व तक था। आदान-प्रदान की प्रक्रिया दो स्तरों पर कार्य कर रही थी। एक थी ब्राह्मणी विद्या, जिसने संस्कृत के माध्यम से, विविध धार्मिक एवं बुद्धिजीवी विशिष्ट जनों के बीच सांस्कृतिक एकता के मजबूत बंधन विकसित किए। आगे चलकर ऐसी ही भूमिका फारसी और अंग्रेजी भाषाओं ने निभाई। दूसरा कारक था ग्रामीण भारत में भक्ति और सूफी संतों के उपदेश जिन्होंने सांस्कृतिक एकता को सुदृढ़ किया। वर्तमान भारत का विविधता में एकता पर दृढ़ विश्वास है।

राजनीतिक भारत

प्राचीन काल से ही लोग सांस्कृतिक और भौगोलिक भारत को एक राजनीतिक सत्ता के रूप में संगठित करने का प्रयास करते रहे हैं। इस कार्य में प्राचीन काल में अशोक महान, मध्यकाल में अकबर महान तथा उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेज लगभग सफल हो गए थे। अन्य अनेक लोगों ने इस दिशा में बहुत प्रयास किए, लेकिन परिवहन और संचार प्रौद्योगिकी ने उनका साथ नहीं दिया। पश्चिम से होने वाले विदेशी आक्रमणों से भारत को निरापद बनाने के लिए, भारतीय शासकों ने उस क्षेत्र को भी भारत में मिलाने का प्रयत्न किया, जिसे आज अफगानिस्तान कहा जाता है। उदाहरणार्थ, अफगानिस्तान अशोक और अकबर दोनों के ही साम्राज्य का अंग था। राजनीतिक भारत का क्षेत्र समय के साथ फैलता एवं सिकुड़ता रहा है। अशोक के साम्राज्य में वर्तमान भारत के दक्षिणी और उत्तर-पूर्वी भागों को छोड़कर लगभग सारा देश ही शामिल था। आज भारत में जितनी भूमि है, उन सब पर चंद्रगुप्त द्वितीय तथा औरंगजेब भी अपना शासन लागू नहीं कर पाए थे। लेकिन अंग्रेजों ने इसके अधिक भागों को अपने अधीने कर लिया था।

अंग्रेजों के आने के पहले से ही अकबर के वंशजों की शासन व्यवस्था कुप्रबंध के कारण लड़खड़ा गई थी तथा प्रांतों में अक्सर विद्रोह भड़क उठते थे। इसके बावजूद लगभग संपूर्ण भारत मुगल साम्राज्य के झंडे तले एकजुट था। भारतीय इतिहास की इन्हीं प्रवृत्तियों के संकेतों का अंग्रेजों ने भी सहारा लिया और भारत में एक ही राजनीतिक सत्ता की स्थापना के लिए प्रयास करने शुरु कर दिए। इस बात का श्रेय अंग्रेजों को ही दिया जाता है कि वे देश को एकजुट रखने में सफल रहे। यह एक अलग ही कहानी है कि जब वे गए तो, देश विभाजित और रक्तरंजित ही छोड़कर गए।

आज का स्वतंत्र भारत पहले जैसा सर्वमान्य उप-महाद्वीप नहीं है, जिसमें कभी भौगोलिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक एकता हुआ करती थी। अंग्रेजों द्वारा शासित भारत 1947 में भारत और पाकिस्तान के रूप में, दो देशों में बँट गया। 1971 में पाकिस्तान, बांग्लादेश और पाकिस्तान के रूप में खंडित हो गया। भारतीय गणतंत्र आज भी विशाल भू-भाग पर विस्तृत है। उत्तर, दक्षिण और धुर उत्तर-पूर्व में इसकी वही पुरानी सीमाएँ हैं। भारत के पश्चिम में पाकिस्तान तथा पूर्व में बांग्लादेश है। बांग्लादेश, गंगा और ब्रह्मपुत्र के डेल्टा की निम्न उपजाऊ भूमि पर विस्तृत है। स्थल की एक संकरी पट्टी भारत की मुख्य भूमि को उत्तर-पूर्वी भारत से जोड़ती है। पाकिस्तान, अफगानिस्तान, चीन, नेपाल, भूटान, म्यांमार , बांग्लादेश, मलेशिया, इंडोनेशिया, मालदीव और श्रीलंका भारत के पड़ोसी देश हैं। दक्षिण एशिया में इसकी स्थिति ऐसी है कि यह संपूर्ण हिंद महासागर पर नियंत्रण रखता है।

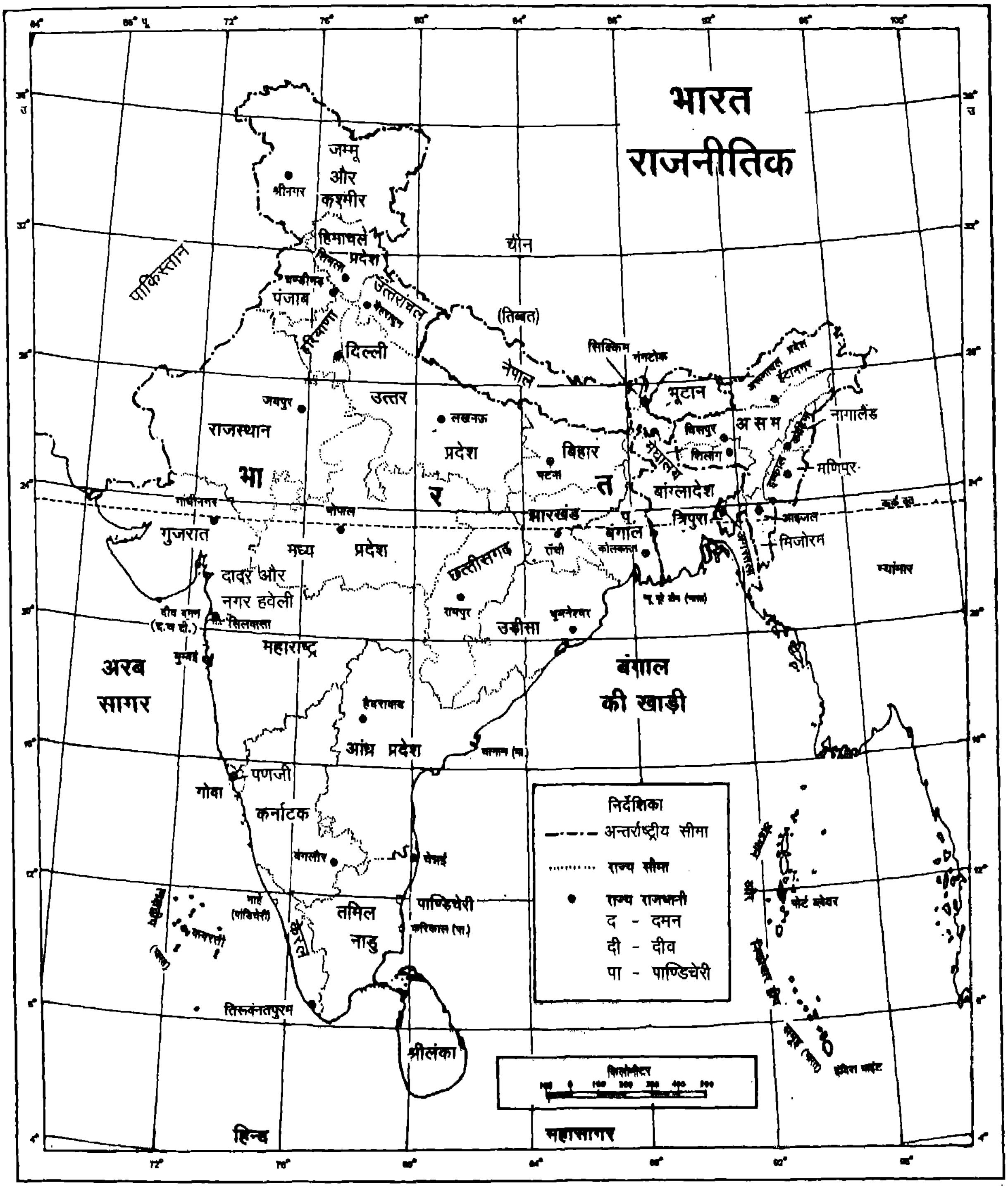
अशोक, अकबर और अंग्रेजों का भारत के लिए योगदान

- तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व अशोक एक यशस्वी राजा थे। उनका साम्राज्य अफगानिस्तान सहित लगभग पूरे उप-महाद्वीप पर विस्तृत था। बौद्ध धर्म की दीक्षा लेकर उन्होंने उसके सिद्धांतों और नियमों को स्तंभों और शैल शिलाओं पर खुदवा कर अपने साम्राज्य के प्रमुख स्थानों पर स्थापित किया। इन स्तंभों के चिह्न का राजकीय तथा अन्य दस्तावेजों (प्रलेखों) पर भारतीय परंपरा के प्रतीकों के रूप में उपयोग किया जाता है। अशोक ने अपने साम्राज्य को प्रांतों में तथा प्रांतों को जिलों में बाँट रखा था। यही प्रशासनिक विभाग आगे चलकर मुगलों और अंग्रेजों की शासन प्रणाली का आधार बने।
- मुगल शासकों में सबसे महान अकबर ने सोलहवीं शताब्दी में राज किया था। उनके पूर्वज मूलतः मध्य एशिया से आए थे। उनकी उदार नीतियों के कारण विभिन्न समुदायों के बीच सौहार्द बना रहता था। अकबर ने सैन्य अभियानों के साथ-साथ वैवाहिक संबंधों के द्वारा अपने साम्राज्य का विस्तार किया। उनका साम्राज्य सूबों (प्रांतों) सरकारों (जिलों) और परगनों या महालों (उप-जनपदों) में विभक्त था।
- अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अंग्रेजों ने सिंधु और गंगा के मैदान तथा तटीय क्षेत्रों में अपनी सत्ता स्थापित कर ली थी। उन्नीसवीं सदी के मध्य तक उन्होंने संपूर्ण उप-महाद्वीप पर कब्ज़ा कर लिया था। अंग्रेजों ने पूर्ववर्ती शासकों की प्रचलित शासन व्यवस्था और राजस्व प्रणाली को ही जारी रखा। उन्होंने विभिन्न प्रकार के नए कानून भी बनाए। इनके द्वारा कई उल्लेखनीय सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन हुए। राष्ट्रीय और प्रांतीय स्तर पर अंग्रेजी को राज की भाषा बनाकर अंग्रेजों ने अपनी सत्ता को और भी सुदृढ़ कर लिया था।

आकार और विस्तार

भारतीय गणतंत्र का क्षेत्रफल 32,87, 263 वर्ग कि.मी. है। क्षेत्रफल की दृष्टि से यह संसार का सातवाँ सबसे बड़ा देश है। इसकी जनसंख्या 1,03,00,00,000 के लगभग है। जनसंख्या की दृष्टि से भारत का चीन के बाद संसार में दूसरा स्थान है। कृषि योग्य भूमि की दृष्टि से संसार में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के बाद भारत दूसरे स्थान पर है। भारत की मुख्य भूमि 8°4′ उत्तर अक्षांश से लेकर 37° 6′ उत्तर अक्षांश और 68° 7′ पूर्व देशांतर से लेकर 97° 25′ पूर्व देशांतर के मध्य विस्तृत है। उत्तर से दक्षिण तक इसकी दूरी 3,214 कि.मी. तथा पूर्व से पश्चिम तक इसकी दूरी 2,933 कि.मी. है। कर्कवृत्त भारत को लगभग दो भागों में विभाजित करता है। भारत की स्थल सीमा पर पाकिस्तान, अफगानिस्तान, चीन, नेपाल, भूटान, म्यांमार और बांग्लादेश हैं। पूर्व में बांग्लादेश के साथ भारत की 4,096 कि.मी. लंबी, उत्तर में चीन के साथ 3,917 कि.मी. लंबी, अफगानिस्तान के साथ 80 कि.मी. लंबी तथा उत्तर-पश्चिम में पाकिस्तान के साथ 3,310 कि.मी. लंबी अंतर्राष्ट्रीय सीमा है। भारत की नेपाल के साथ 1,752 कि.मी. लंबी, म्यांमार के साथ 1,458 कि.मी. लंबी तथा भूटान के साथ 587 कि.मी. लंबी अंतर्राष्ट्रीय सीमा है। भारत की स्थल सीमा की कुल लंबाई 15,200 कि.मी. तथा समुद्री किनारे की कुल लंबाई 6,100 कि.मी. है। प्रायद्वीपीय पठार, हिंद महासागर में लगभग 1,600 कि.मी. की दूरी तक घुस गया है। इसी के कारण हिंद महासागर, दो सागरों अर्थात अरब सागर और बंगाल की खाड़ी के रूप में बँट गया है। भारत का विस्तार इतना अधिक है कि जब अरूणाचल प्रदेश में सूर्योदय होता है, तब राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की जन्मभूमि काठियावाड़ का पोरबंदर रात के अंधेरे में डूबा रहता है। भारत का दक्षिणतम भाग इंदिरा पाइंट निकोबार द्वीप समूह में है। इसके विपरीत भारत का उत्तरतम भाग जम्मू और कश्मीर राज्य में है। इस राज्य की उत्तरी सीमा पर पामीर है, जहाँ से विभिन्न दिशाओं में पर्वत श्रेणियाँ फैली हैं। इन दोनों भागों के बीच लगभग 3,000 कि.मी. का विस्तार है। इसीलिए भारत में विविध प्रकार के मौसम और जलवायु की दशाएँ तथा प्राकृतिक संसाधन हैं।

भारत में 28 राज्य और 7 केंद्र शासित प्रदेश हैं (चित्र 1.1)। पता लगाइए कि क्षेत्रफल की दृष्टि से कौन-सा राज्य सबसे बड़ा और कौन-सा सबसे छोटा है। यह भी पता



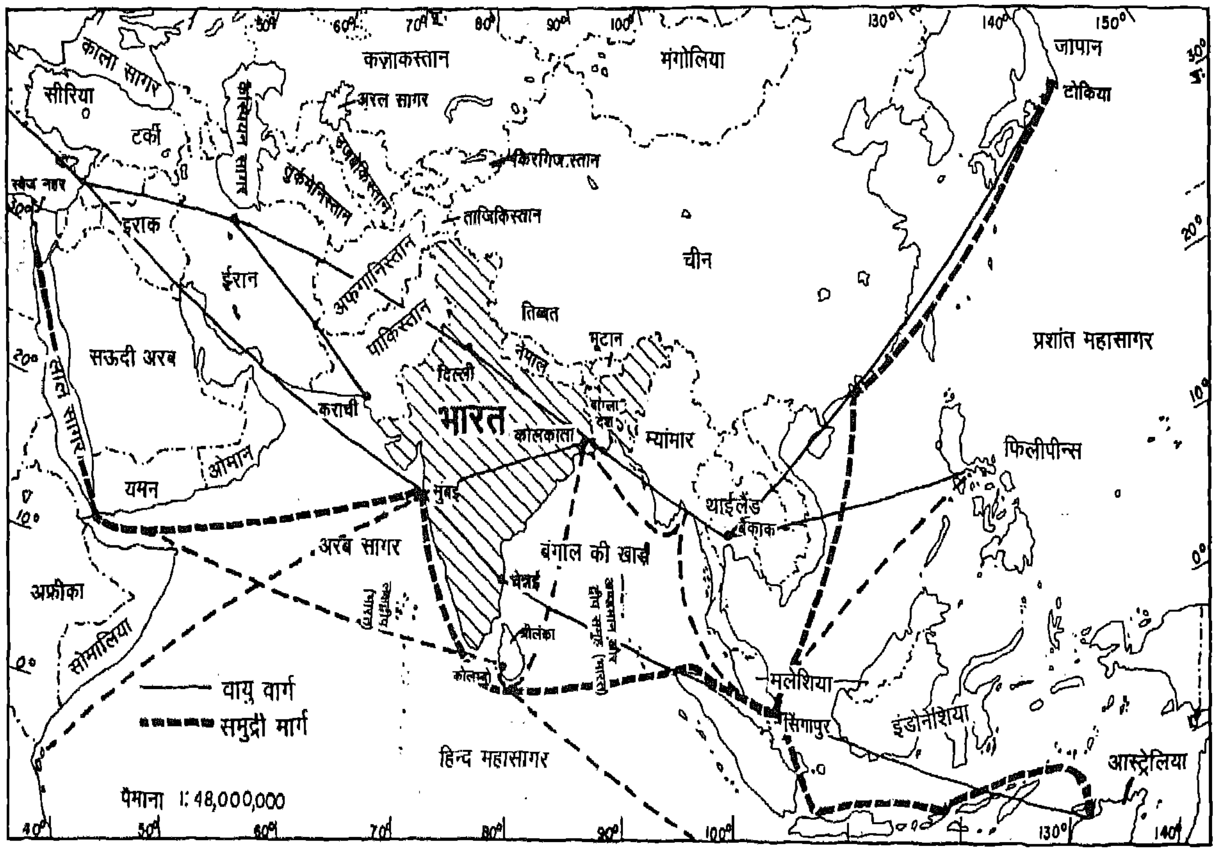
भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र में भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय के मध्य में दर्शायी गयी अन्तर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।
आन्तरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।
इस मानचित्र में दर्शित अक्षरविन्यास विभिन्न सूत्रों द्वारा प्राप्त किया है।

चित्र 1.1 *भारत : राज्य एवं केंद्र शासित प्रदेश*

लगाइए कि किस राज्य की जनसंख्या सबसे अधिक और किसकी सबसे कम है, और किस राज्य का जनसंख्या का घनत्व सबसे अधिक और किसका सबसे कम है।

पूर्वी दुनिया में भारत की स्थिति

भारत पश्चिमी एशिया तथा पूर्वी एशिया के मध्य में स्थित है (चित्र 1.2)। अफ्रीका, औद्योगिक दृष्टि से विकसित यूरोप तथा तेल-संपन्न पश्चिमी एशिया को दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों, चीन, विकसित उद्योग वाले जापान, आस्ट्रेलिया तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के पश्चिमी तट जोड़ने वाले महासागर पारीय जल-मार्ग भारत से होकर गुजरते हैं। दक्षिण-पूर्वी एशिया, पश्चिमी एशिया तथा अफ्रीका के पूर्वी तटवर्ती पड़ोसी देशों के साथ भारत के विदेशी संबंधों में सागर की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। दक्षिण-पूर्वी एशिया में भारतीय और चीनी संस्कृति का संगम हुआ है। इन दोनों संस्कृतियों ने स्थानीय संस्कृति के साथ मिल कर एक नई मिली-जुली संस्कृति को जन्म दिया है, जो हिंद-चीन जैसे शब्दों में प्रतिबिंबित हुई है। इसके बाद इस्लाम, ईसाई धर्म और यूरोपवासियों के आगमन से यह प्रदेश और समृद्ध हो गया। इससे यहाँ की संस्कृति में विविधता के नए रंग भर गए हैं, जो आज के दक्षिण-पूर्वी एशिया में झलकते हैं। जिन देशों में भारतीय संस्कृति की छाप आज भी स्पष्ट है, उनमें लाओस, कंबोडिया, थाईलैंड, म्यांमार, मलेशिया और इंडोनेशिया उल्लेखनीय हैं। इंडोनेशिया के द्वीपों के नाम जैसे सुमात्रा, जावा और बाली भारतीय



भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र में भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
आन्तरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 1.2 पूर्वी दुनिया में भारत की स्थिति

प्रभाव के स्पष्ट उदाहरण हैं। थाईलैंड (पुराना नाम स्याम) और कंबोडिया की स्थिति भी समान ही है।

भारत के पश्चिम में ईरान, संयुक्त अरब अमीरात, साऊदी अरब, तथा ओमान जैसे पश्चिमी एशियाई देश तथा मिस्र, सूडान, इथियोपिया, सोमालिया, केन्या, तंजानिया, यूगांडा और मारीशस जैसे पूर्वी-अफ्रीकी देश हैं। भारत के उत्तर में जम्मू-कश्मीर की सीमा से लगा चीन का सिनक्यांग (जिनजियांग) प्रदेश है। इस प्रदेश में तारिम बेसिन है, जहाँ कभी काशी (काशगर) और होतान (खोतान) की उत्कृष्ट सभ्यता फली-फूली थी। हिमालय के उस पार तिब्बत है, जो आज चीन का स्वायत्त प्रांत है। तिब्बत में प्रसिद्ध कैलाश पर्वत और मानसरोवर झील हैं, जो आज भी भारतीय तीर्थ यात्रियों को आकर्षित करते हैं। तिब्बत के साथ सदा से भारत के निकट सांस्कृतिक संबंध रहे हैं। तिब्बत के आध्यात्मिक गुरु दलाई लामा आजकल भारत में ही रहते हैं।

भौगोलिक दृष्टि से भी हमारा देश अनूठा है। अपने विशाल आकार, उच्चावच के लक्षणों, जनसंख्या और सांस्कृतिक विरासत के बावजूद दक्षिण एशिया में अपनी स्थिति के कारण यह एशिया, अफ्रीका, यूरोप तथा उत्तर व दक्षिण अमेरिका के अन्य भागों से सुगमता के साथ संपर्क बनाए रख सकता है। इसकी संस्कृति का प्रभाव अतीत काल से ही सीमाएँ लांघकर दूरस्थ देशों में पहुँच गया था। भारत संसार के विकासशील देशों के हितों के रक्षा के लिए विकसित देशों से संघर्ष करता रहा है। ऐसी ही भूमिका इसने पूर्व और पश्चिम के मध्य भी निभाई है। भारत को जितनी ताकत अपने भूगोल से मिली है, उतनी ही शक्ति इसे इसकी संस्कृति ने भी प्रदान की है। अपनी वर्तमान और भावी संतति तथा संपूर्ण मानवता के लिए इन दोनों की रक्षा और संरक्षण करना हमारा कर्तव्य है।

अभ्यास

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए :
   (i) उप-महाद्वीप किसे कहते हैं ?
   (ii) किसके नाम पर हमारे देश का नाम भारत पड़ा है ?
   (iii) सिंधु को इंडस (Indus) कौन लोग कहते थे ?
   (iv) भारत का देशांतरीय विस्तार कितना है ?
   (v) भारत कितने अक्षांशों में विस्तृत है ?
   (vi) किस देश की विजय के बाद अशोक ने युद्ध का त्याग किया था ?
   (vii) क्षेत्रफल और जनसंख्या की दृष्टि से संसार में भारत को कौन-सा स्थान प्राप्त है ?
   (viii) भारत के पश्चिम और पूर्व में स्थित दो-दो देशों के नाम बताइए।
   (ix) तारिम बेसिन कहाँ स्थित है ?
2. कारण बताइए :
   (i) भारत के सबसे पूर्वी भाग अरुणाचल प्रदेश और सबसे पश्चिमी भाग गुजरात के स्थानीय समय में दो घंटे का अंतर है।
   (ii) हैदराबाद में दोपहर का सूर्य कभी तो शिरोबिंदु से उत्तर की ओर तथा कभी दक्षिण की ओर होता है, लेकिन दिल्ली में ऐसा नहीं होता।
   (iii) सिंधु नदी के निकट होते हुए भी हड़प्पा की संस्कृति नष्ट हो गई।
3. पूर्वी दुनिया में भारत के महत्त्व का वर्णन कीजिए।
4. भारत में आज भी पाए जाने वाली अशोक काल की दो विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
5. निम्नलिखित पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या कीजिए :
   (i) "वसुधैव कुटुंबकम"
   (ii) विविधता में एकता।

परियोजना कार्य

6. (क) भारत के रेखा मानचित्र पर अशोक के साम्राज्य का क्षेत्रीय विस्तार दिखाइए।
   (ख) इस पर निम्नलिखित की स्थिति अंकित कीजिए :
      (i) सांची
      (ii) खैबर
      (iii) इंदिरा पॉइंट
      (iv) पोरबंदर
      (v) नई दिल्ली
      (vi) हैदराबाद।
   (ग) प्रत्येक की अक्षांशीय और देशांतरीय स्थिति लिखिए।
   (घ) चार या पाँच वाक्यों में प्रत्येक के महत्त्व का वर्णन कीजिए।
7. भारत के राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों का एक चार्ट बनाइए तथा इसमें इनका क्षेत्रफल, देश के कुल क्षेत्रफल का प्रतिशत, देश की कुल जनसंख्या का प्रतिशत तथा जनसंख्या का घनत्व दिखाइए।

2
अध्याय

भू-वैज्ञानिक संरचना और भू-आकृतियाँ

भू-विज्ञान पृथ्वी के पर्पटी का अध्ययन करने वाला विज्ञान है। पृथ्वी का अपना एक इतिहास है। पृथ्वी के ऐतिहासिक अध्ययन को ऐतिहासिक भू-विज्ञान कहते हैं। यह दिक्काल में पर्पटी के विकास के प्रतिरूपों का अध्ययन करता है। मानव इतिहास के समान ही हम भू-वैज्ञानिक इतिहास को महाकल्पों और कल्पों में विभाजित कर सकते हैं। महाकल्प समय का प्राथमिक अंतराल है और कल्प द्वितीय अंतराल। महाकल्प काल में बने शैलों को शैल संघ और कल्प काल में बने शैलों को शैल समूह कहते हैं। मानक भू-वैज्ञानिक महाकल्प ये हैं: प्राक्-कैंब्रियन (57 करोड़ वर्षों से प्राचीन), पुराजीव (24.5 से 57 करोड़ वर्ष प्राचीन), मध्यजीव (6.6 से 24.5 करोड़ वर्ष प्राचीन) तथा नूतनजीव (6.6 करोड़ वर्ष प्राचीन से लेकर अर्वाचीन काल तक)। भारतीय भू-वैज्ञानिक महाकल्प ये हैं: आद्य महाकल्प (पूर्व प्राक्-कैंब्रियन), पुराण (अपर प्राक्-कैंब्रियन), द्राविड़ (40 से 57 करोड़ वर्ष प्राचीन) तथा आर्य (40 करोड़ वर्षों से लेकर आज तक)।

यूनाइटेड किंगडम के वेल्स को लैटिन भाषा में 'कैंब्रिया' कहते हैं। भू-वैज्ञानिक महाकल्प प्राक्-कैंब्रियन का नाम कैंब्रिया की शैल समूहों के आधार पर रखा गया था। कल्पों के नाम उन स्थानों के नामों पर रखे गए हैं, जहाँ से उस कल्प के शैल समूह प्राप्त हुए हैं। प्राक्-कैंब्रियन शैल समूहों में प्रारंभिक पौधों और जीव-जंतुओं के जीवाश्म नहीं मिलते हैं। पुराजीव में अत्यंत प्राचीन जीवन, मध्यजीव में मध्य जीवन तथा नूतन जीव में नूतन जीवन के जीवाश्म मिलते हैं।

भू-वैज्ञानिक इतिहास

भारतीय उप-महाद्वीप का वर्तमान भौतिक रूप विशाल शैल समूहों का परिणाम है। यह सही है कि भारत के विभिन्न विभागों का निर्माण एक लंबे भू-वैज्ञानिक इतिहास में हुआ है, लेकिन भारत मुख्य रूप से तीन भू-वैज्ञानिक इकाइयों से बना है :

(i) प्रायद्वीपीय पठार;
(ii) हिमालय पर्वत; तथा
(iii) ऊपर के दो के मध्य, सिंधु-गंगा के मैदान।

स्तरित शैल विज्ञान, भू-वैज्ञानिक संरचना और भू-आकृति विज्ञान की दृष्टि से प्रायद्वीपीय पठार और हिमालय पर्वत एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। स्तरित शैल विज्ञान में शैल संस्तरों की प्राप्ति के क्रम, उनकी मोटाई और आयु का आंशिक अध्ययन किया जाता है। भू-वैज्ञानिक संरचना में वलनों तथा भ्रंशों का और उनके निर्माण के साथ जुड़ी आग्नेय गतिविधियों का अध्ययन किया जाता है। भू-आकृति विज्ञान में धरातलीय लक्षणों, पर्वतों, पठारों और मैदानों के निर्माण और विकास का अध्ययन किया जाता है।

कैंब्रियन कल्प से लेकर आज तक प्रायद्वीपीय स्थल क्षेत्र ही रहा है। केवल इसके तटीय क्षेत्र थोड़ी सी अवधि के लिए समुद्र में डूब गए थे। इसके विपरीत कैंब्रियन कल्प से लेकर पर्वतों के रूप में निर्माण तक की लंबी ऐतिहासिक अवधि में हिमालय पर्वत समूह जल-मग्न रहा है। प्रायद्वीपीय पठार पर पार्श्वीय क्षेपों और पर्वत निर्माणकारी बलों का कुछ प्रभाव पड़ा है, लेकिन इनसे इसका मूल आधार प्रभावित नहीं हुआ है। प्रायद्वीप जो हिन्द-आस्ट्रेलियाई प्लेट का भाग है पर ऊर्ध्वाधर संचलनों और खंड भ्रंशन का प्रभाव पड़ा है।

प्रायद्वीपीय पठार की तुलना में उत्तरी पर्वत कमजोर और लचीले हैं। परिणामस्वरूप यहाँ पर वलन और विरूपण की क्रियाएँ हुई हैं। वलनों, भ्रंशों और क्षेप तलों के विकास में सम्पीड़क और पर्वत निर्माणकारी बलों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। प्रायद्वीप पर अधिकतर अवशिष्ट पर्वत ही हैं। यहाँ नदी घाटियाँ उथली तथा मंद ढाल वाली हैं। इसके विपरीत हिमालय विवर्तनिक पर्वत है। इसकी नदियाँ युवावस्था के लक्षणों से युक्त तीव्र गति से बहने वाली हैं। प्रायद्वीप को प्रायद्वीप-इतर भाग से अलग करने वाले भारत के

विशाल जलोढ़ मैदानों का भू-वैज्ञानिक दृष्टि से कुछ विशेष महत्त्व नहीं है, क्योंकि इनकी भू-वैज्ञानिक संरचना बहुत साधारण है।

तीनों भू-वैज्ञानिक इकाइयों का साथ होना भू-वैज्ञानिकों के लिए उलझन भरी समस्या है। अधिकतर भू-वैज्ञानिकों का विश्वास है कि भारतीय प्रायद्वीप, गोंडवाना महाद्वीप का अंग था। इसके उत्तर की ओर सरकने और मध्य एशियाई पठार से टकराने के परिणामस्वरूप ही टेथिस सागर से हिमालय का जन्म हुआ है।

भारत का भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण विभाग भारत के शैल समूहों को चार वर्गों में विभाजित करता है। ये संघ हैं : सबसे पुराने आद्यमहाकल्पीय, पुराण महाकल्पीय, द्राविड़ महाकल्पीय तथा सबसे नवीन आर्य महाकल्पीय। भारत का आद्यमहाकल्प, प्राक्-कैंब्रियन महाकल्प के पूर्वार्ध से मेल खाता है। पुराण महाकल्प की प्राक्-कैंब्रियन के उत्तरार्ध से संगति बैठती है। द्राविड़ महाकल्प में कैंब्रियन महाकल्प से लेकर मध्य कार्बोनी कल्प तक की अवधि समाहित है। आर्य महाकल्प में ऊपरी कार्बोनी कल्प से लेकर अत्यंत नूतन युग तक की अवधि शामिल है (सारणी 2.1)। भारत के महत्त्वपूर्ण शैल समूह ये हैं : आद्यमहाकल्पीय शैल समूह, धारवाड़ शैल समूह, कड़प्पा शैल समूह, विंध्ययी शैल समूह, गोंडवाना शैल समूह, दकन ट्रैप, तृतीय शैल समूह तथा चतुर्थ शैल समूह।

आद्य महाकल्प में पृथ्वी की सबसे पहले बनी चट्टानें सम्मिलित हैं। प्रायद्वीप पर ये चट्टानें मुख्यतः तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड और राजस्थान में पाई जाती हैं। ये चट्टानें मुख्य रूप से नीस और ग्रेनाइट हैं। इनमें जीवाश्म के कोई चिह्न नहीं मिलते हैं। आद्यमहाकल्पीय चट्टानें हिमालय में भी पाई जाती हैं।

धारवाड़ शैल समूह की चट्टानें सबसे पहले बनी हुई अवसादी शैलें हैं। आज ये कायान्तरित रूप में मिलती हैं। इनमें भी जीवाश्म नहीं मिलते हैं। ये चट्टानें कर्नाटक, मध्य प्रदेश, झारखंड, मेघालय और राजस्थान में फैली हैं (चित्र 2.1)। ये मध्य और उत्तरी हिमालय में भी पाई जाती हैं। शिस्ट, स्लेट, क्वार्टजाइट और कांग्लोमेरेट इसी वर्ग की चट्टानें हैं। इस शैल समूह में, सोना, मैंगनीज अयस्क, लौह अयस्क, क्रोमियम, तांबा, यूरेनियम, थोरियम और अभ्रक जैसे खनिज पाए जाते हैं। ग्रेनाइट, संगमरमर, क्वार्टजाइट और स्लेट जैसी चट्टानों के रूप में भवन निर्माण सामग्री भी इनमें उपलब्ध है।

कड़प्पा शैल समूह की चट्टानें राजस्थान, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ में विस्तृत हैं। इन चट्टानों में लौह अयस्क, मैंगनीज अयस्क, स्लेट और संगमरमर पाए जाते हैं।

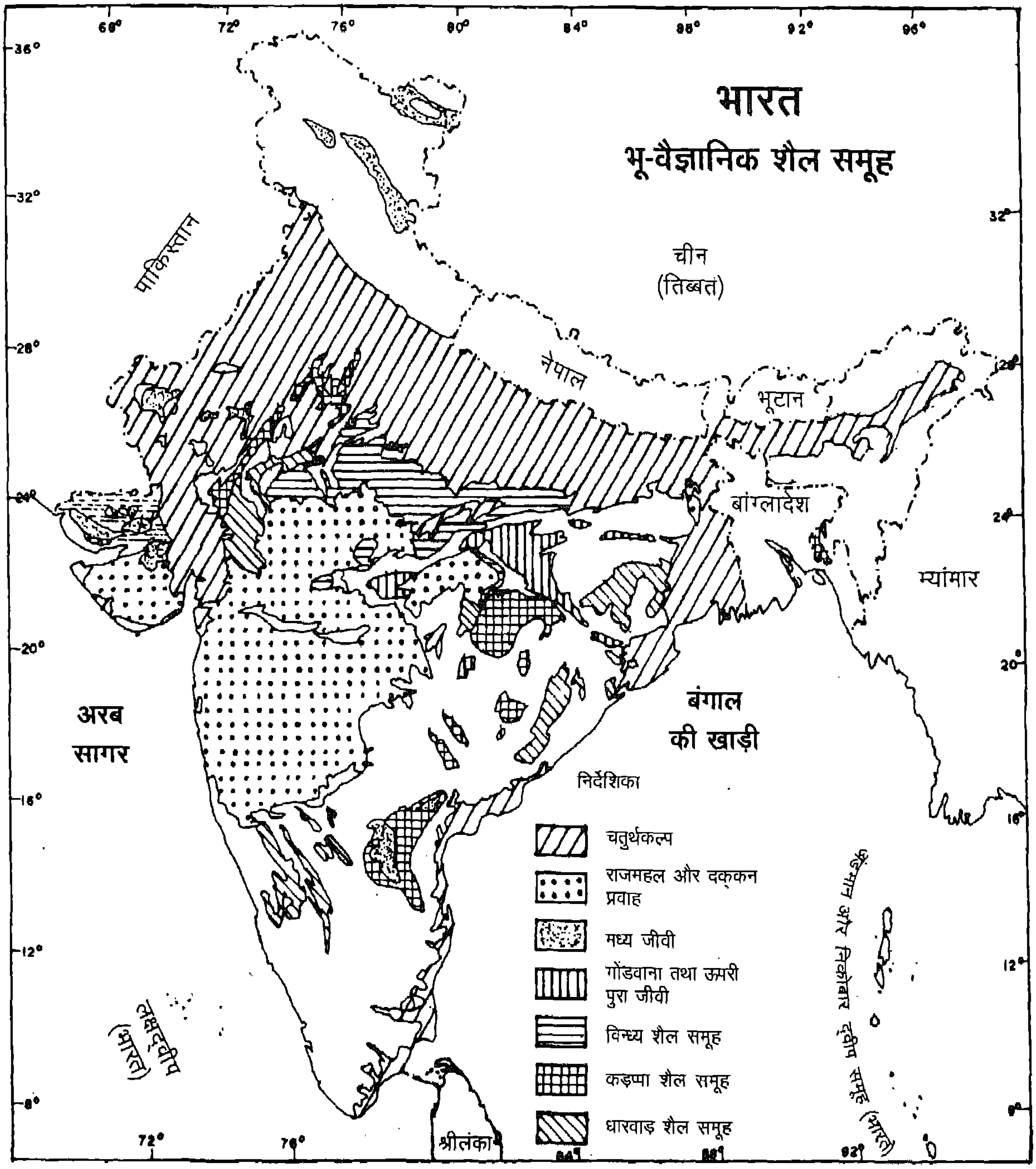
विंध्यीय शैल समूह, कड़प्पा की चट्टानों पर बिछी हैं। मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश और राजस्थान के विशाल क्षेत्रों में इनका विस्तार है। इस शैल समूह में भवन निर्माण के लिए उपयुक्त चूना पत्थर, बलुआ पत्थर, शैल (कड़प्पा) और स्लेट नामक चट्टानें पाई जाती हैं।

द्रविड़ महाकल्प में प्रायद्वीप पठार समुद्र तल से ऊपर था। अतः इस शैल समूह की चट्टानें यहाँ नहीं पायी जाती हैं। लेकिन हिमालय में ये एक निरंतर क्रम में मिलती हैं।

ऊपरी कार्बनी कल्प में प्रायद्वीप को पर्पटीय संचलनों के आघात सहने पड़े। इनके परिणामस्वरूप द्रोणी की आकृति के गर्तों का निर्माण हुआ। इन गर्तों में असंख्य स्थलीय पौधे तथा जीव-जन्तु थे। ये कालांतर में दब गए और इनसे भारत के कोयला निक्षेपों की उत्पत्ति हुई। इन्हें गोंडवाना शैल समूह कहते हैं। इनमें कोयले के निक्षेप हैं। ध्रुवीय ठंडी जलवायु से लेकर उष्ण कटिबंधीय और मरुस्थलीय दशाओं के जलवायुयिक परिवर्तनों के चिह्न इन शैल समूहों में दिखाई देते हैं। ये शैल समूह प्रायद्वीप की दामोदर, महानदी और गोदावरी की घाटियों में विस्तीर्ण हैं।

पुराजीव महाकल्प से लेकर तृतीय कल्प से संबंधित समुद्री अवसादी चट्टानें, कश्मीर से सिक्किम तक फैले, मध्य हिमालयी अक्ष के उत्तरी भाग में पाई जाती हैं। ये शैल समूह प्रायद्वीप के अनेक स्थानों पर पाए जाते हैं। इन स्थानों में प्रमुख हैं : गुजरात, राजस्थान, तमिलनाडु तथा उत्तर-पूर्वी भारत।

मध्य जीव महाकल्प के अंत में ज्वालामुखियों से व्यापक स्तर पर लावा फूट निकला। लावा के इस प्रवाह ने महाराष्ट्र के विशाल क्षेत्रों और दक्कन के अन्य भागों को लगभग पूरी तरह ढक लिया। यह लावा प्रवाह दक्कन ट्रैप के नाम से विख्यात हैं। लावा के प्रवाहों के बीच में पतली जीवाश्मयुक्त अवसादी परतें पाई जाती हैं। यह इस



चित्र 2.1 भारत : भू-वैज्ञानिक शैल समूह

बात को पुष्ट करता है कि लावा प्रवाहों में निरंतरता नहीं थी। ज्वालामुखी की हलचलों से दो प्रमुख घटनाएँ घटीं : (i) गोंडवाना लैंड का विखंडन; तथा (ii) टेथिस सागर से हिमालय का उत्थान।

तृतीय कल्प के शैल समूह अधिकतर हिमालय में पाए जाते हैं। प्रायद्वीप में गुजरात, केरल और तमिलनाडु के तटीय क्षेत्रों में भी इनका विस्तार है। तृतीय कल्प के शैल समूह में भूरा कोयला, सेंधा नमक, जिप्सम और चूना-पत्थर मिलते हैं। बाह्य हिमालय में जीव-जन्तुओं की विभिन्न प्रजातियों के असंख्य जीवाश्म पाए जाते हैं। इन जीव-जन्तुओं में प्रमुख थे : हाथी, गैंडे, घोड़े, सूअर, हिरण, चौसिंगे और मानवाभ बंदर।

चतुर्थ कल्प के प्रमुख शैल समूह ये हैं : कश्मीर में हिमयुग के निक्षेप, उत्तर भारत में जलोढ़ मैदानों की उत्पत्ति, राजस्थान मरुस्थल का निर्माण, कच्छ का रन, प्रायद्वीप में लैटराइट की उत्पत्ति तथा रेगड़ मृदाओं

सारणी 2.1 : भारत के प्रमुख भू-वैज्ञानिक शैल समूह

भारतीय महाकल्प	*मानक भू-वैज्ञानिक महाकल्प और कल्प*	*कल्प की अवधि (करोड़ वर्षों में)*	*प्रारंभ से आयु (करोड़ वर्षों में)*	*प्रायद्वीप में प्रमुख शैल समूह*	*प्रायद्वीपीय-इतर भाग में प्रमुख शैल समूह*
आर्य	**नूतनजीवी** *चतुर्थ* अभिनव अत्यंत नूतन	0.2 से कम 6.4	0.2 या 0.3	नवीनतम जलोढ़ मरुस्थल लैटराइट	गंगा के मैदान की उत्पत्ति
	तृतीय अतिनूतन मध्यनूतन अल्पनूतन आदिनूतन			तृतीय तटीय निक्षेप	हिमालय की उत्पत्ति
	मध्यावधि		6.6		
	क्रिटेशस जुरैसिक ट्रायसिक	17.9		दक्कन ट्रैप, समुद्री निक्षेप	ज्वालामुखीय शैल समूह समुद्री अवसाद
	पुराजीवी		24.5		
द्राविड़	पर्मियन कार्बनी डेबौनी सिल्यूरियन ऑर्डोविशियन	32.5		अवर गोंडवाना (कोयला निक्षेप) कोई निक्षेप नहीं	कश्मीर और स्पीति में निक्षेप
पुराण	**प्राक्-कैंब्रियन**		57		
	अपर प्राक्-कैंब्रियन			विंध्यीय कड़प्पा धारवाड़ अरावली आद्य शैल समूह	आद्य महाकल्पीय नीस
आद्य	पूर्व-कैंब्रियन				

का निर्माण। कश्मीर और हिमालय में हिमयुग के अवसादों का निक्षेपण हुआ।

भू-आकृतिक लक्षण

भारत पर्वतों, पठारों और मैदानों का एक सुंदर देश है। उत्तर में हिममंडित हिमालय है। यह संसार का नवीनतम और सर्वोच्च पर्वत समूह है। तृतीय कल्प के दौरान, लगभग 6 करोड़ वर्ष पूर्व, टेथिस सागर में से इसका जन्म हुआ था, तब से लेकर आज तक ये भू-पृष्ठीय अपरदन के नियंत्रण में है। अपरदन के कारक इन पर सक्रिय हैं। दक्षिण में त्रिभुजाकार विशाल प्रायद्वीप है। यह संसार के प्राचीनतम भू-भागों में से एक है। इसका धरातल अवशिष्ट है। हिमालय और प्रायद्वीप के मध्य में गंगा, ब्रह्मपुत्र और सिंधु नदियों के तंत्र का विशाल जलोढ़ मैदान है। मैदान भारतीय इतिहास का प्रमुख रंगमंच रहा है। आजकल यह देश में अनाज का मुख्य भंडार है।

विशाल भू-भाग में फैली इन तीन प्रमुख स्थलाकृतियों को सुविधापूर्वक निम्नलिखित सात भू-आकृतिक इकाइयों में वर्गीकृत किया जा सकता है :

(क) हिमालय पर्वत
  1. उत्तरी पर्वत श्रेणियाँ
(ख) गंगा-सिंधु का मैदान
  2. विशाल मैदान
  3. थार मरुस्थल
(ग) प्रायद्वीपीय पठार
  4. मध्यवर्ती उच्च भूमि
  5. प्रायद्वीपीय पठार
  6. तटीय मैदान
  7. द्वीप समूह

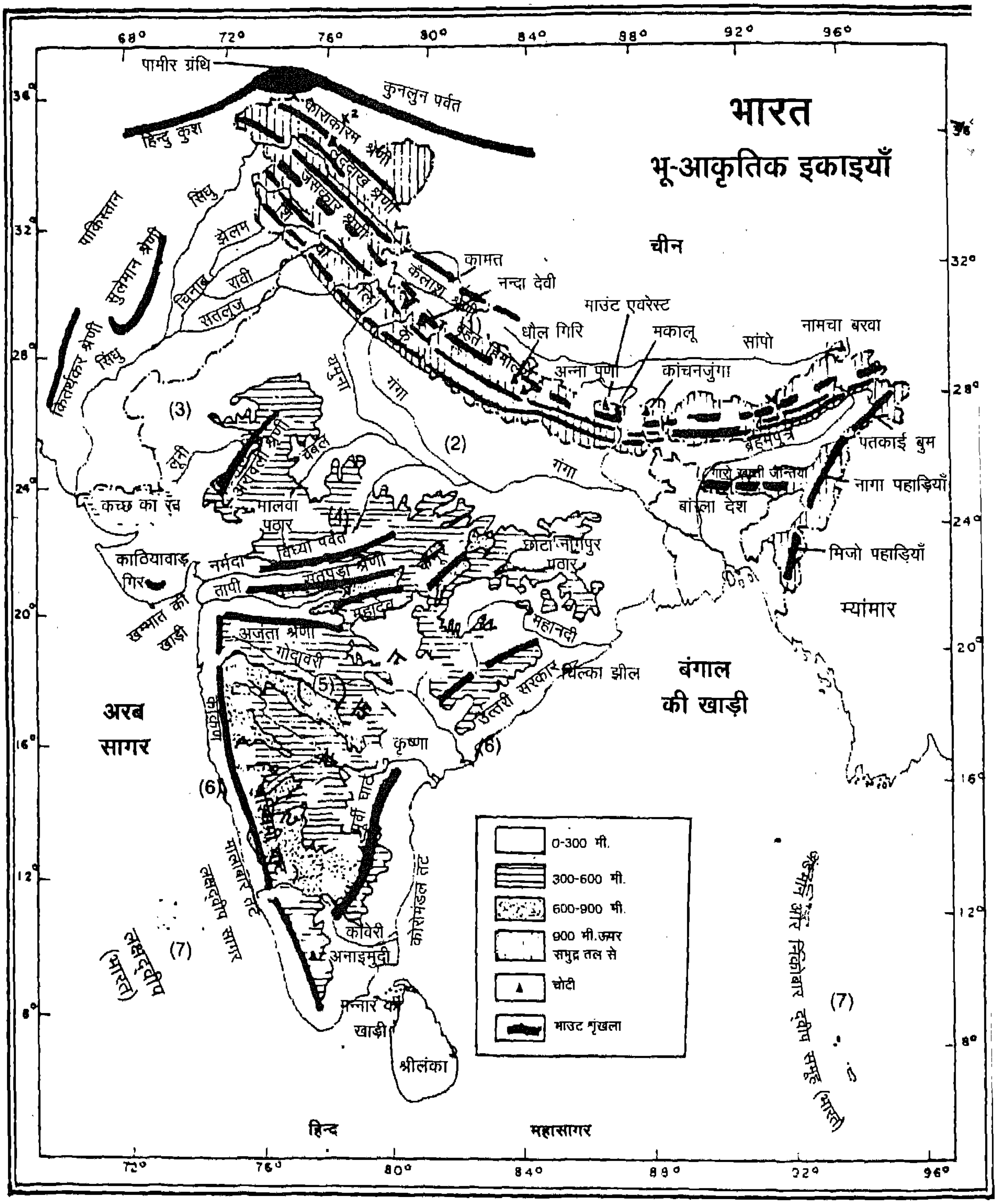
उत्तरी पर्वत श्रेणियाँ

भारत की उत्तरी सीमा पर स्थित हिमालय पर्वत की शृंखलाएँ संसार में सबसे ऊँची हैं। विशाल सिंधु नदी और शक्तिशाली ब्रह्मपुत्र इसे तीन भागों में विभाजित कर देती है। ये भाग है : मुख्य हिमालय, उत्तर पश्चिम हिमालय (हिमालय पार की पर्वत श्रेणियाँ) तथा दक्षिण पूर्व हिमालय (पूर्वांचल) (चित्र 2.2)।

मुख्य हिमालय का विस्तार उत्तर-पश्चिम में सिंधु नदी से लेकर दक्षिण-पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी तक है। ये संसार के सबसे युवा पर्वत हैं। अपनी युवावस्था के कारण इनमें संसार का सबसे ऊँचा पर्वत शिखर माउंट एवरेस्ट (8,848 मी.) है। इस पर्वत का नाम भारत के पूर्व महासर्वेक्षक सर जार्ज एवरेस्ट के नाम पर रखा गया है। हिमालय में लगभग 140 पर्वत शिखर ऐसे हैं , जिनकी ऊँचाई आल्प्स की सबसे ऊँची चोटी माउंट ब्लैंक (4,810 मी.) से भी अधिक है। हिमालय के कुछ उल्लेखनीय पर्वत शिखर ये हैं : कांचनजुंगा (8,598 मी.), धौलगिरि (8,178 मी.) तथा गोसांईथान (8,018 मी.)। हिमालय में उच्चावच ऊँचा, शिखर हिम-मंडित, स्थलाकृति बहुत अधिक विरदित, जटिल भू-वैज्ञानिक संरचना और सघन वन हैं। हिमालय की लंबाई 2,500 कि.मी. है तथा चौड़ाई 150 से 400 कि.मी. के बीच है। इसकी तीन पर्वत श्रेणियाँ हैं : उत्तर में

सारणी 2.2 : भारत : भू-आकृतिक इकाइयाँ

इकाइयाँ	*क्षेत्रफल वर्ग कि.मी. (लगभग)*	*कुल क्षेत्रफल प्रतिशत*
1. उत्तरी पर्वत श्रेणियाँ	5,78,000	17.9
2. विशाल मैदान	5,50,000	17.1
3. थार मरुस्थल	1,75,000	5.4
4. मध्यवर्ती उच्चभूमि	3,36,000	10.4
5. प्रायद्वीपीय पठार	12,41,000	38.5
6. तटीय मैदान	3,35,000	10.4
7. द्वीप समूह	8,300	0.3



चित्र 2.2 भारत : भू-आकृतिक इकाइयाँ

हिमाद्रि (बृहत् हिमालय), मध्य में हिमाचल (लघु हिमालय) तथा शिवालिक (बाह्य हिमालय)। इनके बाद भारत का विशाल मैदान प्रारंभ हो जाता है (चित्र 2.4)।

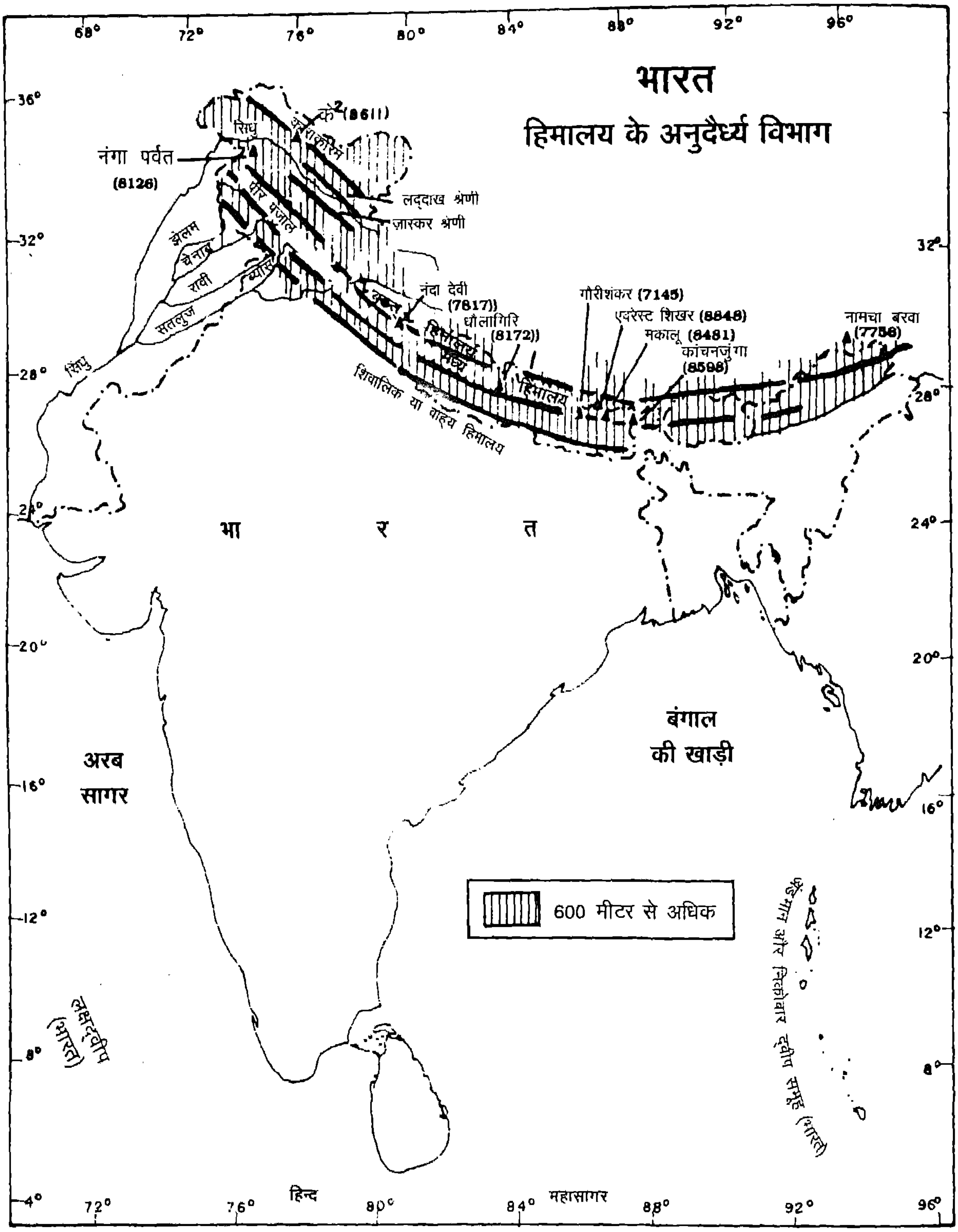
हिमाद्रि बहुत ऊँची (6,000 मी.) पर्वत श्रेणी है। यह सदा हिम से ढकी रहती है। यह एक असममित पर्वत है। दक्षिण की ओर इसके बहुत कम पर्वत स्कंध है। इसका उत्तरी ढाल बहुत मंद है, जो धीरे-धीरे नदी घाटियों में विलीन हो जाता है। नदी घाटियाँ लंबी दूरी तक पर्वत के समान्तर चली गई हैं। हिमाचल की श्रेणी की दक्षिणी ढाल तीव्र और नग्न हैं तथा उत्तरी ढाल मंद और वनों से ढके हैं। इसकी स्थलाकृति शूकर कटक (hogback) जैसी है। यह अत्यंत संपीडित और कायांतरित चट्टानों से बनी है। कुछ अपवादों को छोड़कर यह 5,000 मी. से अधिक ऊँची नहीं है। शूकर कटक के समान दिखने वाली शिवालिक, हिमालय की गिरिपद पहाड़ियाँ हैं। इसकी औसत ऊँचाई लगभग 600 मी. है। हिमाचल श्रेणी और शिवालिक श्रेणी के मध्य कुछ समतल संरचनात्मक घाटियाँ हैं; इन्हें दून कहते हैं। देहरादून सुविख्यात है। देहरादून में सघन वन हैं तथा यहाँ गहन खेती होती है। हिमाद्रि और हिमाचल के मध्य कुछ चौड़ी अभिनत घाटियाँ हैं। ये अत्यंत मनोरम, उर्वर और घनी बसी हैं। काठमांडू और कश्मीर घाटियाँ काफी विस्तृत हैं।

हिमाद्रि पर अनेक हिमानियाँ हैं। इनमें से गंगोत्री, केदारनाथ, मिलाम और पिंडारी नाम की हिमानियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। गंगोत्री और केदारनाथ हिमानियों के हिम की आपूर्ति गंगोत्री नाम के हिमाल (हिमक्षेत्र) से होती है तथा मिलाम और पिंडारी को हिम नंदादेवी हिमाल से मिलता है। भारत की चार सबसे विशाल हिमानियाँ: सियाचिन (75 कि.मी.), बाल्टोरो (58 कि.मी.), बिआफो (59 कि.मी.) और हिस्पार (62 कि.मी.) काराकोरम हिमालय में स्थित हैं। गंगा का उद्गम गंगोत्री, यमुना का यमुनोत्री तथा ब्रह्मपुत्र का चेमायुंगदुंग हिमानियों के पिघले जल से होता है।

उत्तर पश्चिम हिमालय में काराकोरम और हिन्दुकुश प्रमुख पर्वत हैं। सिंधु नदी के उत्तर में विशाल काराकोरम है, जिसे कृष्णगिरि भी कहते हैं। इस क्षेत्र में ऊँची-ऊँची पर्वत चोटियाँ और विस्तृत हिमानियाँ हैं। सीढ़ीदार अर्द्ध मरुस्थल के भूदृश्य काराकोरम की विशेषताएँ हैं। इसकी सबसे ऊँची पर्वत शृंखला के[2] है। लद्दाख भारत का सबसे ऊँचा पठार है। इसकी औसत ऊँचाई 5,300 मी. है। इस

बृहत् हिमालय के चौदह पर्वत शिखर

	शिखर	*ऊँचाई (मी.में)*
1.	अन्नपूर्णा	8,078
2.	मनास्लू	8,156
3.	गोसांईथान (शीष पंगमा)	8,018
4.	चोओयू	8,153
5.	एवरेस्ट (सागरमाथा)	8,848
6.	एवरेस्ट दक्षिण	8,754
7.	ल्होत्से 1	8,501
8.	ल्होत्से मध्य	8,410
9.	लहोत्से शर	8,384
10.	मकालू 1	8,481
11.	मकालू दक्षिण	8,010
12.	कांचनजुंगा 1	8,598
13.	कांचनजुंगा दक्षिण	8,474
14.	कांचनजुंगा पश्चिम	8,420



चित्र 2.3 भारत : हिमालय के अनुदैर्ध्य विभाग

क्षेत्र की घाटियाँ उथली हैं तथा इनमें गर्म जल के स्रोत हैं। काराकोरम की पर्वत श्रेणियाँ पश्चिम में पाकिस्तान और अफगानिस्तान तक चली गई हैं (चित्र 2.5)।

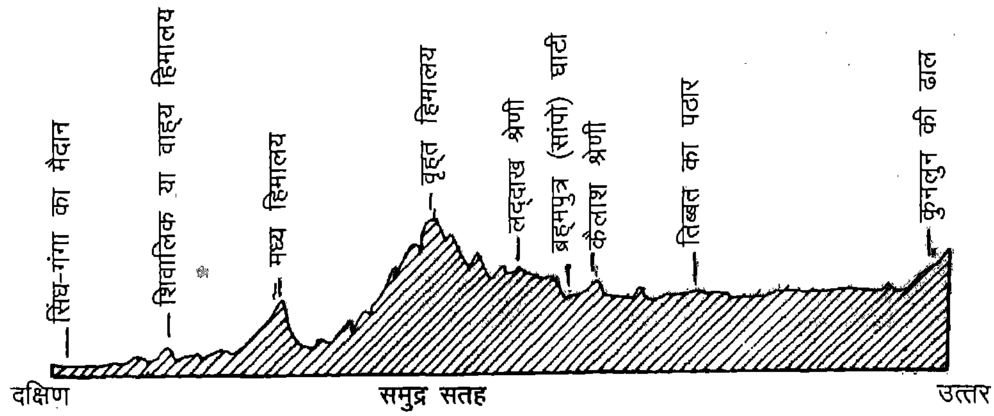
अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड, मणिपुर, असम, मेघालय, मिजोरम और त्रिपुरा की पहाड़ियाँ, पूर्वी हिमालय के भाग हैं। इनका सामूहिक नाम पूर्वांचल (पूर्वी श्रेणियाँ) है (चित्र 2.6)। गारो, खासी, जयन्तिया और कर्बी अंगलौंग (मिकिर पहाड़ियाँ) प्राचीन चट्टानों से बनी हैं। संरचनात्मक दृष्टि से ये प्रायद्वीपीय पठार के भाग हैं। इन्हें मेघालय का पठार कहते हैं। मेघालय का अर्थ है बादलों का घर। नागा, मणिपुर और मिजो पहाड़ियाँ उत्तर से दक्षिण की दिशा में विस्तृत हैं। इनके विपरीत मेघालय की पहाड़ियाँ पूर्व-पश्चिम दिशा में फैली हैं।

हिमालय में अनेक दर्रे हैं। इनमें से कुछ हैं : जेलेपला, नाथुला, चोला, पटकई, बुमडिला, चाँगला, काराकोरम आदि। प्राचीन काल में इनका भारत और तिब्बत के बीच संपर्क मार्ग के रूप में उपयोग होता था, लेकिन आजकल ये ऐसे स्थान हैं, जहाँ सुरक्षा बलों को निरंतर चौकसी रखनी पड़ती है।

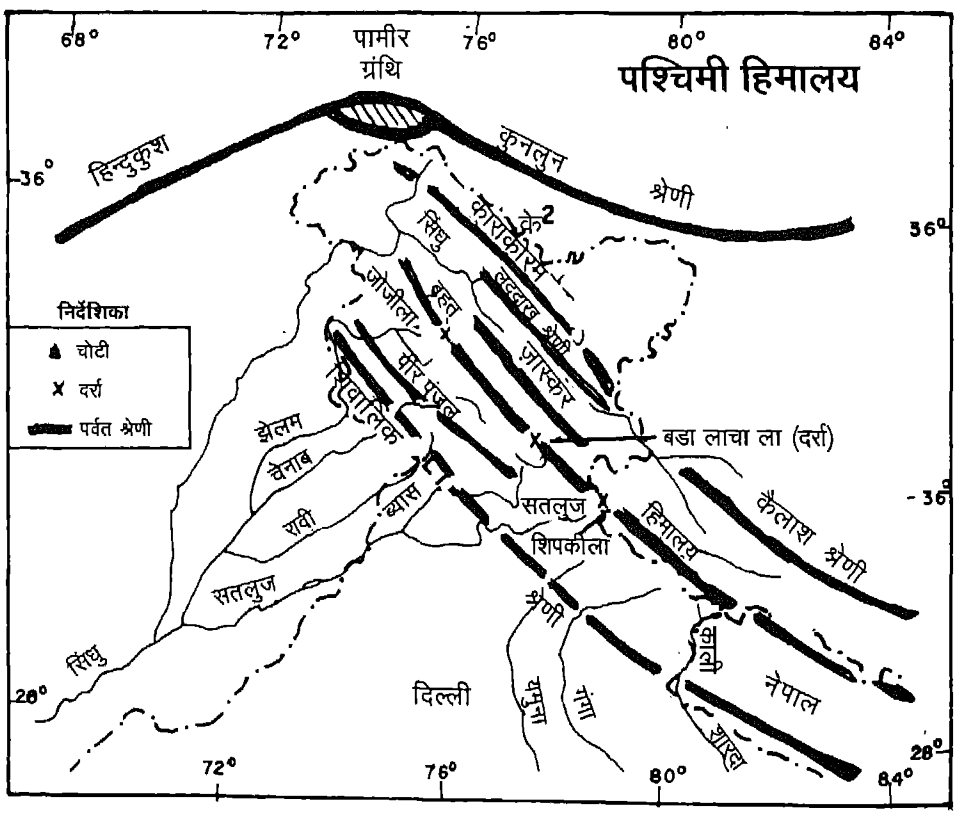
विशाल मैदान

हिमालय से धीरे-धीरे ढलवाँ होते गए ये मैदान काफी विस्तृत हैं। मैदान के मध्यवर्ती तथा पूर्वी भागों का निर्माण

हिमालय पर्वत की प्रमुख हिमानियाँ (लम्बाई कि.मी.में)			
कांचनजुंगा-एवरेस्ट प्रदेश			
जेमू	25	रोंगबक	52
कांचनजुंगा	21	कांगसुग	19
रामबाग	10	बरून	15
खुम्बू	20	तोलम बाऊ	19
मध्य नेपाल प्रदेश			
येपोकांगरा	13	छूलिंग	11
लिदान्दा	11		
कुमाऊं गढ़वाल प्रदेश			
मिलाम	20	सतोपंच	16
गंगोत्री	30	माना	18
भागीरथ खड़क	18		
पीर पंजाल श्रेणी			
सोनापानी	15	गंगरी	13
बड़ा शिगड़ी	15	चुंगफाड़	20
राखियाट	15		
काराकोरम श्रेणी			
बियाफो	59	मानोस्तौंग	16
बाल्टोरो	58	यारकंद रीमो	40
गॉडविन आस्टिन	30	चांग कुमदन	21
सियाचिन	75	हिस्पार	62
फेडशेंको	74	कुनयांग	24
लोलोफोंड	40	छोगोलुंगमा	50
पासु	25	खुर्दोपला	47



चित्र 2.4 हिमालय पर्वत समूह : दक्षिण से उत्तर तक का पार्श्व चित्र



चित्र 2.5 पश्चिमी हिमालय

गंगा (चित्र 2.7) और ब्रह्मपुत्र नदियों तथा इनकी सहायक नदियों के द्वारा हुआ है। इस मैदान के पश्चिमी भाग अर्थात् पंजाब के मैदान का निर्माण सिंधु की सहायक नदियों के द्वारा हुआ है।

विशाल मैदानों की उत्पत्ति नूतन काल में हुई है। ये मैदान लगभग 20 लाख वर्ष पुराने हैं। इनका निर्माण बड़ी नदियों द्वारा निक्षेपित अवसादों से हुआ है। अवसादों की गहराई एक स्थान से दूसरे स्थान पर भिन्न है। लेकिन सामान्यतः यह 450 मी. से अधिक नहीं है। मैदान के मध्यवर्ती भाग में अवसादों की अधिकतम मोटाई लगभग 3,000 मी. तक हो सकती है। गंगा के मुहाने पर यह मैदान समुद्रतल पर है, लेकिन पंजाब में इसकी ऊँचाई समुद्र तल से 200 मीटर से भी अधिक है। विशाल मैदान का आधा भाग उत्तर प्रदेश में तथा शेष आधा भाग पंजाब, हरियाणा, बिहार, पश्चिम बंगाल और असम राज्यों में है।

विशाल मैदान में कई रोचक भौतिक लक्षण हैं। इसकी उत्तरी सीमा पर गिरिपद मैदान हैं। ये महीन मलबे और मोटी कंकड़ों के मिश्रण से बने हैं। इन्हें पंजाब में 'भाबर' और असम में 'दुआर' कहते हैं। गिरिपद मैदानों के दक्षिण में दलदली क्षेत्र है, जिसे 'तराई' कहते हैं। इस क्षेत्र में भाबर में विलीन नदियाँ पुनः धरातल पर आ जाती हैं। अपेक्षाकृत ऊँची भूमि पर फैली प्राचीन जलोढकों को 'बांगर' कहते हैं। उत्तर प्रदेश में नदी के साथ-साथ विस्तृत नवीनतर जलोढकों वाली बाढ़ के मैदानों की निम्न भूमि को 'खादर' और पंजाब में 'बेट' कहते हैं। विशाल मैदान में यत्र-तत्र गर्त हैं। बिहार में ऐसे दो बड़े गर्त हैं। पटना के निकट के गर्त को 'जल्ला' तथा मोकामा के निकट के गर्त को 'टाल' कहते हैं। वर्षा ऋतु में ये बाढ़ के पानी से भर जाते हैं। उत्तर बंगाल में ये मैदान पूर्वी हिमालय की गिरिपाद पहाड़ियों से लेकर गंगा के मुहाने तक फैले हैं। असम की घाटी, गंगा के मैदान का ही विस्तार है। यह ब्रह्मपुत्र का तलोच्चन (तल को ऊँचा उठाने के) कार्य का परिणाम है। घाटी के अत्यंत मंद ढाल के कारण बालू और गाद नदी मार्ग में ही जमा हो जाते हैं। इससे व्यापक बाढ़ें आती हैं। इस मैदान में अनेक जलोढ झीलें हैं, जिनका स्थानीय नाम 'बिल' है।

उत्तरी भारत के मैदान की ढाल दो ओर हैं, एक दक्षिण-पूर्व की ओर तथा दूसरी दक्षिण-पश्चिम की ओर। दिल्ली प्रदेश एक बड़ा जल-विभाजक है। सतलुज और व्यास नदियाँ पंजाब के मैदान का जल बहाकर ले जाती हैं। मध्यवर्ती भाग के जल का अपवाह गंगा और उसकी सहायक नदियों के द्वारा तथा पूर्वी भाग का ब्रह्मपुत्र और उसकी सहायक नदियों के द्वारा होता है। नदियाँ वर्ष भर बहने वाली सदानीरा हैं।

थार मरुस्थल

राजस्थान के शुष्क मैदान भारत के विशाल मैदान का ही विस्तार हैं। अरावली श्रेणी के पश्चिम में स्थित ये मैदान कम वर्षा के कारण शुष्क हो गए हैं। इस मरुस्थलीय क्षेत्र के दो प्रादेशिक ढाल हैं : एक पश्चिम की ओर तथा दूसरा दक्षिण की ओर। दक्षिण की ओर का ढाल राजस्थान की नदियों का मुख्य निकास मार्ग रहा है। लूनी (नमकीन नदी) के बड़े मोड़ के दक्षिण की चट्टानी पहाड़ियाँ लगभग 1,000 मी. ऊँची हैं। लूनी की निचली घाटी, मरुस्थल का सबसे नीचा भाग है। यह समुद्र तल से मात्र 20 मी. ऊँचा है।

विलुप्त सरस्वती नदी

नूतन भू-वैज्ञानिक इतिहास में अनेक नदियों ने अपने मार्ग में परिवर्तन किया है तथा कुछ पूर्णतः विलुप्त हो गई हैं। इसके अनेक कारण रहे हैं। वैदिक और प्राक् वैदिक काल में सरस्वती एक शक्तिशाली नदी थी। यह आज पूर्णतया विलुप्त हो गई है। इसके विलोपन का कारण शायद मरुस्थल का प्रसार है। ऐसा विश्वास है कि आज की घग्गर सरस्वती नदी की उत्तरवर्ती नदी है।

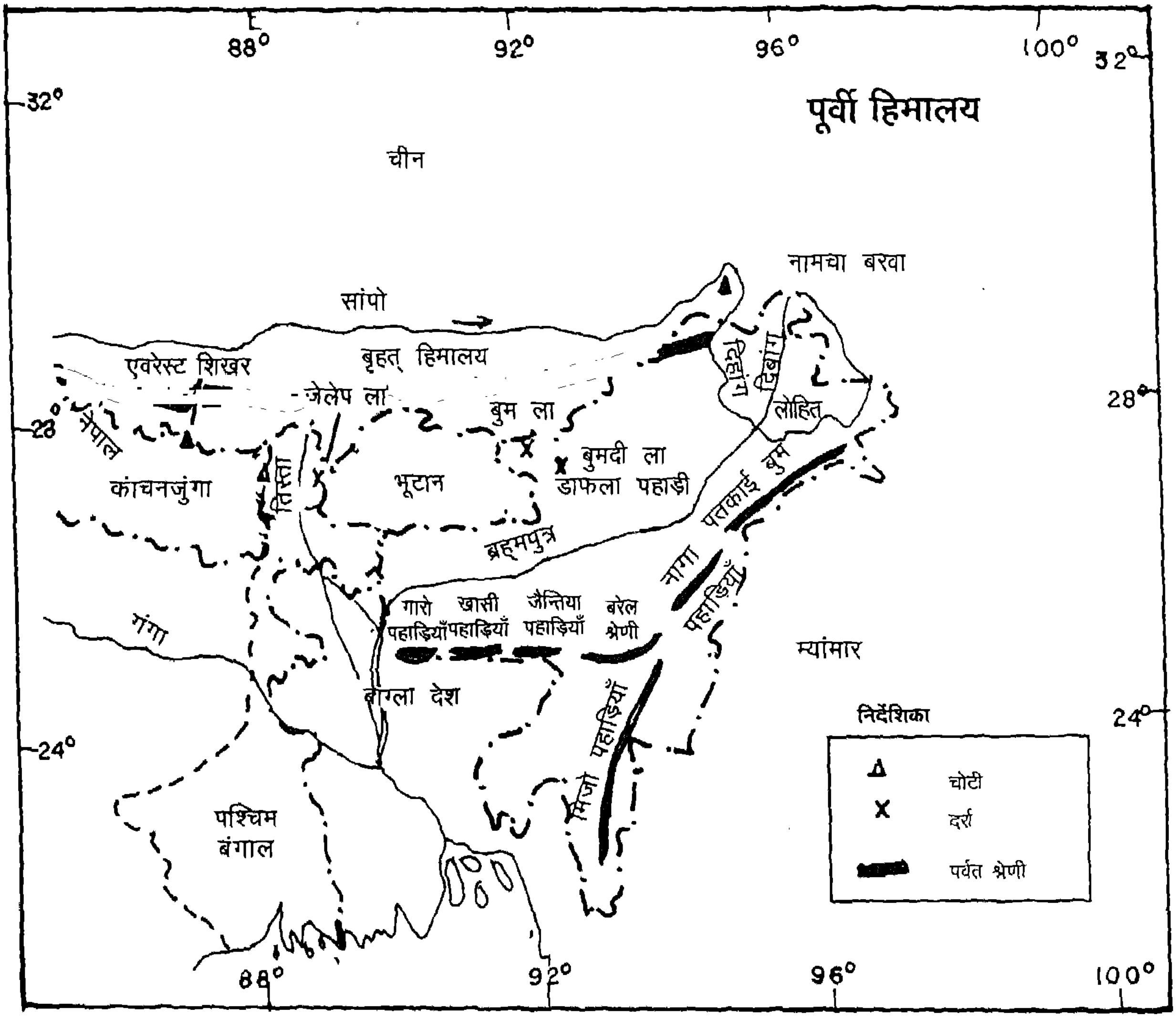
उड़ते बालू और कम वर्षा वाले इस प्रदेश को 'मरुस्थली' कहते हैं। इसका पूर्वी भाग अपेक्षाकृत कम बलुआ और अधिक आर्द्र है। इसमें स्टेपी वनस्पति पाई जाती है। मध्यजीव महाकल्प में यह क्षेत्र समुद्र के गर्भ में था। इसका उत्थान अत्यंत नूतन युग में हुआ था। सरस्वती, दृषाद्वती और सतलुज नदियों से अपवाहित यह क्षेत्र कभी बहुत उपजाऊ था। आजकल लूनी ही थोड़े बहुत महत्त्व की नदी है। इसके ऊपरी मार्ग में मीठा जल बहता है। इस क्षेत्र के अधिकतम भाग में

भूजल खारा है। यहाँ अनेक खारी झीलें हैं। सांभर झील इनमें सबसे बड़ी है।

संपूर्ण प्रदेश बालू के स्थानान्तरी टिब्बों (टीलों) से आवृत हैं। ये तीन भिन्न प्रकार के हैं : अनुदैर्घ्य टिब्बे, चापाकार टिब्बे (बरखान) तथा अनुप्रस्थ टिब्बे। अनुदैर्ध्य टिब्बे, प्रचलित पवनों के समान्तर, उत्तर-पूर्व से दक्षिण पश्चिम दिशा में फैले हैं। बरकान की आकृति चाप के समान होती है। प्रचलित पवनों की दिशा में इन टिब्बों का उत्तल ढाल होता है। अनुप्रस्थ टिब्बे प्रचलित पवनों के साथ लंबवत् होते हैं। अरावली श्रेणियों के पाद और पश्चिमी मरुस्थली के बीच की पट्टी में बालू के टिब्बों की संख्या कम है। इस क्षेत्र के जल को छोटी-छोटी नदियाँ बहाकर ले जाती हैं। इन नदियों के द्वारा उपजाऊ भूमि का निर्माण हुआ है। ऐसी भूमि को 'रोही' कहते हैं। इस प्रदेश के उत्तरी और मध्यवर्ती भाग में रोही भूमि के अनेक खंड हैं।

मध्यवर्ती उच्च् भूमि

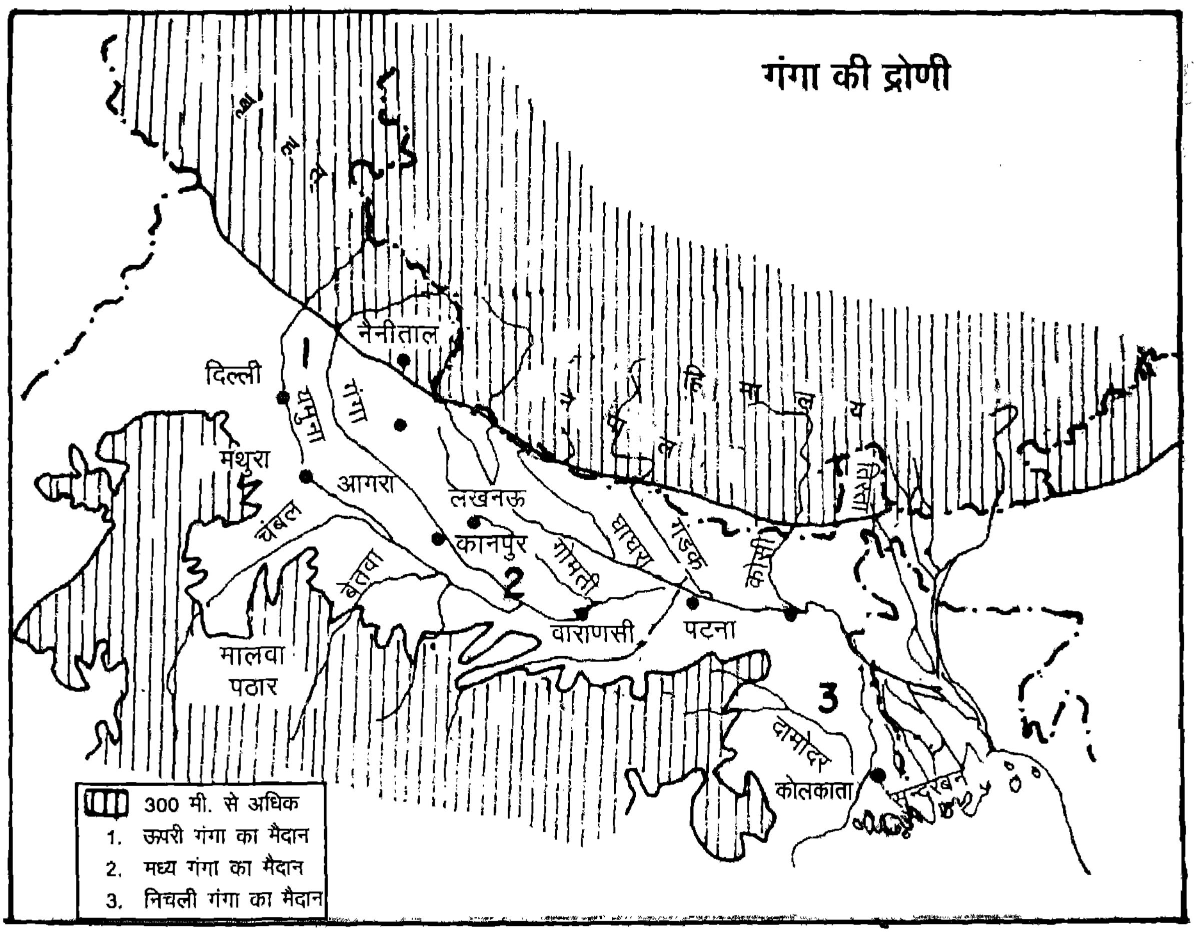
पश्चिम में अरावली पर्वत श्रेणी से तथा पूर्व में विंध्य की कगार से सीमांकित पहाड़ी प्रदेश की चौड़ी पट्टी को मध्यवर्ती उच्चभूमि कहते हैं। इसकी दक्षिणी सीमा



चित्र 2.6 पूर्वी हिमालय

पर नर्मदा की भ्रंश घाटी है। इन उच्चभूमियों में मध्य प्रदेश का आधा, राजस्थान का एक तिहाई तथा उत्तर प्रदेश का थोड़ा सा भाग शामिल है। यह पूरा का पूरा प्रदेश वनाच्छादित है। इसमें अधिकतर गोंड, संथाल, उराँव और भील नाम की जन-जातियाँ रहती हैं। अरावली पर्वत श्रेणी, पूर्वी राजस्थान की उच्च भूमि, मध्य-भारत का पठार, बुंदेलखंड की उच्चभूमि, मालवा का पठार, विंध्य की कगारी भूमि, विंध्य श्रेणी और नर्मदा घाटी इसी प्रदेश के अंग हैं। इनमें से प्रथम चार उत्तरी उच्च भूमि के भाग हैं तथा अन्तिम चार दक्षिणी उच्च भूमि के भाग हैं।

अरावली पर्वत श्रेणी दिल्ली से लेकर दक्षिण-पश्चिम की ओर अहमदाबाद के निकट तक लगभग 800 कि.मी. की दूरी में फैली है। यह भारत का सबसे पुराना विवर्तनिक पर्वत है। अरावली कठोर क्वार्टजाइट चट्टानों से बना है। आबू की पहाड़ियों पर स्थित गुरु शिखर (1,722 मी.) अरावली श्रेणी का सबसे ऊँचा शिखर है। अरावली के पूर्व के क्षेत्र की ऊँचाई 250 मी. से लेकर 500 मी. तक है। इसे पूर्वी राजस्थान की उच्चभूमि कहते हैं। चंबल और बनास ही मुख्य रूप से इस क्षेत्र का जल बहाकर ले जाती हैं। चंबल के पूर्व की भूमि चट्टानी है तथा यह सघन वनों से ढकी है। इसका नाम मध्य-भारत का पठार है। इस बलुआ पत्थरवाली उच्चभूमि की मुख्य नदी चंबल है। बुंदेलखंड की उच्चभूमि, यमुना और विंध्य की कंगारी भूमि के बीच विस्तृत है। यह क्षेत्र 100 से लेकर 300 मी. तक ऊँचा है। यह



चित्र 2.7 गंगा की द्रोणी

उच्चभूमि पुराना अपरदित धरातल है, जिसका निर्माण ग्रेनाइट से हुआ है।

मध्य भारत पठार और विंध्य श्रेणी के मध्य लावा निर्मित विस्तृत पठार है। इसे मालवा का पठार कहते हैं तथा यहाँ काली मिट्टी पाई जाती है। इस पठार के दक्षिण में विंध्याचल पर्वत श्रेणी है। यह नर्मदा नदी के समान्तर फैली है। इसका निर्माण बलुआ पत्थर, चूना पत्थर, क्वार्टजाइट और शेल से हुआ है। इसके उत्तर-पूर्वी भाग में कगारी भूमि की स्थलाकृतियाँ हैं। इसे विंध्य की कगारी भूमि (कैमूर की पहाड़ियाँ) कहते हैं। मध्यवर्ती उच्च भूमि का दक्षिणतम भाग नर्मदा का संरचनात्मक गर्त है।

प्रायद्वीपीय पठार

बंगाल की खाड़ी और अरब सागर के अभिमुख भारत का सबसे बड़ा भू-आकृतिक विभाग प्रायद्वीपीय पठार है। यह उत्तर में सतपुड़ा पर्वत श्रेणी से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक 1,500 कि.मी. की दूरी में फैला है। इसका पूर्व-पश्चिम विस्तार राजमहल की पहाड़ियों और सहयाद्रि (पश्चिमी घाट) के मध्य 1,400 कि.मी. की दूरी में है। दक्षिण में पठार के धरातल की ऊँचाई 1,000 मी. से अधिक ही है, लेकिन उत्तर में इसकी ऊँचाई अधिक से अधिक 500 मी. ही है। इसकी आकृति त्रिभुज के समान है। इसकी चार भू-आकृतिक उप-इकाइयाँ हैं, पश्चिमी घाट, दक्कन का पठार, पूर्वी घाट तथा पूर्वी पठार।

उत्तरी भाग में सह्याद्रि का निर्माण लावा की क्षैतिज चादरों से हुआ है। इसमें थाल घाट और भोर घाट नाम के दो प्रमुख दर्रे हैं। कोंकण के मैदान और आंतरिक पठार के परिवहन के मार्ग इन्हीं दर्रों से होकर गुजरते हैं। मध्य भाग में सह्याद्रि तट के निकट तक आ जाते हैं। गोदावरी, कृष्णा और कावेरी नदियों के उद्गम स्थान सह्याद्रि के इसी भाग में हैं। ये नदियाँ पठार से होकर बहती हुई बंगाल की खाड़ी में मिल जाती हैं। पाल घाट दर्रे के दक्षिण में, सह्याद्रि को दक्षिणी पहाड़ियाँ कहते हैं।

अनैमुदि दक्षिण भारत की सर्वोच्च शिखर (2,696 मी.) है। यह तीन पहाड़ियों का केंद्रबिंदु है। यहाँ से तीन पहाड़ी शृंखलाएँ तीन दिशाओं में जाती हैं। दक्षिण की ओर इलायची (कार्डामम) की पहाड़ियाँ, उत्तर की ओर अन्नामलाई की पहाड़ियाँ तथा उत्तर-पूर्व की ओर पलनी की पहाड़ियाँ हैं।

दक्कन के उत्तरी भाग में सतपुड़ा श्रेणी तथा महाराष्ट्र का पठार शामिल हैं। सतपुड़ा पश्चिम-पूर्व में विस्तृत हैं। मध्यवर्ती भाग में इसे महादेव की पहाड़ियाँ तथा पूर्वी भाग में मैकाल की श्रेणी कहते हैं। महाराष्ट्र का पठार लावा निर्मित है। उत्तर में तापी तथा दक्षिण में गोदावरी इसका जल बहाकर ले जाती है। दक्कन के दक्षिण भाग में आंध्र प्रदेश और कर्नाटक के पठार हैं। पठार में आद्य महाकल्प की नीस चट्टानें पाई जाती हैं। कृष्णा और कावेरी की सहायक नदियाँ इन पठारों का जल बहाकर ले जाती हैं।

बघेलखंड का पठार, छोटा नागपुर का पठार, महानदी की द्रोणी तथा दंडकारण्य, पूर्वी पठार के अंग हैं। महानदी के उत्तर में बघेलखंड का पठार है। सोन और इसकी सहायक नदियाँ इस पठार का जल बहाकर ले जाती हैं।

राजस्थान की खारी झीलें

थार मरुस्थल के पूर्वी सिरे पर दो सुविख्यात खारी झीले हैं। इनके नाम हैं : सांभर और डीडवाना। ये दोनों ही सामान्य नमक के स्रोत हैं। सांभर झील 'बॉलसन' का अच्छा उदाहरण है। पहाड़ियों से घिरे अभिकेन्द्री अपवाह वाले विस्तृत समतल गर्त को बॉलसन कहते हैं। चौरस सतह तथा अनप्रवाहित द्रोणी वाली छोटी झीलों को प्लाया कहते हैं। वर्षा के बाद इन झीलों में पानी इकट्ठा हो जाता है तथा बड़ी जल्दी भाप बनकर उड़ जाता है। डीडवाना खारी झील एक प्लाया है। कुचामन, सरगोल तथा खाटू झीलें ऐसी ही अन्य प्लाया हैं।

इन खारी झीलों की उत्पत्ति, बहुत समय से विवाद का विषय रही है। इनके खारीपन की व्याख्या के लिए चार सिद्धांत प्रतिपादित किए गए हैं : (क) नीचे के संस्तरों से नमक ऊपर आ जाता है। (ख) आस-पास की चट्टानों के निक्षालन से नमक की प्राप्ति होती है। (ग) कच्छ के रन से पवनें नमक के कण उड़ाकर लाती हैं। (घ) झीलें पीछे हटते हुए सागर के अवशेष हैं। नवीनतम वेधन और भू-रासायनिक खोजों के आधार पर प्रथम दो सिद्धांत ही सही लगते हैं।

छोटानागपुर का पठार ग्रेनाइट और नीस से बना है। यह झारखंड का दक्षिणी भाग है। इसकी औसत ऊँचाई 700 मी. है। यह प्राचीन अपरदित धरातल वाला है। इसकी तीन पहाड़ियाँ दालमा, पोरहाट और राजमहल लावा से बनी हैं। दामोदर इस पठार की प्रमुख जलवाहिका है। महानदी अपनी सहायक नदियों सहित पूर्वी पठार के मध्यवर्ती भाग की मुख्य अपवाहिका है। इस पठार का स्थानीय नाम छत्तीसगढ़ द्रोणी है। इस द्रोणी के दक्षिण में विरल जनसंख्या और ऊबड़-खाबड़ स्थलाकृति वाला प्रदेश है। इसे दंडकारण्य पठार कहते हैं।

पश्चिमी घाट की भाँति, पूर्वी घाट लगातार नहीं है। उड़ीसा में पूर्वी घाट को महेन्द्रगिरि कहते हैं। यह खौंडाइट तथा चर्नोकाइट नीस का बना है। दक्षिण की ओर जवादी और शेवराय की पृथक नीची पहाड़ियाँ हैं। तमिलनाडु के सुदूर दक्षिण में नीलगिरि, पश्चिमी घाट, पूर्वी घाट और दक्षिणी पहाड़ियों का मिलन स्थल है। नीलगिरि पर्वत निकटवर्ती क्षेत्रों से एकदम ऊपर उठा हुआ है। इसकी सबसे ऊँची चोटी दोदा-बेटा (2,637 मी.) है। इसी पर उद्गमंडलम (ऊटी) नाम का पहाड़ी स्थान भी है।

तटीय मैदान

प्रायद्वीपीय पठार की पूर्वी और पश्चिमी सीमाओं पर तटीय मैदान हैं। पश्चिमी तटीय मैदान की तुलना में पूर्वी तटीय मैदान शुष्क और चौड़ा है। पश्चिमी मैदान में दो सुविख्यात प्रायद्वीप : काठियावाड़ और कच्छ, तथा गुजरात का विस्तृत मैदान है। पूर्वी तट पर कई डेल्टा हैं। इनके नाम हैं : महानदी, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी के डेल्टा। पश्चिमी तट पर कोई डेल्टा नहीं है। पश्चिमी तट लगभग सीधा है, लेकिन पूर्वी तट वक्र है। पहले पर पर्याप्त वर्षा होती है तथा यहाँ बालू के टिब्बे नहीं हैं, जबकि दूसरे में वर्षा की कमी रहती है तथा यहाँ स्थानान्तरी बालू के टिब्बे हैं।

आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु में पूर्वी तट को पायन घाट (कोरोमंडल) कहते हैं। इसकी चौड़ाई 100 से लेकर 130 कि.मी. के बीच है। यह गोदावरी के डेल्टा से लेकर कन्याकुमारी तक फैला है। उड़ीसा तटीय क्षेत्र को उत्कल का मैदान कहते हैं। यह अपेक्षाकृत सीधा है तथा यहाँ बालू के टिब्बे भी हैं। पूर्वी तट पर दो विशाल लैगून हैं : एक पुलिकट, चेन्नई के उत्तर में तथा दूसरा चिल्का, पुरी के दक्षिण में है।

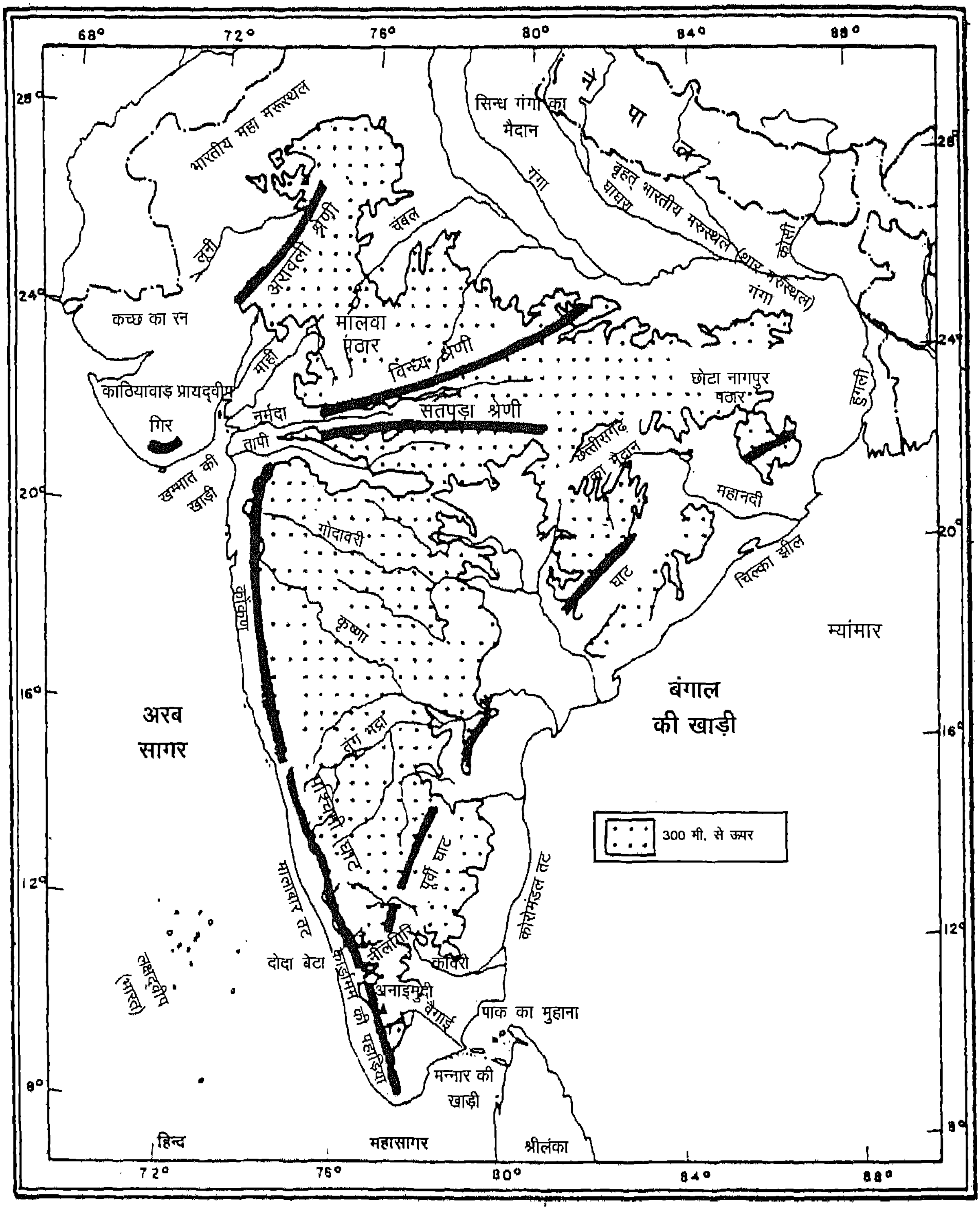
कन्याकुमारी और सूरत के बीच 1,500 कि.मी. की दूरी तक विस्तृत पश्चिमी तटीय मैदान की चौड़ाई 10 और 25 कि.मी. के बीच है। महाराष्ट्र के तटीय मैदान को कोंकण कहते हैं। कर्नाटक में इसे कन्नड के मैदान तथा केरल में मलाबार के मैदान के नाम से पुकारा जाता है। गुजरात का कच्छ प्रायद्वीप कभी एक द्वीप था, तब इसके चारों ओर जल रहता था। कच्छ के उत्तर में दो लवण मैदान हैं, जिन्हें बड़ा और छोटा रन कहते हैं। वर्षा ऋतु में ये पानी में डूब जाते हैं तथा वर्ष की शेष अवधि में सूख जाते हैं। काठियावाड़ के प्रायद्वीप में ज्वालामुखीय पहाड़ियाँ हैं। सुदूर दक्षिण में मालाबार तट पर अनेक पश्चजल हैं। स्थानीय भाषा में इन्हें 'कयाल' कहते हैं।

मन्नार की खाड़ी और गंगा के मुहाने को छोड़कर अरब सागर की तुलना में बंगाल की खाड़ी के महाद्वीपीय निमग्न तट संकरे हैं। महाराष्ट्र और गुजरात के तट के निकट ये निमग्न तट काफी विस्तृत हैं। आदम का पुल आज समुद्र में 4 मी. की गहराई में डूबा है, लेकिन कभी यह भारत और श्रीलंका के बीच आवागमन का स्थल मार्ग था। लेकिन हिम युग के बाद समुद्र तल के ऊँचा होने पर यह पानी में डूब गया। गंगा के डेल्टा का निकटवर्ती निमग्न तट उथला है। नदियों द्वारा लाए गए अवसादों का निक्षेपण इसका कारण है।

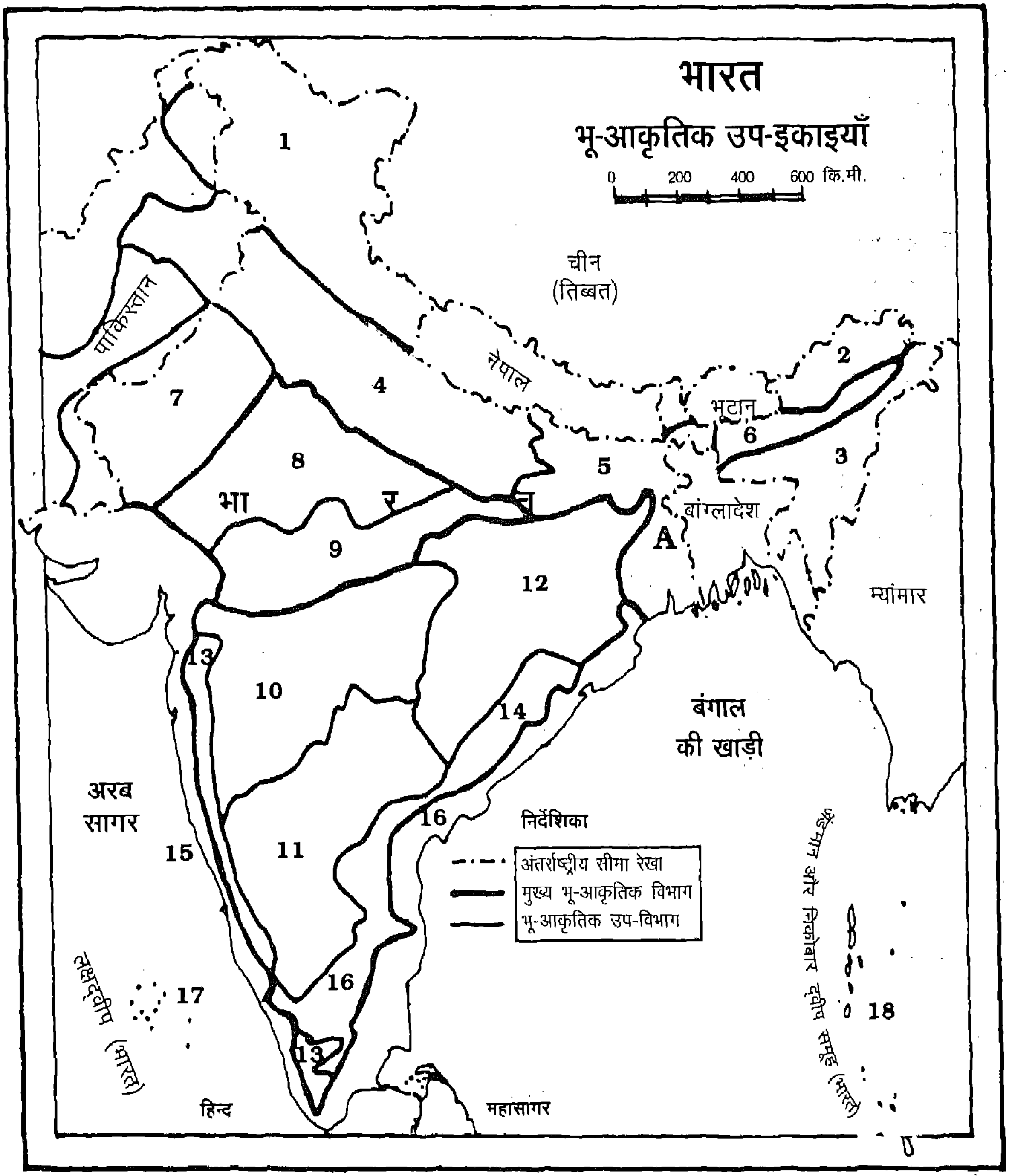
द्वीप समूह

बंगाल की खाड़ी और अरब सागर में अनेक द्वीप हैं। बंगाल की खाड़ी के द्वीप, अपेक्षाकृत बहुत बड़े और आवास योग्य हैं। अरब सागर के द्वीपों के विपरीत बंगाल की खाड़ी के द्वीप समुद्री पर्वतों की पानी से बाहर निकली चोटियाँ हैं, जबकि अरब सागर के द्वीप पूर्णतया मूंगे के निक्षेपों से बने हैं।

अंडमान और निकोबार बंगाल की खाड़ी के द्वीप समूह हैं। बड़ा अंडमान, उत्तरी, मध्य और दक्षिणी द्वीपों का समूह है। दक्षिण अंडमान में सबसे ऊँची



चित्र 2.8 : प्रायद्वीपीय पठार



भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र में भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
आन्तरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 2.9 भारत : भू-आकृतिक उप-इकाइयाँ

सारणी 2.3 : भारत : द्वीतीय क्रम की इकाइयाँ

(क) हिमालय पर्वत	**(घ) प्रायद्वीपीय पठार**
1. पश्चिमी हिमालय	10. उत्तर दक्कन
2. पूर्वी हिमालय	11. दक्षिण दक्कन
3. उत्तर-पूर्व पर्वत श्रेणी	12. पूर्वी पठार
	13. पश्चिमी पहाड़ियाँ
(ख) विशाल मैदान	14. पूर्वी पहाड़ियाँ
4. उत्तरी मैदान	
5. पूर्वी मैदान	**(ङ) तटीय मैदान**
6. असम का मैदान	15. पश्चिमी तटीय मैदान
7. थार मरुस्थल	16. पूर्वी तटीय मैदान
(ग) मध्यवर्ती उच्चभूमि	**(च) द्वीप समूह**
8. उत्तर मध्यवर्ती उच्चभूमि	17. लक्षद्वीप
9. दक्षिण मध्यवर्ती उच्चभूमि	18. अंडमान और निकोबार द्वीप समूह

पहाड़ी है। इसका नाम माउंट हैरियट (450 मी.) है। इसका दक्षिणी तट बहुत दंतुरित है। पोर्ट ब्लेयर इस केंद्रशासित प्रदेश का सबसे बड़ा पत्तन दक्षिण अंडमान में ही है। निकोबार में 19 द्वीप हैं। सबसे उत्तरी द्वीप कार निकोबार तटीय प्रवालभित्ति से घिरा है। बैरन द्वीप एक प्रसुप्त ज्वालामुखी है, जबकि नारकोडम द्वीप निर्वापित ज्वालामुखी है।

अरब सागर में स्थित लक्षद्वीप में कई द्वीप हैं। इनमें से 11 द्वीप अपेक्षाकृत बड़े हैं। सभी द्वीपों की उत्पत्ति प्रवालों से हुई है। सभी द्वीपों के चारों और तटीय प्रवालभित्तियाँ हैं।

भू-आकृतिक उप-इकाइयाँ

ऊपर वर्णित सात भू-आकृतिक इकाइयाँ बृहत क्रम की इकाइयाँ कही जा सकती हैं। प्रत्येक बृहत इकाइयों को छोटी-छोटी उप-इकाइयों अर्थात् द्वितीय क्रम की इकाइयों में बाँटा जाता है।

इन द्वितीय क्रम की भू-आकृतिक इकाइयों को तीसरे क्रम या सूक्ष्म इकाइयों में उप-विभाजित किया जा सकता है। विभिन्न विद्वान भू-आकृतिक इकाइयों का विभाजन अलग-अलग तरह से करते हैं। ये इकाइयाँ हमें भू-आकृति, जलवायु, वनस्पति, मृदा, कृषि, उद्योग, जनसंख्या आदि के अध्ययन के लिए आधार प्रदान करती हैं।

अभ्यास

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित के संक्षेप में उत्तर दीजिए:
   - (i) प्रमुख मानक भू-वैज्ञानिक महाकल्पों के नाम लिखिए।
   - (ii) पुराजीव शब्द का क्या अर्थ है ?
   - (iii) भारत के चार भू-वैज्ञानिक महाकल्पों के नाम बताइए।
   - (iv) टेथिस सागर कहाँ था ?
   - (v) भारत के प्रमुख भू-आकृतिक विभागों के नाम लिखिए।
   - (vi) ऐसी तीन पर्वत चोटियों के नाम बताइए जो 8,000 मी. से ऊँची हैं।
   - (vii) हिमालय की लंबाई और चौड़ाई लिखिए।

(viii) भारत की चार सबसे बड़ी हिमानियों के नाम बताइए।
(ix) 'दून' क्या है?
(x) भारत का सबसे प्राचीन विवर्तनिक पर्वत कौन सा है ?
(xi) थार मरुस्थल के विभिन्न प्रकार के बालू के टिब्बों के नाम बताइए।
(xii) 'रोही' मैदान किसे कहते हैं ?
(xiii) पश्चिमी घाट के दो दर्रों के नाम बताइए।
(xiv) 'कयाल' किसे कहते हैं ?
(xv) बैरन द्वीप कहाँ स्थित है ?

2. अंतर स्पष्ट कीजिएः
   (i) विंध्यपर्वत और पश्चिमी घाट
   (ii) नदी घाटियाँ और दून
   (iii) बांगर और खादर
   (iv) अरब सागर और बंगाल की खाड़ी के द्वीप समूह
   (v) भाबर और तराई।
3. मध्यवर्ती उच्च भूमियों के विशिष्ट लक्षणों का वर्णन कीजिए।
4. विशाल मैदान के विशिष्ट भू-लक्षणों का वर्णन कीजिए।
5. हिमालय की निर्माण प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।

परियोजना कार्य

6. भारत के रेखामानचित्र में निम्नलिखित की स्थिति दिखाइएः
   (i) थार मरुस्थल
   (ii) तटीय मैदान
   (iii) कांचनजुंगा
   (iv) नाथू ला और काराकोरम
   (v) शिवालिक पर्वतश्रेणी
   (vi) मेघालय का पठार
   (vii) दक्कन ट्रैप
   (viii) विंध्य और सतपुड़ा पर्वत श्रेणियाँ।

3
अध्याय

अपवाह तंत्र

एक निर्धारित जलमार्गों द्वारा जल के प्रवाह को अपवाह कहा जाता है। इस प्रकार के जलमार्गों के जाल को अपवाह तंत्र कहते हैं। नदियों और सहायक नदियों के विन्यास को प्राकृतिक अपवाह का प्रतिरूप कहा जाता है। कुछ कारक किसी क्षेत्र के अपवाह प्रतिरूप को निर्धारित करते हैं। ये कारक हैं : चट्टानों का स्वरूप और संरचना, स्थलाकृति, ढाल, प्रवाहित जल की मात्रा तथा प्रवाह की समय के अनुसार घट-बढ़।

अपवाह के विविध प्रतिरूप होते हैं। इनमें से कुछ प्रतिरूप हैं : द्रुमाकृतिक (वृक्षाकार), जालीनुमा, अभिकेन्द्री और गुबंदाकृति। जब अपवाह की आकृति वृक्ष के समान हो जाती है, तो अपवाह के प्रतिरूप को द्रुमाकृतिक कहते हैं। जब नदियाँ किसी पहाड़ी से चारों ओर विकीर्ण होती हैं, तो इस प्रतिरूप को अरीय प्रतिरूप कहते हैं। अभिकेंद्री प्रतिरूप में नदियाँ किसी गर्त या झील में मिल जाती हैं। जालीनुमा प्रतिरूप में प्रमुख सहायक नदियाँ एक दूसरे के लगभग समान्तर बहती हैं, जबकि गौण सहायक नदियाँ दोनों ओर से आकर मिलती हैं। गुंबदाकृति अपवाह प्रतिरूप में वलयाकार और अरीय अपवाह के तत्त्वों का मिला-जुला रूप होता है।

भारतीय अपवाह के प्रतिरूपों का अध्ययन बड़ा रोचक है। विशाल मैदान के अपवाह प्रतिरूप द्रुमाकृतिक हैं, जबकि हिमालय पर्वतमाला और पूर्वाचल के नाम से प्रसिद्ध पूर्वी पहाड़ियों में अपवाह का प्रतिरूप जालीनुमा है। प्रायद्वीपीय नदियाँ आयताकार प्रतिरूप बनाकर बहती हैं। थार मरुस्थल की विशेषता अभिकेंद्री अपवाह प्रतिरूप है।

जल संभर (water shed) एक क्षेत्र है, जिसका जल कोई नदी बहाकर ले जाती है। इसकी सीमा वह रेखा बनाती है, जो एक नदी के जल संभर को दूसरी नदी के जल संभर से पृथक करती है। विशाल नदियों के जल संभर को नदी-द्रोणियाँ (बेसिन) कहा जाता है, लेकिन छोटी सरिताओं और नालियों के रोके क्षेत्र जल संभर ही कहे जाते हैं। फिर भी, जल संभरों और नदी-द्राणियों में थोड़ा सा अंतर है। जल संभरों का क्षेत्रफल प्रायः 1,000 हेक्टेयर से कम ही होता है। जल संभर के लिए यह भी जरूरी नहीं है कि उनका निर्माण छोटी नदियों द्वारा ही हो। बिना किसी छोटी सरिता के भी जल संभर को देखा जा सकता है। इसके लिए केवल किसी क्षेत्र से जल प्रवाह का होना जरूरी है, जो किसी जलमार्ग या झील में चला जाता है।

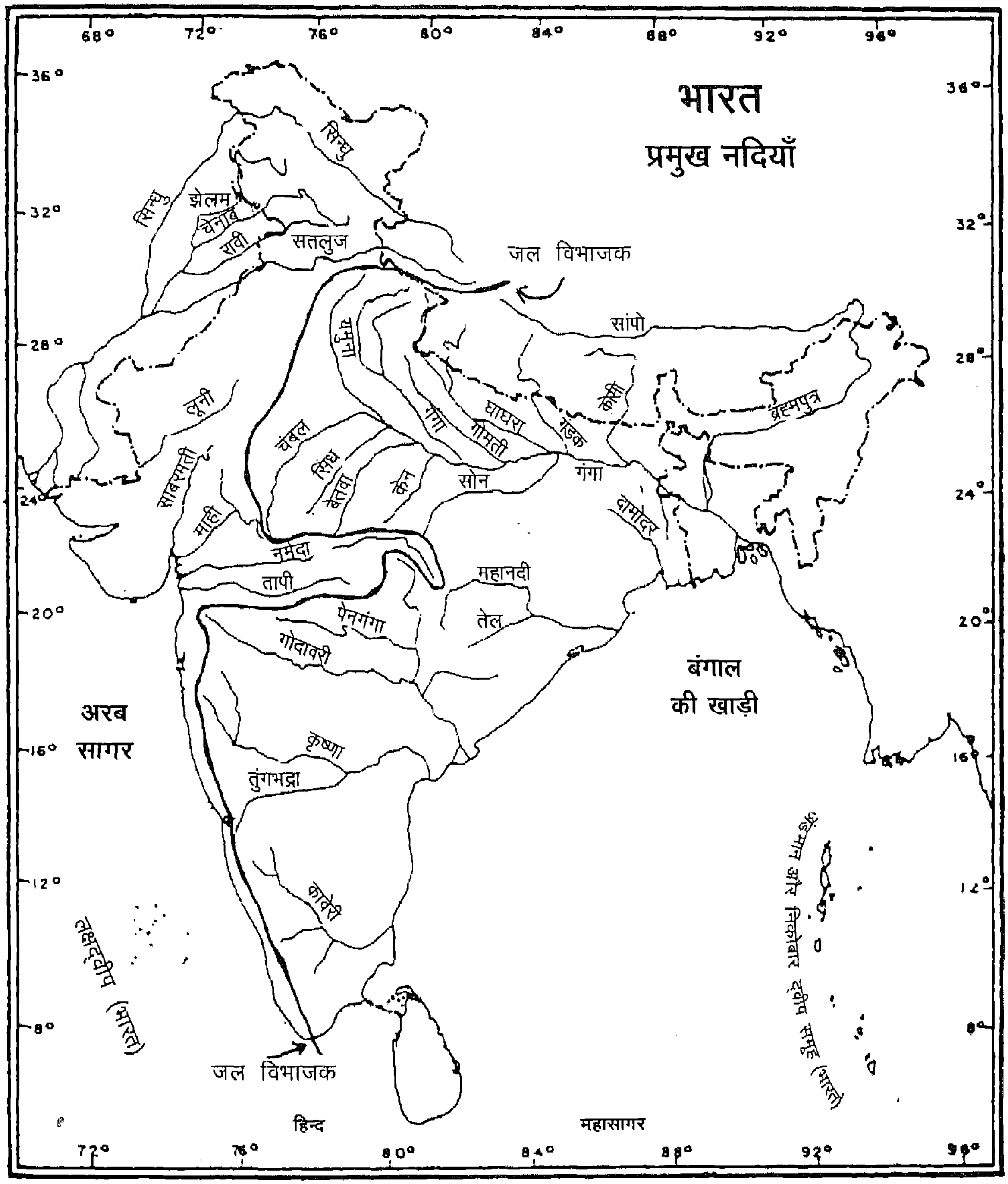
सहक्रिया और एकता नदी-द्रोणियों और जल संभरों की पहचान है। किसी द्रोणी या जल संभर में होने वाली घटना का प्रत्यक्ष प्रभाव इसके दूसरे भाग तथा संपूर्ण इकाई पर पड़ता है। इसीलिए इन्हें बृहत/लघुस्तर के विकास के नियोजन के लिए उपयुक्त नियोजन प्रदेश के रूप में स्वीकार किया गया है।

भारतीय नदियाँ

भारत में छोटी-बड़ी अनेक नदियाँ बहती हैं। भारत का अपवाह तंत्र, भू-आकृतियों की विकासात्मक प्रक्रियाओं और वर्षा का परिणाम है। असंख्य नदियाँ अपनी सहायक नदियों के साथ भारत के वर्षा जल को बहाकर समुद्र में ले जाती हैं (चित्र 3.1)। देश के वार्षिक वर्षण की कुल अनुमानित मात्रा 3,70,040 करोड़ घनमीटर है। इसमें से 1,67,753 करोड़ घनमीटर अर्थात् लगभग 45.3 प्रतिशत जल देश की 113 नदियों में प्रवाहित होता है। किसी नदी से अपवाहित क्षेत्र को इसकी द्रोणी, जलग्रहण क्षेत्र या जल संभर कहते हैं। नदी छोटी हो या बड़ी, इसकी द्रोणी या जल संभर या जलग्रहण क्षेत्र अवश्य होता है।

उत्पत्ति, स्वरूप और विशेषताओं के आधार पर भारत की नदियों को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। ये वर्ग हैं : हिमालय की नदियाँ, मध्यवर्ती तथा प्रायद्वीपीय भारत की नदियाँ, तटीय नदियाँ और अंतस्थलीय बेसिन की नदियाँ।

हिमालय की नदियाँ बर्फीले प्रदेशों से निकलती हैं, अतः इनमें पूरे वर्ष जल बहता है। पर्वतीय मार्ग में ये नदियाँ महाखड्डों (गार्ज) से होकर बहती हैं। मध्यवर्ती और प्रायद्वीपीय भारत की नदियाँ वर्षा के जल पर निर्भर रहती हैं। इसीलिए वर्ष की विभिन्न अवधियों में इन नदियों के जल प्रवाह में बहुत अधिक घट-बढ़ होती है। पश्चिमी तट की सरिताओं



चित्र 3.1 भारत : प्रमुख नदियाँ

के जलग्रहण क्षेत्र बहुत छोटे हैं। अंतस्थलीय बेसिन की नदियों का जीवन काल बहुत छोटा होता है। ये अपनी-अपनी उथली द्रोणियों की ओर बहती हैं तथा इनका जल कभी भी समुद्र में नहीं पहुँचता।

नदियों के चार वर्गों में से हिमालयी और प्रायद्वीपीय नदियों का जलविज्ञान की दृष्टि से बहुत महत्त्व हैं। हिमानियों में उद्गम स्रोत होने के कारण हिमालयी नदियाँ सदानीरा हैं। ये मुख्यतः हिम पोषित हैं, लेकिन इनके वर्षा पोषित स्रोत भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। उत्तर-भारत के मैदानों की नदियाँ नाव्य तथा सिंचाई के लिए उपयोगी हैं। भू-वैज्ञानिक दशाओं और भू-भाग के भुरभुरे होने के कारण नदियाँ मोड़ (विसर्प) बनाकर बहती हैं तथा प्रायः मार्ग बदल देती हैं। इसके विपरीत प्रायद्वीपीय नदियाँ चट्टानी भू-भाग से होकर बहती हैं, इसलिए इनमें विसर्पों की संख्या कम है। शुष्क ऋतु में ये रेत का विस्तृत क्षेत्र बन जाती हैं तथा वर्षा ऋतु में इनके जल प्रवाह की मात्रा बहुत बढ़ जाती है। जल की अधिकता और तेज प्रवाह के कारण इनके निचले भागों में बाढ़ आ जाती है। इनके निचले डेल्टाई भाग नाव्य हैं, लेकिन ऊपरी भाग के चट्टानी होने तथा जल की मात्रा के घटने-बढ़ने के कारण, ये नदियाँ नाव्य नहीं हैं।

हिमालयी और प्रायद्वीपीय नदियों की विशेषताएँ

पक्ष	*हिमालयी नदियाँ*	*प्रायद्वीपीय नदियाँ*
जल प्रवाह का स्वरूप	सदानीरा, हिम के पिघले जल और वर्षा जल पर निर्भर	ऋतुनिष्ठ, केवल वर्षा जल पर निर्भर
जल-ग्रहण क्षेत्र	विशाल द्रोणियाँ	छोटी द्रोणियाँ
अपरदन	तीव्र अपरदन के कारण हिमालय में गहरी घाटियाँ और महाखड्ड (गार्ज)	कम अपरदन के कारण उथली, आधार तल प्राप्त घाटियाँ
मार्ग का स्वरूप	विशाल मैदानों में मोड़दार मार्ग तथा मार्ग परिवर्तन	सीधा और रेखीय मार्ग
अन्य लक्षण	'V' आकृति की घाटियाँ, ऊँचे जलप्रपात और विशाल डेल्टा	उथली घाटियाँ, छोटे जलप्रपात, डेल्टा और ज्वारनदमुख

हिमालयी नदियाँ

हिमालयी नदी तंत्र का विकास लंबे भू-वैज्ञानिक काल में हुआ है । ब्रह्मपुत्र, गंगा और सिंधु, हिमालय की तीन प्रमुख नदियाँ हैं । ब्रह्मपुत्र और सिंधु के उद्गम स्रोत तिब्बत की उच्च भूमि के दक्षिण ढालों में है। प्रारंभ में ये नदियाँ हिमालय के अक्ष के समान्तर बहती हैं फिर अचानक दक्षिण की ओर मुड़ जाती हैं । मैदानों में पहुँचने के लिए इन्होंने हिमालय को काटकर गहरी घाटियों का निर्माण किया है। ब्रह्मपुत्र, कोसी, गंडक, अलकनंदा, सतलुज और सिंधु की गहरी घाटियों से प्रमाणित होता है कि ये हिमालय से भी पुरानी हैं। हिमालय के उत्थान की अवधि में भी ये नदियाँ बहती रही हैं और अपने तल को निरंतर गहरा करती रहीं, जिसके कारण इनके किनारे ऊँचे, और ऊँचे होते गए। ये नदियाँ हिमालय के उच्चावच की अनुवर्ती नहीं हैं। ये तो पूर्ववर्ती अपवाह का सुंदर उदाहरण हैं।

पर्वतों से निकलकर हिमालयी नदियों ने विशाल द्रोणियों का निर्माण किया है। इनके जल-ग्रहण क्षेत्र हजारों वर्ग कि.मी. क्षेत्र में फैले हैं। ये अब भी तीव्रता से अपरदन कर रही हैं। इसीलिए ये अपने साथ विशाल मात्रा में अपरदित पदार्थ (गाद, मिट्टी) बहाकर ले जाती हैं। इन पदार्थों के कुछ अंश को तो ये स्वनिर्मित मैदानों में जमा कर देती हैं और शेष को समुद्र में जमा करके विराट डेल्टाओं का निर्माण करती हैं। पर्वतीय मार्ग में हिमालयी नदियाँ गहरे महाखड्ड (गार्जों) से होकर गुजरती हैं। यहाँ इनके मार्ग बहुत टेढ़े-मेढ़े हैं। मैदान में प्रवेश करते ही ये बड़े-बड़े विसर्प बनाती हैं तथा प्रायः ही मार्ग बदलती रहती हैं, जिसके अवशिष्ट लक्षण जैसे छाड़ (चाप) झील हैं। ये सदानीरा नदियाँ हैं, क्योंकि इन्हें भारी वर्षा का तथा हिम का पिघला हुआ जल मिलता रहता है। लेकिन इनके प्रवाह की मात्रा ऋतुओं के अनुरूप घटती-बढ़ती रहती है।

भू-वैज्ञानिक प्रमाणों से ऐसे संकेत मिलते हैं कि हिमालय से निकलने वाली प्रमुख नदियाँ, पूर्व से पश्चिम को बहने वाली इंडोब्रह्म नदी की प्राचीन सहायक नदियाँ हैं। हिमालय की नदियों ने अपरदित पदार्थों से टेथिस सागर को भर दिया था। टेथिस के अवशेष के रूप में ही यह विशाल नदी इंडोब्रह्म रह गई थी। आज की सिंधु नदी की द्रोणी के क्षेत्र के ऊपर उठ जाने के कारण इंडोब्रह्म नदी की दिशा बदलकर पश्चिम से पूर्व हो गई थी।

हिमालयी नदी तंत्र में अनेक नदी तंत्र हैं। इनमें से सबसे प्रमुख निम्नलिखित हैं :

1. सिधु नदी तंत्र
2. गंगा नदी तंत्र
3. ब्रह्मपुत्र नदी तंत्र।

सिंधु नदी तंत्र : यह संसार की सबसे बड़ी नदी द्रोणियों में से एक है। सिंधु की पाँच बड़ी सहायक नदियाँ हैं : झेलम, चिनाब, रावी, ब्यास और सतलुज। सिंधु का उदगम स्रोत तिब्बत में मानसरोवर झील के निकट 5,180 मी. की ऊँचाई पर है। पहले यह उत्तर पश्चिम दिशा में बहती है, फिर हिमालय पर्वत को काटकर जम्मू और कश्मीर में दमचौक के निकट भारत में प्रवेश करती है। लद्दाख, बाल्तिस्तान और गिलगिट से होकर बहती हुई, यह दर्दिस्तान प्रदेश में चिल्लास के निकट पाकिस्तान में प्रवेश कर जाती है।

सिंधु के बाएँ और दाएँ तटों पर अनेक हिमालयी सहायक नदियाँ आकर मिलती हैं। इनमें से प्रमुख हैं : श्याक, गिलगिट, जांस्कर, हुंजा, नुब्रा और शिगार। अंत में अटक के निकट यह पर्वतों को छोड़कर मैदान में आ जाती है। यहीं दाईं ओर से इसमें काबुल नदी आकर मिलती है। सिंधु की दाएँ तट की अन्य प्रमुख नदियाँ हैं : कुर्रम, तोची, गोमल, विबोआ तथा सांगर। इन सभी के उद्गम स्रोत सुलेमान पर्वत श्रेणी में हैं। इसके बाद नदी दक्षिण दिशा में बहती है, जहाँ मिठनकोट से थोड़ा ऊपर इसमें पंचनद आकर मिलती है। पंजाब की पाँच नदियों, सतलुज, ब्यास, रावी, चिनाब और झेलम की संयुक्त धारा को पंचनद नाम दिया गया है। सिंधु अतंतोगत्वा कराची के पूर्व में अरब सागर में मिल जाती है। सिंधु भारत में केवल जम्मू और कश्मीर राज्य से होकर ही बहती है। इसका औसत वार्षिक प्रवाह 1,10,450 घन मी. है (सारणी 3.1)। सिंधु का कुल जल-ग्रहण क्षेत्र 11,65,000 वर्ग कि.मी.है। इसमें से 3,21,290 वर्ग कि.मी भारत में है,जो कुल का 20 प्रतिशत है।

झेलम, सिंधु की महत्त्वपूर्ण सहायक नदी है। यह वेरीनाग के झरने से निकलती है। वेरीनाग कश्मीर घाटी के दक्षिण-पश्चिम भाग में है। श्रीनगर के निकट तथा वूलर झील में होकर बहने के बाद,यह एक संकरे महाखड्ड (गार्ज) से होकर पाकिस्तान में पहुँचती है। इस द्रोणी के कुल अपवाह क्षेत्र में से 28,490 वर्ग कि.मी. भारत में है। मुज्जफराबाद और मंगला के मध्य यह भारत-पाकिस्तान सीमा के साथ-साथ बहती है। पाकिस्तान में झंग के निकट यह चिनाब में मिल जाती है।

चिनाब, सिंधु की सबसे बड़ी सहायक नदी है। यह चन्द्रा और भागा नाम की दो सरिताओं के मिलने से बनी है। ये दोनों केलाँग के निकट तंडी में मिलती हैं। ये दोनों नदियाँ हिमाचल प्रदेश में हिमालय की हिममंडित चोटियों से निकलती हैं। चिनाब की कुल लंबाई 1,180 कि.मी. है और यह भारत के 26,755 वर्ग कि.मी. क्षेत्र का जल बहाकर ले जाती है।

रावी, सिंधु की दूसरी प्रमुख सहायक नदी है। यह हिमाचल प्रदेश की कुल्लू पहाड़ियों में रोहतांग दर्रे के पश्चिम से निकलती है तथा इस राज्य की चंबा घाटी से होकर बहती है। भारत में इसकी कुल लंबाई 725 कि.मी. है तथा यह भारत के 5,957 वर्ग कि.मी. क्षेत्र का जल

बहाकर ले जाती है। रावी धौलाधार और पीरपंजाल श्रेणियों के बीच के क्षेत्र का जल प्रवाहित करती है।

ब्यास, सिंधु की एक अन्य सहायक है। 4,000 मी. की ऊँचाई पर रोहतांग दर्रे के निकट व्यास कुंड से इसका उद्गम स्रोत है। इसकी कुल लंबाई 470 कि.मी. है तथा यह 25,900 वर्ग कि.मी. क्षेत्र का जल बहाकर ले जाती है। यह कुल्लू घाटी से होकर बहती है तथा धौलाधार पर्वत श्रेणी को पार करके यह पंजाब के मैदानों में पहुँचती है। यह हरिके नामक स्थान पर सतलुज में मिल जाती है।

सिंधु की मुख्य सहायिका सतलुज, तिब्बत में 4,555 मी. की ऊँचाई पर स्थित राकस झील से निकलती है। यह भारत में 1,050 कि.मी. की दूरी में बहती हुई 24,087 वर्ग कि.मी. के क्षेत्र का जल प्रवाहित करती है। हिमालय की श्रेणी के शिपकी ला से होकर बहती हुई यह पंजाब के मैदान में प्रवेश करती है। भाखड़ा-नांगल योजना, हरिके, और सरहिंद नहरी तंत्र को जल प्रदान करने के कारण यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण नदी है।

गंगा नदी तंत्र : द्रोणी तथा सांस्कृतिक महत्त्व की दृष्टि से गंगा भारत की प्रमुख नदी है। उत्तरांचल के उत्तरकाशी जिले में 3,900 मी.की ऊँचाई पर स्थित गोमुख के निकट गंगोत्री हिमानी गंगा का उद्गम स्रोत है। यहाँ इसे भागीरथी कहते हैं। गंगा ने मध्य हिमालय और लघु हिमालय को काटकर संकरे महाखड्ड (गार्ज) बनाए हैं। देवप्रयाग में भगीरथी, अलकनंदा से मिलती है। यहीं से दोनों की संयुक्तधारा का नाम गंगा हो जाता है। अलकनंदा का उद्गम स्रोत बदरीनाथ के ऊपर सतोपंथ हिमानी में है। हरिद्वार के निकट गंगा मैदान में प्रवेश करती है। यहाँ से पहले यह दक्षिण दिशा में तथा पुनः दक्षिण पूर्व और पूर्व दिशा में बहती है। और आगे चलकर भागीरथी और हुगली नाम की दो वितरिकाओं में बँट जाती है। गंगा की कुल लंबाई 2,525 कि.मी. है। उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश में 1,450 कि.मी., बिहार में 445 कि.मी. तथा पश्चिम बंगाल में 520 कि.मी. की दूरी में गंगा बहती है। गंगा के केवल भारत के बेसिन का ही क्षेत्रफल 9,52,000 वर्ग कि.मी. है।

भारत में गंगा नदी का तंत्र बहुत बड़ा है। इसमें उत्तर में हिमालय से तथा दक्षिण में प्रायद्वीपीय पठार से सहायक नदियाँ आकर मिलती हैं। इनमें से कुछ सदानीरा तथा अन्य बरसाती हैं। इसके दाहिने तट पर आकर मिलने वाली प्रमुख सहायक नदियाँ हैः यमुना, सोन और पुन-पुन। बाएँ तट की प्रमुख सहायक नदियाँ ये हैं : रामगंगा, गोमती, घाघरा, राप्ती, गंडक, कोसी और महानंदा। ये सभी सदानीरा हैं और हिमालय से निकलती हैं। पश्चिम बंगाल के मालदा जिले के फरक्का नामक स्थान से नीचे गंगा दो भागों में विभाजित हो जाती हैः एक भागीरथी-हुगली और दूसरी पद्मा। अंत में गंगा बंगाल की खाड़ी में मिल जाती है।

यमुना, गंगा की सबसे पश्चिम की तथा सबसे लंबी सहायिका है। यमुना बँदरपूँछ (6,316 मी.) श्रेणी पर स्थित यमुनोत्री हिमानी से निकलती है। यमुना की द्रोणी 3,66,223 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में फैली है। यह प्रयाग (इलाहाबाद) में गंगा से मिल जाती है। यमुना के दाहिने किनारे पर चंबल, सिंद, बेतवा और केन आकर मिलती हैं। यह उत्तरांचल, दिल्ली और उत्तर प्रदेश का जल बहाकर ले जाती है।

चंबल, मध्य प्रदेश के मालवा पठार पर स्थित महू के निकट से निकलती है। यह पहले उत्तर की ओर राजस्थान के कोटा तक एक महाखड्ड में से होकर बहती है। कोटा के निकट गांधी सागर बाँध बनाया गया है। कोटा से बूंदी, सवाईमाधोपुर और धौलपुर से होकर बहती हुई अंत में यमुना में मिल जाती है। चंबल 960 कि.मी. लंबी है। इसकी दो सहायक नदियाँ हैं : बनास और कालीसिंद। बनास इसके बाएँ तट पर तथा कालीसिंद दाएँ तट पर मिलती हैं। चंबल अपनी उत्खात भूमि की स्थलाकृति के लिए प्रसिद्ध है। उत्खात भूमि को यहाँ बीहड़ कहते हैं।

गंडक, धौलागिरि और एवरेस्ट पर्वत के मध्य नेपाल हिमालय से निकलती है। यह नेपाल के मध्य भाग का जल बहाकर लाती है। यह बिहार के चंपारन जिले में गंगा के मैदान में प्रवेश करती है तथा पटना के निकट सोनपुर में गंगा में मिल जाती है।

कोसी एक पूर्ववर्ती नदी है। इसकी मुख्यधारा अरुण, एवरेस्ट पर्वत के उत्तर में तिब्बत से निकलती है। नेपाल में मध्य हिमालय को पार करते ही पश्चिम की ओर से इसमें सुनकोसी तथा पूर्व की ओर से तमूर कोसी आकर मिल जाती है। अरुण से मिलने के बाद यह सुप्त कोसी बन जाती है। प्रायः मार्ग बदलने की प्रवृत्ति के कारण इसे 'बिहार का शोक' कहा जाता है। नदी संरक्षण के अनेक उपायों के बावजूद इसमें हर वर्ष भयंकर बाढ़ आती है।

कुमाऊं की पहाड़ियों से निकलने वाली रामगंगा अपेक्षाकृत एक छोटी नदी है। कालागढ़ के निकट गंगा के मैदान में आने से पहले यह शिवालिक की श्रेणी को काट देती है, लेकिन यह श्रेणी इसे दक्षिण पश्चिम की ओर धकेल देती है। यह कन्नौज के निकट गंगा में मिल जाती है।

शारदा (सरयू), नेपाल हिमालय में मिलाम हिमानी से निकलती है। प्रारंभ में इसे गौरीगंगा कहते हैं। भारत-नेपाल सीमा पर इसे काली नदी कहते हैं। उत्तर प्रदेश के बाराबंकी जिले में जब यह घाघरा से मिलती है, तो इसे चौक कहते हैं। महानंदा दार्जिलिंग की पहाड़ियों से निकलती है तथा गंगा में मिल जाती है। भारत में यह गंगा की बाएँ तट की अन्तिम सहायिका है।

अमरकंटक के पठार से निकलनेवाली सोन, गंगा के दक्षिणी तट की मुख्य सहायिका है। पठार के किनारे पर जलप्रपातों की एक शृंखला बनाती हुई यह पटना के निकट गंगा में मिल जाती है। दामोदर नदी छोटा नागपुर के पूर्वी भाग में बहती है। यह नदी एक भ्रंश घाटी से होकर बहती है। बाराकर इसकी मुख्य सहायिका है। दामोदर अंत में हुगली में मिल जाती है।

ब्रह्मपुत्र नदी तंत्र : ब्रह्मपुत्र संसार की सबसे बड़ी नदियों में से एक है। हिमालय के उस पार मानसरोवर झील के निकट, कैलाश श्रेणी की एक हिमानी इसका उद्गम स्रोत है। यहाँ से यह सांपू के नाम से दक्षिणी तिब्बत के शुष्क और समतल क्षेत्र में 1,200 कि.मी. की दूरी तक पूर्व की ओर अनुदैर्ध्य घाटी में बहती है। तिब्बती भाषा में सांपू का अर्थ पवित्र करनेवाली होता है। तिब्बत में रांगो इसके दाहिने तट की प्रमुख सहायिका है। नामचा बरवा (7,755 मी.) के निकट मध्य हिमालय को महाखड्ड के रूप में काट कर यह एक उग्र और ऊर्जस्वी धारा के रूप में प्रकट होती है। यह नदी सियांग और फिर दिहांग के नाम से भारत में प्रवेश करती है। कुछ दूरी तक दक्षिण-पश्चिम दिशा में बहने के बाद इसकी दो प्रमुख सहायक नदियाँ दिबांग और लोहित इसके बाएँ किनारे पर आकर मिलती है। इसके बाद इस नदी को ब्रह्मपुत्र कहते हैं।

असम घाटी की 750 कि.मी. की यात्रा में ब्रह्मपुत्र में कई सहायक नदियाँ आकर मिलती हैं। बाईं ओर की प्रमुख सहायिकाएँ हैः बूढी दिहिंग, धनश्री और कालांग। दाहिनी ओर की प्रमुख सहायिकाएँ ये हैः सुबनश्री, कामांग, मानस और संकोश। सुबनश्री हिमालय के उस पार तिब्बत से निकलती है। धूबरी के निकट ब्रह्मपुत्र बांग्लादेश में प्रवेश करके दक्षिण की ओर बहती है। बांग्लादेश में ब्रह्मपुत्र का नाम जमना है। जमना में दाहिनी ओर से तिस्ता नदी आकर मिलती है। तिब्बत, भारत और बांग्लादेश में 2,900 कि.मी. की दूरी तय करके, अंत में यह पद्मा में विलीन हो जाती है। पद्मा बंगाल की खाड़ी में मिल जाती है। ब्रह्मपुत्र बाढ़ों, मार्ग परिवर्तन और तट-अपरदन के लिए बदनाम है। पूर्वांचल हिमालय और शिलांग के पठार पर होने वाली भारी वर्षा के कारण ही इसमें बाढ़ें आती हैं। इसकी अधिकतर सहायिकाएँ बहुत बड़ी हैं और वे भारी मात्रा में अवसाद लाकर इसमें डालती हैं।

प्रायद्वीपीय नदियाँ

हिमालयी नदी तंत्र की तुलना में प्रायद्वीपीय नदी तंत्र अधिक पुराना है। पश्चिमी घाट, पश्चिमी तट के निकट और समान्तर विस्तृत है। यह एक जल विभाजक है। इसके पश्चिम में छोटी-छोटी सरिताएँ बहकर अरब सागर में जा मिलती हैं तथा पूर्व में प्रमुख प्रायद्वीपीय नदियाँ बंगाल की खाड़ी की ओर बहती है। नर्मदा और तापी को छोड़कर, अधिकतर प्रायद्वीपीय नदियाँ पश्चिम से पूर्व दिशा में बहती हैं।

सुदूर भूतकाल में घटी दो प्रमुख भू-वैज्ञानिक घटनाओं ने प्रायद्वीपीय भारत के नदी तंत्र को वर्तमान स्वरूप प्रदान किया है। प्रथम घटना थी, प्रायद्वीप के पश्चिमी भाग का जलमग्न होना। इसके परिणामस्वरूप पश्चिम की ओर बहने वाली नदियों के केवल ऊपरी भाग ही समुद्रतल से ऊपर रह गए। दूसरी घटना थी, हिमालय के उत्थान के साथ नर्मदा और तापी नदियों की भ्रंश घाटियों का निर्माण। नर्मदा और तापी भ्रंश घाटियों में बहती हैं। इन्होंने अपने अपरदित पदार्थों से मूल दरारों को पाट दिया है। इसी कारण इन नदियों में जलोढ़ और डेल्टाई निक्षेपों की कमी है।

प्रायद्वीप की अनेक नदियाँ वर्षाधीन हैं तथा सदानीरा नहीं हैं। नदी तल की कठोर चट्टानों तथा अल्प जलोढ़ निक्षेपों के कारण, कुल मिलाकर इनके मार्ग सीधे या रेखीय हैं। ये नदियाँ प्रौढ़ हैं तथा इनकी घाटियाँ संतुलित (graded) और उथली हैं। प्रायद्वीपीय भारत की प्रमुख नदियाँ हैः महानदी, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी। ये सभी

बंगाल की खाड़ी में मिलती हैं तथा अपने मुहानों पर विशाल डेल्टा बनाती हैं। पश्चिमी घाट के पश्चिम की ओर बहनेवाली नदियाँ छोटी हैं और ये डेल्टा नहीं बनाती हैं। प्रायद्वीपीय भारत की प्रमुख नदियों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है।

गोदावरी : यह प्रायद्वीपीय भारत की सबसे बड़ी नदी है। स्थिति, आयु, आकार और लंबाई के कारण इसे दक्षिण गंगा या वृद्ध गंगा कहते हैं। महाराष्ट्र के नाशिक जिले से निकलकर यह बंगाल की खाड़ी में गिर जाती है। इसकी सहायक नदियों का जाल महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा और आंध्र प्रदेश में फैला है। यह 1,465 कि.मी. लंबी है तथा इसका जल ग्रहण क्षेत्र 3,12,812 वर्ग कि.मी. में फैला है। जलग्रहण क्षेत्र का 49 प्रतिशत महाराष्ट्र में, 20 प्रतिशत मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ तथा शेष आंध्र प्रदेश में फैला है। इसकी प्रमुख सहायिकाएँ हैं: पेन गंगा, बर्धा, वेन गंगा, सबरी और मंजरा। पोलावरम से नीचे गोदावरी में प्रायः भयंकर बाढ़ आती है। डेल्टाई प्रदेश में यह नदी नाव्य है।

कृष्णा : पूर्व की ओर बहने वाली कृष्णा नदी प्रायद्वीप की दूसरी सबसे बड़ी नदी है। यह महाबलेश्वर के निकट सह्याद्रि से निकलती है। इसकी कुल लंबाई 1,400 कि.मी. है। कृष्णा की द्रोणी का क्षेत्रफल 2,59,000 वर्ग कि.मी. है तथा यह कुल मिलाकर 67,670 करोड़ घनमीटर जल बहाकर ले जाती है। इसकी प्रमुख सहायक नदियाँ हैं: कोयना, येरिया, वरणा, पंचगंगा, मूसी, तुंगभद्रा और भीमा। भीमा और तुंगभद्रा प्रमुख सहायिकाएँ हैं। इनकी द्रोणियों के क्षेत्रफल क्रमशः 76,614 तथा 71,417 वर्ग कि.मी. है। कृष्णा के जलग्रहण क्षेत्र का 27 प्रतिशत महाराष्ट्र में, 44 प्रतिशत कर्नाटक में तथा 29 प्रतिशत आंध्र प्रदेश में हैं।

महानदी : छत्तीसगढ़ के रायपुर जिले में सिहावा के निकट इसका उद्गम स्रोत है। यह नदी उड़ीसा में बहती हुई बंगाल की खाड़ी में गिर जाती है। यह 858 कि.मी. लंबी है तथा इसका जलग्रहण क्षेत्र 1,41,589 वर्ग कि.मी. है। यह नदी भी बाढ़ों के लिए बदनाम है। यह प्रतिवर्ष 67,000 करोड़ घन मी. जल बहाकर ले जाती है। निचले मार्ग में यह नदी नाव्य है। महानदी की द्रोणी का 53 प्रतिशत मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ में तथा 47 प्रतिशत उड़ीसा में है। इसकी प्रमुख सहायक नदियाँ हैं: शिवनाथ, हसदो, मांद, ईव, जोंकिंग और तेल।

कावेरी : यह कर्नाटक के कुर्ग जिले की 1,341 मीटर ऊँची ब्रहमागिरि की पहाड़ियों से निकलती है। इसकी कुल लंबाई 800 कि.मी. है। यह 67,900 वर्ग कि.मी. क्षेत्र का जल अपवाहित करती है। इसके ऊपरी जल-ग्रहण क्षेत्र में दक्षिण-पश्चिम मानसून (ग्रीष्म ऋतु) में वर्षा होने के कारण तथा निचले भाग में उत्तर-पूर्व मानसून (शीत ऋतु) में वर्षा होने के कारण इसमें वर्षभर जल प्रवाह बना रहता है। अन्य प्रायद्वीपीय नदियों की तुलना में इसके जल प्रवाह में कम घट-बढ़ होती है। कावेरी की 3 प्रतिशत द्रोणी केरल में, 41 प्रतिशत कर्नाटक में तथा 56 प्रतिशत तमिलनाडु में है। इसके दाहिने तट की सहायक नदियाँ हैं : लक्ष्मण तीर्थ, कबिनी, सुवर्णावती, भवानी और अमरावती हैं तथा बाएँ किनारे की सहायिकाएँ हेरंगी, हेमावती, शिम्शा, और अर्कावती हैं।

नर्मदा : पश्चिम की ओर बहने वाली इस नदी का उद्गम स्थान मध्य प्रदेश में अमरकंटक के निकट है। 1,300 कि.मी. लंबी यह नदी अरब सागर में गिरती है। इसकी द्रोणी का क्षेत्रफल 98,796 वर्ग कि.मी. है। नर्मदा की द्रोणी का 87 प्रतिशत मध्य प्रदेश में, 1.5 प्रतिशत महाराष्ट्र में तथा शेष गुजरात में है। 300 कि.मी. लंबी ओरिसन नदी को छोड़कर नर्मदा की कोई भी सहायिका 200 कि.मी. से अधिक लंबी नहीं है। इनमें से अधिकतर ग्रीष्म ऋतु में सूख जाती हैं।

तापी : पश्चिम की ओर बहने वाली दूसरी उल्लेखनीय नदी तापी है। यह अपनी यात्रा मध्य प्रदेश के बेतूल जिले से प्रारंभ करती है। यह 724 कि.मी. लंबी है तथा 64,750 वर्ग कि.मी. क्षेत्र का जल बहाकर ले जाती है। इसमें प्रतिवर्ष 17,980 करोड़ घन मी. जल प्रवाहित होता है। इसकी द्रोणी का 79 प्रतिशत भाग गुजरात में है। इसमें बाईं ओर से आकर मिलने वाली सहायक नदियाँ हैं: पूर्णा, वेघर, गिरना, बोरी और पांझर। दाहिनी ओर से अनेर आकर इसमें मिलती है। इस नदी का केवल निचला भाग ही नाव्य है।

तटीय नदियाँ

तटीय नदियाँ पश्चिम अरब सागर की ओर तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी की ओर बहती हैं। पश्चिम की ओर बहने

वाली प्रमुख नदियाँ ये हैं: शतरंजी, भद्रा, वैतरणा, काली नदी, बेड़ती, शरावती, भारतपुझा, पेरियार और पंबा। शतरंजी अमरेली जिले के दलकहवा के निकट से, भद्रा राजकोट जिले में अनियाली गाँव के पास से, तथा धांधर गुजरात के ही पंचमहल जिले के घंटार गाँव के निकट से निकलती हैं। धांधर 135 कि.मी. लंबी है तथा इसका जलग्रहण क्षेत्र 2,770 वर्ग कि.मी. है। वैतरणा का उद्गम स्रोत महाराष्ट्र के नासिक जिले में 670 मी. की ऊँचाई पर त्रियंबक की पहाड़ियों के दक्षिणी ढालों पर है। 172 कि.मी. की यात्रा के बाद यह वलसाड़ के निकट अरब सागर में गिरती है। काली नदी कर्नाटक के बेलगाँव जिले में बीडी नामक गाँव के निकट से निकलती है और कारवाड़ की खाड़ी में गिरती है। इसका जलग्रहण क्षेत्र 5,179 वर्ग कि.मी. है। 161 कि.मी. लंबी बेड़ती नदी का उद्गम स्रोत हुबली-धारवाड के आस-पास की पहाड़ियों में 701 मी. की ऊँचाई पर है। शरावती का उद्गम स्थान कर्नाटक के शिमोगा जिले में है। इसी नदी पर प्रसिद्ध गरसोपा (जोग) जल प्रपात है। इसका जलग्रहण क्षेत्र 2,209 वर्ग कि.मी. है। भारतपुझा को पोन्नानी भी कहते हैं। यह केरल की सबसे लंबी नदी है। यह अन्नामलाई की पहाड़ियों के पास से निकलती है। इसका अपवाह क्षेत्र 5,397 वर्ग कि.मी. है। केरल की दूसरी सबसे लंबी नदी पेरियार का जलग्रहण क्षेत्र 5,243 वर्ग कि.मी. है। 177 कि.मी. लंबी पंबा नदी वेंबनाद झील में गिरती है।

सुवर्ण रेखा, बैतरणी और ब्राह्मणी के अलावा पूर्व की ओर बहने वाली प्रमुख नदियाँ हैं: वंशधारा, पेन्नर, पलार और वैगाई। वंशधारा का उद्गम तो उड़ीसा के दक्षिणी भाग में है, लेकिन यह आंध्र प्रदेश में बहती हुई, बंगाल की खाड़ी में मिल जाती है। पेन्नर कर्नाटक से निकलकर आंध्र प्रदेश में बहती है। पलार का जलग्रहण क्षेत्र 17,870 वर्ग कि.मी. है। पोइनी और चेय्यार इसकी दो प्रमुख सहायक नदियाँ हैं। वैगाई केरल से निकलती है। यह पेरियार के अपवर्तित जल को लेकर अंत में पाक की खाड़ी में गिर जाती है। छोटी-छोटी तटीय नदियों की विशेषताएँ हैं: तीव्र ढाल, भारी मात्रा में गाद, तथा प्रवाह में शीघ्र घट-बढ़। तटीय क्षेत्रों की कृषि भूमि की सिंचाई में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान है।

नदी प्रवृत्तियाँ

किसी नदी में जल के ऋतुनिष्ठ प्रवाह के प्रतिरूप को इसकी प्रवृत्ति कहते हैं। हिमालयी और प्रायद्वीपीय नदियों के प्रवाह के प्रतिरूपों में अंतर का मुख्य कारण जलवायु में अंतर है। हिमालयी नदियाँ सदानीरा हैं। इनकी प्रवृत्तियाँ, हिम के पिघलने से और वर्षा के जल दोनों की ही आपूर्ति के प्रतिरूप पर निर्भर करती हैं। इनकी प्रवृत्तियाँ मानसूनी और हिमनदीय दोनों ही हैं। इसके विपरीत प्रायद्वीपीय नदियों की प्रवृत्तियाँ केवल मानसूनी हैं, क्योंकि इन पर केवल वर्षा का ही नियंत्रण है। प्रायद्वीप की विभिन्न नदियों की प्रवृत्तियाँ भी एक समान नहीं है, क्योंकि पठार के विभिन्न भागों की वर्षा के ऋतुनिष्ठ वितरण में अंतर होता है।

किसी नदी में बहने वाले जल की मात्रा जिसे किसी समयावधि में नापा गया हो, 'विसर्जन' कहते हैं। जल विसर्जन को क्यूसेक्स या क्यूमैक्स में नापा जाता है। क्यूसेक्स का अर्थ है: घन फुट प्रति सेकेंड तथा क्यूमैक्स का अर्थ है: घन मी. प्रति सेकेंड। जनवरी से लेकर जून तक गंगा में जल का न्यूनतम प्रवाह रहता है। अगस्त या सितंबर में अधिकतम प्रवाह होता है। सितंबर के बाद प्रवाह निरंतर घटता जाता है। इस प्रकार नदी में एक विशिष्ट मानसूनी प्रवृत्ति है। गंगा की द्रोणी के पूर्वी और पश्चिमी भाग की नदी प्रवृत्तियों में असाधारण अंतर पाए जाते हैं। मानसूनी वर्षा से पहले, ग्रीष्म ऋतु के पहले भाग में गंगा में पर्याप्त जल बहता है। इसका मुख्य कारण हिमालय पर बरफ का पिघलना है। लेकिन विसर्जन के आंकड़ों में फरक्का से पहले के विभिन्न स्थानों पर सिंचाई के लिए उपयोग में लाई गई जल की मात्रा को शामिल नहीं किया जाता। गंगा की प्रवृत्ति की तुलना, हिमालय की ही अन्य नदी झेलम से की जा सकती है। झेलम में अधिकतम प्रवाह जून या मई में भी हो जाता है, क्योंकि इसका प्रवाह मुख्य रूप से हिमालय की बरफ के पिघलने पर निर्भर करता है। इन दोनों नदियों की प्रवृत्तियों में एक रोचक अंतर है। इस अंतर को इन नदियों के अधिकतम और न्यूनतम प्रवाह की भिन्नता के परास (range) में देखा जा

सकता है। झेलम की तुलना में, गंगा में यह अंतर अधिक सुस्पष्ट है। फरक्का पर गंगा का अधिकतम माध्य (औसत) विसर्जन 55,000 क्यूसेक्स तथा न्यूनतम माध्य केवल 1,300 क्यूसेक्स है। झेलम में गंगा की तुलना में कम पानी बहता है। इसमें अधिकतम माध्य विसर्जन 600 क्यूसेक्स तथ्य न्यूनतम माध्य विसर्जन 50 क्यूसेक्स है।

प्रायद्वीप की दो नदियों की प्रवृत्तियों में हिमालयी नदियों की प्रवृत्तियों की तुलना में काफी अंतर है। नर्मदा में जल विसर्जन की मात्रा जनवरी से जुलाई तक काफी कम रहती है। लेकिन अगस्त में यह अचानक बढ़कर अधिकतम स्तर पर पहुँच जाती है। अगस्त में नर्मदा में जिस तेजी से जल की मात्रा बढ़ती है, उसी तेजी से अक्तूबर में यह घट जाती है। गोदावरी में प्रवाह का स्तर मई तक नीचा रहता है। इसमें दो बार जल की अधिकतम मात्रा रहती है: एक बार मई में और दूसरी बार जुलाई-अगस्त में। अगस्त के बाद जल प्रवाह तेजी से घटता है। जनवरी से लेकर मई तक के किसी भी महीने की तुलना में अक्तूबर और नवम्बर में जल प्रवाह की मात्रा अधिक होती है। पोलावरम पर गोदावरी का अधिकतम माध्य विसर्जन 50 क्यूसेक्स रहता है। ये आंकड़े नदी की प्रवृत्ति का एक संकेत देते हैं। गरुड़ेश्वर पर रिकार्ड किए गए नर्मदा के प्रवाह से पता चलता है कि इस नदी का अधिकतम प्रवाह 2,300 क्यूसेक्स तथा न्यूनतम प्रवाह केवल 15 क्यूसेक्स है।

वर्ष के विभिन्न महीनों में नदी के विभिन्न भागों में जल विसर्जन के आंकड़ों का राज्यों द्वारा इनके (नदियों के) उपयोग में बहुत महत्त्व है। इसी मुद्दे को लेकर अंतर्राज्यीय विवाद उत्पन्न होते हैं।

नदियों की उपयोगिता

बड़ी-बड़ी नदियों में देश की जल संपदा निहित है। देश में वार्षिक वर्षण की अनुमानित मात्रा लगभग 3,70,040 करोड़ घन मी. है। इसका बहुत बड़ा भाग धरातल में रिसकर भू-जल के रूप में जमा हो जाता है तथा कुछ भाग वाष्पीकृत और वाष्पोत्सर्जित होकर एक प्रकार से नष्ट हो जाता है। नदियों में प्रतिवर्ष 1,67,753 करोड़ घन मी. जल बहता है। असमतल धरातल तथा प्रवाह की विशेषताओं के कारण इस सारे जल का उपयोग नहीं हो सकता है। लगभग 55,517 करोड़ घन मी. अर्थात् वार्षिक प्रवाह के 33 प्रतिशत का सिंचाई के लिए उपयोग किया जा सकता है।

विशाल नदियों में जलशक्ति की बड़ी संभावनाएँ हैं। उत्तर में हिमालय, पश्चिम में विंध्याचल, सतपुड़ा और अरावली, पूर्व में मैकाल और छोटानागपुर, उत्तर-पूर्व में मेघालय के पठार और पूर्वाचल तथा दक्कन के पठार के पश्चिमी और पूर्वी घाट पर, बड़े पैमाने पर जल शक्ति के विकास की संभावनाएँ हैं। कुल नदी जल प्रवाह का 60 प्रतिशत हिमालय में, 16 प्रतिशत मध्यवर्ती भारत की नदियों (नर्मदा, तापी, महानदी, आदि) में तथा शेष दक्कन के पठार की नदियों में निहित है। प्रायद्वीपीय नदियों से सुनिश्चित और विश्वसनीय शक्ति उत्पादन के लिए मानसूनी वर्षा के महीनों में बांधों के पीछे जल का संग्रहण जरूरी है। हिमालयी नदियों में ऐसी कोई समस्या नहीं है, क्योंकि शीत ऋतु के नाजुक महीनों में भी इन नदियों में जल की पर्याप्त मात्रा रहती है। लेकिन यहाँ दूसरे प्रकार की समस्याएँ हैं जैसे : संकरी घाटियों के कारण विशाल जलाशयों के निर्माण में कठिनाई, प्रदेश में भूकंप के तीव्र झटकों की संभावना, तथा उच्चावच में विभिन्नता से रहित विस्तृत जलोढ़ मैदान। देश में इन नदियों से 60 प्रतिशत कार्यक्षमता के आधार पर लगभग 4.1 करोड़ किलो वाट जल शक्ति का उत्पादन किया जा सकता है।

देश के उत्तर तथा उत्तर-पूर्व में क्रमशः गंगा और ब्रह्मपुत्र में, उड़ीसा में महानदी में, आंध्र प्रदेश में गोदावरी और कृष्णा में, गुजरात में नर्मदा और तापी में, तथा तटीय राज्यों में झीलों और ज्वारीय निवेशिकाओं (creeks) में देश के प्रमुख और उपयोगी जल मार्ग हैं। विगत वर्षों में इनका बहुत महत्त्व था, लेकिन रेलों और सड़कों के विकास से इन्हें धक्का लगा है। सिंचाई के लिए नहरें निकालने के बाद बहुत सी नदियों में जल प्रवाह घट जाता है। देश में लगभग 10,600 कि.मी. लंबे नाव्य जल मार्ग हैं। इनमें से 2,480 कि.मी. लंबी नाव्य नदियों में स्टीमर और बड़ी देशी नावें, 3,920 कि.मी. लंबी नाव्य नदियों में मध्यम आकार की देशी नावें, और 4,200 कि.मी लंबी नहरों और पश्चजलों में देशी नावें चल सकती हैं। गंगा, ब्रह्मपुत्र और महानदी, प्रमुख नाव्य नदियाँ हैं। गोदावरी, कृष्णा, नर्मदा और तापी केवल मुहानों के निकट ही नाव्य हैं।

नदियों से, नगरों, गाँवों और बड़े-बड़े कारखानों को भी जल मिलता है।

बाढ़ प्रवण क्षेत्र

भारत में प्रतिवर्ष बाढ़ें आती हैं। प्रतिवर्ष लगभग 60 लाख हैक्टेयर भूमि बाढ़ से प्रभावित होती है। ऊँची बाढ़ों से फसलों, मकानों और सार्वजनिक सुविधाओं को बहुत हानि होती है। अनेक लोग और पशु मर जाते हैं, परिवहन और संचार के साधन अस्त-व्यस्त हो जाते हैं। इनसे सामान्य जन-जीवन भी गड़-बड़ हो जाता है।

देश के उत्तरी विशाल मैदान तथा बड़ी नदियों के तटीय क्षेत्रों में गंभीर बाढ़ के आने की आशंका बनी रहती है। बिहार के मैदान, पश्चिम बंगाल के उत्तरी तथा दक्षिणी भाग, असम घाटी और कछार प्रायः आने वाली बाढ़ों के लिए कुख्यात हैं। कश्मीर घाटी, पंजाब के मैदान, उत्तर प्रदेश के मैदान, महानदी, गोदावरी और कृष्णा के डेल्टा, कावेरी डेल्टा तथा नर्मदा और तापी के निचले भागों में बाढ़ कभी-कभी ही आती है। बाढ़ आने के प्रमुख कारण ये हैं : भारी वर्षा, नदी घाटियों के मंद ढाल, नदी तल पर गाद का भारी मात्रा में जमाव तथा जलग्रहण क्षेत्रों में वनविहीन पहाड़ियाँ। कुछ क्षेत्रों में सड़कों, रेलमार्गों और नहरों के निर्माण से जल के प्रवाह में बाधा पड़ती है, जिससे बाढ़ आ जाती है। तटीय क्षेत्रों में कुछ बाढ़ें चक्रवातीय तूफानों के कारण भी आती हैं।

सारणी 3.1 : भारत की नदी द्रोणियाँ : जल ग्रहण क्षेत्र और प्रवाह

नदी द्रोणियाँ	*जल ग्रहण क्षेत्र (000 वर्ग कि.मी.)*	*प्रवाह (100 करोड़ घन मी.)*
प्रमुख नदी द्रोणियाँ		
सिंधु	321 (कुल 1,165)	97,350
गंगा	952	4,93,000
ब्रह्मपुत्र	240 (कुल 580)	5,10,000
साबरमती	55	3,200
माही	35	8,500
नर्मदा	99	40,700
तापी	65	17,980
सुवर्णरेखा	19	7,940
ब्राह्मणी	36	18,310
महानदी	142	66,640
गोदावरी	313	1,05,000
कृष्णा	259	67,670
पेन्नर	55	3,240
कावेरी	68	20,950
उप-योग	**2,659**	**14,06,000**
मध्यम नदी द्रोणियाँ	240	1,12,000
लघु नदी और मरुस्थली द्रोणियाँ	300	1,27,000
कुल योग	**3,199**	**16,45,000**

अभ्यास

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. संक्षेप में उत्तर दीजिएः
   (i) अपवाह तंत्र की परिभाषा दीजिए।
   (ii) अपवाह प्रतिरूप किसे कहते हैं ?
   (iii) द्रुमाकृतिक अपवाह प्रतिरूप का एक भारतीय उदाहरण दीजिए।
   (iv) अपवाह द्रोणी किसे कहते हैं ?
   (v) मध्यवर्ती भारत की दो प्रमुख नदियों के नाम बताइए।
   (vi) अरब सागर में गिरने वाली तीन नदियों के नाम बताइए।
   (vii) उन राज्यों के नाम बताइए जिनसे होकर सुबर्ण रेखा और ब्राह्मणी नदियाँ बहती हैं।
   (viii) थार मरुस्थल में किस प्रकार का अपवाह है ?
   (ix) पूर्ववर्ती नदियों के दो उदाहरण दीजिए।
   (x) अनुवर्ती नदियों के दो उदाहरण दीजिए।
   (xi) भ्रंश घाटी से होकर बहने वाली दो नदियों के नाम बताइए।
   (xii) जल प्रवृत्ति किसे कहते हैं।
   (xiii) प्रायद्वीपीय नदियों में अधिकतम प्रवाह कब होता है ?
   (xiv) प्रायद्वीपीय नदियों की तीन विशेषताएँ लिखिए।
2. अंतर बताइएः
   (i) नदी द्रोणी और जल संभर
   (ii) अनुवर्ती और पूर्ववर्ती नदियाँ
   (iii) डेल्टा और ज्वार नदमुख
   (iv) अरीय तथा अभिकेंद्री अपवाह
   (v) महाखड्ड (गार्ज) और भ्रंश घाटी।
3. भारत की नदियाँ किस तरह देश के लिए उपयोगी हैं ?
4. गंगा की द्रोणी पर एक संतुलित टिप्पणी लिखिए।
5. ब्रह्मपुत्र की द्रोणी की विशेषताएँ लिखिए। यह भी बताइए कि इस द्रोणी में बाढ़ें प्रायः क्यों आती हैं ?
6. कावेरी द्रोणी के प्रमुख लक्षणों का वर्णन कीजिए।

परियोजना कार्य

7. भारत के रेखा मानचित्र पर निम्नलिखित की स्थिति दिखाइएः
   (i) साबरमती और माही नदियाँ।
   (ii) पूर्व तथा पश्चिम की ओर बहनेवाली नदियों के बीच का जल विभाजक।
   (iii) गंगा, तीन दाईं ओर की तथा तीन बाईं ओर की सहायक नदियाँ।
   (iv) नर्मदा नदी।
   (v) महानदी की द्रोणी।

4

अध्याय

जलवायु

मौसम और ऋतुओं की लय भारत की जलवायु की विशेषता है। कभी तो साल के कुछ महीनों में कई दिनों तक लगातार वर्षा होती रहती है, और कभी बिल्कुल नहीं होती। कभी पवनें समुद्र की ओर से चलती हैं और कभी स्थल की ओर से। ये विशेषताएँ भारत की जलवायु को मानसूनी बना देती हैं। मानसून शब्द की व्युत्पत्ति अरबी भाषा के मौसिम शब्द से हुई है। मौसिम शब्द का अर्थ है : पवनों की दिशा का मौसम के अनुसार उलट जाना। अनेक लोगों के लिए मानसून का अर्थ वर्षा ऋतु है, जब भारतीय प्रायद्वीप के अधिकतर भाग पर दक्षिण-पश्चिम दिशा से पवनें चलती हैं। आर्द्रता से लदी दक्षिण-पश्चिम पवनें भारी वर्षा करती हैं, इससे सूखी भूमि संतृप्त हो फसलें बोने के लिए तैयार हो जाती हैं।

भारत की जलवायु में एक व्यापक एकता है। देश का सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन जलवायु की ऋतुनिष्ठ लय से जुड़ा है। विभिन्न ऋतुओं में विविध प्रकार की फसलें पैदा की जाती हैं। इन्हीं फसलों के साथ कई त्यौहार और सांस्कृतिक उत्सव मनाए जाते हैं। अत्यधिक प्रादेशिक भिन्नता, भारतीय जलवायु की विशेषता है। उत्तर-पूर्व में स्थित असम में भारी वर्षा होती है तथा यह आर्द्र है। इसके विपरीत पश्चिम में राजस्थान कम वर्षा के कारण शुष्क है। यही नहीं, दक्षिण में केरल गरम और आर्द्र है, जबकि उत्तर-पश्चिम में स्थित पंजाब की जलवायु महाद्वीपीय है और यहाँ अपेक्षाकृत कम वर्षा होती है। राजस्थान में बाड़मेर में गर्मियों के दिन में तापमान 48^0 से 50^0 से. तक पहुँच जाता है। इसके विपरीत जम्मू और कश्मीर में स्थित द्रास और कारगिल में शीत ऋतु की रातों में तापमान शून्य से 40^0 से. नीचे चला जाता है। मेघालय में स्थित चेरापूँजी और मॉसिनराम में वर्ष में 1,080 से.मी. से अधिक वर्षा होती है, इसके विपरीत राजस्थान के जैसलमेर में उसी अवधि में शायद ही कभी 12 से.मी. से अधिक वर्षा होती हो।

इन सभी भिन्नताओं के बावजूद भारत की जलवायु की लय और विशेषता मानसूनी ही है। भारत की जलवायु कई कारकों से नियन्त्रित होती है। ये कारक हैं : कर्क वृत्त के उत्तर और दक्षिण में इसकी स्थिति, उत्तर और पूर्व में एक दीवार की भाँति खड़े हिमालय की अत्यधिक ऊँचाई, दक्षिणी भाग की प्रायद्वीपीय आकृति, उत्तर-पश्चिमी भाग की समुद्र से लंबी दूरी तथा देश के विभिन्न भागों में पर्वत श्रेणियों की स्थिति। इन्हीं से भारत की जलवायु को एकता और प्रादेशिक विविधता मिली है। दिन और रात के तापमान या ग्रीष्म ऋतु और शीत ऋतु की ऊष्मा में अंतर का कारण समुद्र से दूरी है। समुद्र तट पर स्थित मुंबई और पुरी जैसे स्थानों के तापमान में सुदूर आंतरिक भागों में स्थित, दिल्ली, कानपुर और भोपाल की तुलना में कम अंतर रहता है। मैदानों और निम्न भूमियों की तुलना में ऊँचे पर्वत और पहाड़ियाँ ठंडी रहती हैं। पर्वतों के पवनाविमुख ढालों पर अधिक वर्षा होती है, इसके विपरीत पवनाविमुख क्षेत्रों में वर्षा की मात्रा घट जाती है। समुद्र की ओर से आने वाली मानसून पवनें समुद्र तट से दूर के क्षेत्रों की तुलना में तटवर्ती क्षेत्रों में अधिक वर्षा करती हैं।

मानसून की उत्पत्ति और विकास

पवनों की दिशा में ऋतुनिष्ठ परिवर्तन भारतीय मौसम विज्ञान का प्रमुख लक्षण है। अत्यधिक महाद्वीपीयता और समुद्र के कम प्रभाव के कारण, भारत का उत्तर-पश्चिमी भाग शीत ऋतु में अधिक वायुदाब तथा ग्रीष्म ऋतु में कम वायुदाब का केंद्र बन जाता है। शीत ऋतु में देश के इस भाग से बहने वाली ठंडी पवनों को प्रायद्वीप पर उत्तर-पूर्वी मानसून के रूप में जाना जाता है। ग्रीष्म ऋतु में चलने वाली कोष्ण और आर्द्र पवनों को दक्षिण-पश्चिम मानसून कहा जाता है। मानसून शब्द का अर्थ है ऋतु तथा इसका तात्पर्य प्रचलित पवनों के दिशा परिवर्तन से है। शीत ऋतु में पवनें मुख्यतः अपतट तथा ग्रीष्म ऋतु में अभितट होती हैं। उच्च वायुदाब से निम्न वायुदाब में क्रमिक परिवर्तन होता है।

अंतः उष्ण कटिबंधीय अभिसरण क्षेत्र (ITCZ)

विषुवत वृत्त पर स्थित *अंतः उष्ण कटिबंधीय अभिसरण क्षेत्र* एक निम्न वायुदाब वाला क्षेत्र है। इस क्षेत्र में व्यापारिक पवनें मिलती हैं। अतः इस क्षेत्र में वायु ऊपर उठने लगती है। जुलाई के महीने में ITCZ 20^0 से 25^0 उ. अक्षांशों के आस-पास गंगा के मैदान में स्थित हो जाता है। इसे कभी-कभी मानसूनी गर्त भी कहते हैं। यह मानसूनी गर्त, उत्तर और उत्तर-पश्चिमी भारत पर तापीय निम्न वायुदाब के विकास को प्रोत्साहित करता है। ITCZ के उत्तर की ओर खिसकने के कारण दक्षिणी गोलार्द्ध की व्यापारिक पवनें 40^0 और 60^0 पूर्वी देशांतरों के बीच विषुवत वृत्त को पार कर जाती हैं। कोरियोलिस बल के प्रभाव से विषुवत वृत्त को पार करने वाली इन व्यापारिक पवनों की दिशा दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व की ओर हो जाती है। यही दक्षिण-पश्चिम मानसून है। शीत ऋतु में ITCZ दक्षिण की ओर खिसक जाता है। इसी के अनुसार पवनों की दिशा दक्षिण-पश्चिम से बदल कर उत्तर-पूर्व हो जाती है, यही उत्तर-पूर्व मानसून है।

जेट वायुधाराएँ : ऋतुओं के अनुसार दिशा बदलने वाली निम्न स्तर की पवनों के अलावा ऊपरी स्तर पर चलने वाली पवनें भी हैं। ये पवनें धरातल से 6 से 7 कि.मी. की ऊँचाई पर चलती हैं। ऊँचे स्तरों पर इन पवनों की गति बहुत अधिक हो जाती है। ये पवनें कभी-कभी 12 से 16 कि.मी. की ऊँचाई पर भी चलती हैं। जिस क्षेत्र में ये पवनें चलती हैं, उसका अक्षांशीय विस्तार ऋतु और ऊँचाई के अनुसार बदलता रहता है। 12 से 13 कि.मी. की ऊँचाई पर इन पवनों की गति 180 कि.मी. प्रति घंटा से अधिक हो जाती है। इन्हीं पवनों को जेट वायुधाराएँ कहते हैं। ये दो प्रकार की होती हैं : पहली, पश्चिमी जेट वायुधारा, जो 12 कि.मी. की ऊँचाई पर पश्चिम से पूर्व को बहती है। दूसरी, पूर्वी जेट वायुधारा जो धरातल से 13 कि.मी. ऊपर पूर्व से पश्चिम की ओर बहती है। ऋतुओं के अनुसार इन जेट वायुधाराओं की स्थिति बदलती रहती है। शीत ऋतु में पश्चिमी जेट वायुधारा का अक्ष हिमालय के दक्षिणी ढालों पर स्थित होता है। लेकिन दक्षिण-पश्चिम मानसून के आगमन के साथ यह उत्तर की ओर खिसक कर पूरी ऋतु में वहीं रहता है। दक्षिण-पश्चिम मानसून के दौरान पूर्वी जेट वायुधारा 25^0 उ. अक्षांश वृत्त के दक्षिण में बहती है। जून में यह प्रायद्वीप के दक्षिणी भाग के ऊपर बहती है। इस समय इसकी गति 90 कि.मी. प्रति घंटा होती है। अगस्त में यह 15^0 उ. अक्षांश वृत्त पर तथा सितंबर में 22^0 उ. अक्षांश वृत्त पर सीमित हो जाती है। पूर्वी जेट वायुधारा ऊपरी क्षोभमंडल में 30^0 उ. अक्षांश वृत्त के उत्तर की ओर कभी नहीं खिसकती।

वर्ष की विभिन्न अवधियों में जेट वायुधाराओं के अक्ष उत्तर या दक्षिण की ओर खिसकते रहते हैं। इनके अध्ययन से दक्षिण-पश्चिम मानसून के आगमन, वर्षा ऋतु में विच्छेद और पीछे हटने का पूर्वानुमान लगाने में सहायता मिलती है।

उपोष्ण कटिबंधीय पछुआ पवनों के ऊपरी वायु के गर्त उत्तर-भारत के ऊपर पूर्व की ओर आगे बढ़ते हैं। भारतीय मौसम विज्ञान में इन्हें पश्चिमी विक्षोभ कहा जाता है। आगे बढ़ते हुए इन गर्तों से पवनें गोल-गोल घूमती हुई चलने लगती हैं। इन्हीं के द्वारा शीत ऋतु में वर्षण होता है। पश्चिमी गर्तों और निम्न स्तरीय चक्रवातीय तूफानों की उत्पत्ति भूमध्य सागर या पूर्वी अटलांटिक प्रदेश में होती है। इनके अलावा गौण चक्रवात पश्चिम एशिया के ऊपर बनते हैं। इनके जीवन का इतिहास प्रशांत या अटलांटिक के शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवातों के समान ही होता है। ये भारत के ऊपर लगभग अधिधारित (अन्तिम) अवस्था (occluded state) में ही पहुँचते हैं।

पश्चिमी विक्षोभ ग्रीष्म ऋतु में भी उत्तर भारत में आते रहते हैं। इस समय इनका संबंध धूल भरी तेज आँधियों से होता है, जो इस ऋतु में पाकिस्तान और उत्तर-पश्चिम भारत में चलती हैं। उत्तर-पूर्वी भारत और बांग्लादेश में ये काल बैसाखी से सबंधित रहते हैं। दक्षिण-पश्चिम मानसून की ऋतु में सामान्यतः हिमालय के दक्षिणी भाग में इनका चलना बंद हो जाता है, गंगा की घाटी के ऊपर जब ये गर्त पूर्व की ओर बढ़ते हैं, तब बिहार और उत्तर प्रदेश में मानसूनी धाराओं का विस्तार रुक जाता है और मानसून में विच्छेद आ जाते हैं। पीछे हटते हुए मानसून की ऋतु में

पश्चिमी विक्षोभों की आवृत्ति घट जाती है। लेकिन ये बंगाल की खाड़ी और अरब सागर के उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों के मार्ग परिवर्तन के लिए उत्तरदायी होते हैं।

उष्ण कटिबंधीय तूफान सामान्यतः तड़ित झंझा के रूप में ही आते हैं। इनमें वायु अस्थिर रहती है और तीव्रगति से ऊपर की ओर उठती है। ऊपर उठती हुई वायु 5 से 15 कि.मी. की ऊँचाई तक पहुँच जाती है। ग्रीष्म ऋतु में वायु और भी अधिक ऊँचाई तक ऊपर उठती है। तड़ित झंझाओं के व्यास की लंबाई 8 से 40 कि.मी. के बीच बदलती रहती है। पूर्ण विकसित तड़ित झंझा से मोटी-मोटी बूंदों और ओलों के रूप में भारी वर्षण होता है। स्थल पर धरातलीय तापन से उत्पत्ति के कारण ग्रीष्म ऋतु में दोपहर के बाद इन तूफानों का आना सामान्य घटना है। ये तूफान बादलों की गड़गड़ाहट और बिजली के कौंध के साथ आते हैं। उत्तरी-पूर्वी भारत और केरल में ये अक्सर आते हैं। दक्षिण-पश्चिम मानसून की ऋतु में कई तड़ित झंझाएँ आती हैं। ऋतु के एक तिहाई दिनों में बादल गरजते रहते हैं और बिजली कौंधती रहती है। पीछे हटते हुए मानसून की ऋतु में ये केवल प्रायद्वीप के दक्षिण-पश्चिम भारत में ही सीमित हो जाती हैं। जनवरी-फरवरी में इनकी संख्या बहुत कम हो जाती है।

मानसूनी ऋतुएँ

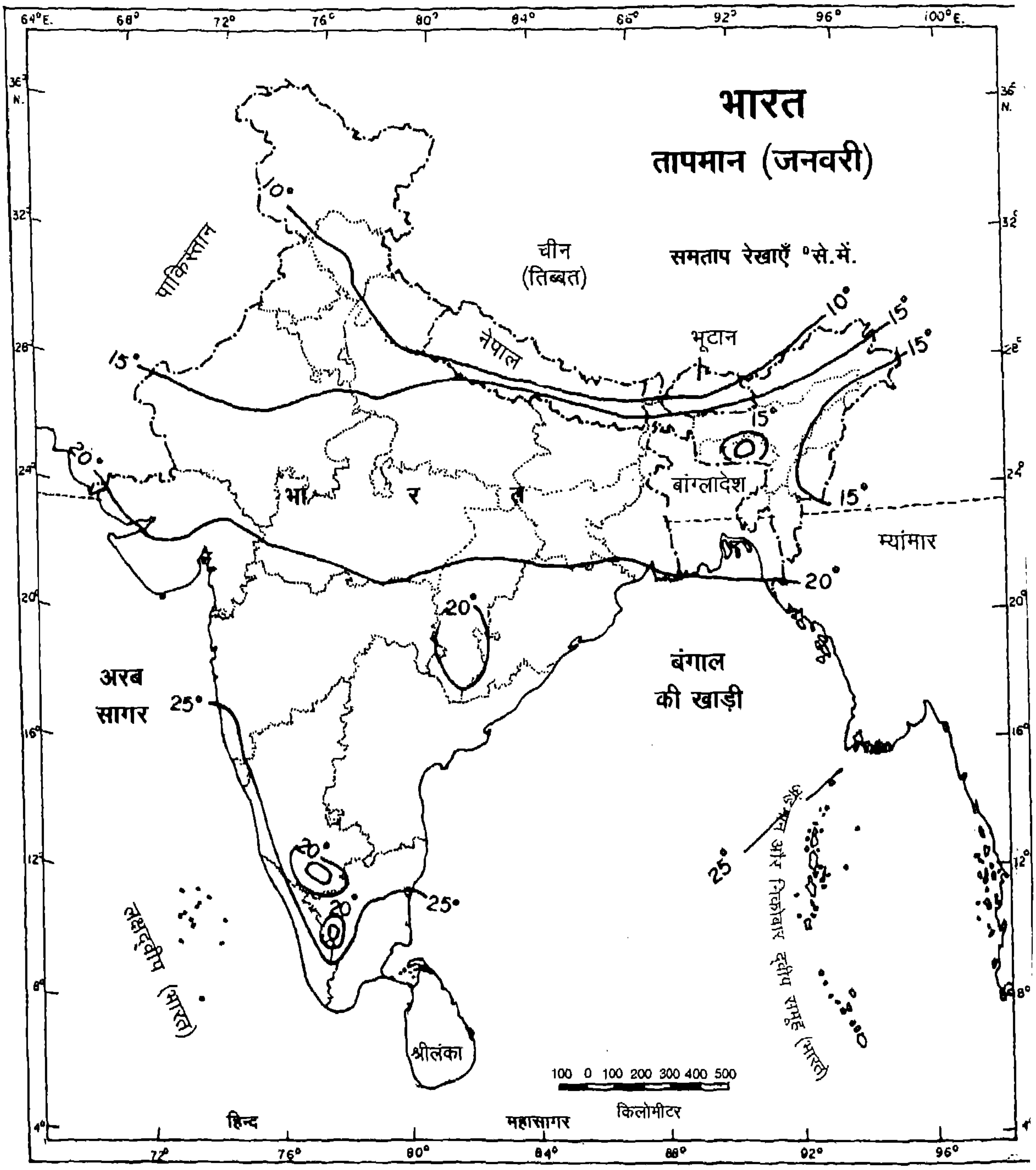
भारतीय जलवायु की दो स्पष्ट ऋतुएँ हैं। ये हैं : दक्षिण-पश्चिम मानसून और उत्तर-पूर्व मानसून। पहली ऋतु में भारत के अधिकतर भागों में वर्षा होती है, जो देश की कृषि अर्थव्यवस्था के लिए अत्यावश्यक है। दूसरी ऋतु में प्रायद्वीप के दक्षिण-पूर्वी भाग को छोड़कर भारत के अधिकतर भागों में वर्षा नहीं होती है। इन दो ऋतुओं के बीच, दो ऋतुएँ और होती हैं। एक है दक्षिण-पश्चिम मानसून के आगमन से पहले की ग्रीष्म ऋतु; दूसरी है शीत ऋतु (उत्तर-पूर्व मानसून) के प्रारंभ होने से पहले की पीछे हटते मानसून की ऋतु। इस प्रकार पूरे वर्ष को आसानी से निम्नलिखित चार ऋतुओं में बाँटा जाता है।

(i) शीत ऋतु : दिसंबर से फरवरी
(ii) ग्रीष्म ऋतु : मार्च से मई
(iii) दक्षिण-पश्चिम मानसून की ऋतु : जून से सितंबर, और
(iv) पीछे हटते मानसून की ऋतु (पश्चमानसून) : अक्तूबर और नवबंर

ऊपर दी गई चारों ऋतुएँ भारतीय मौसम विज्ञान पर आधारित हैं।

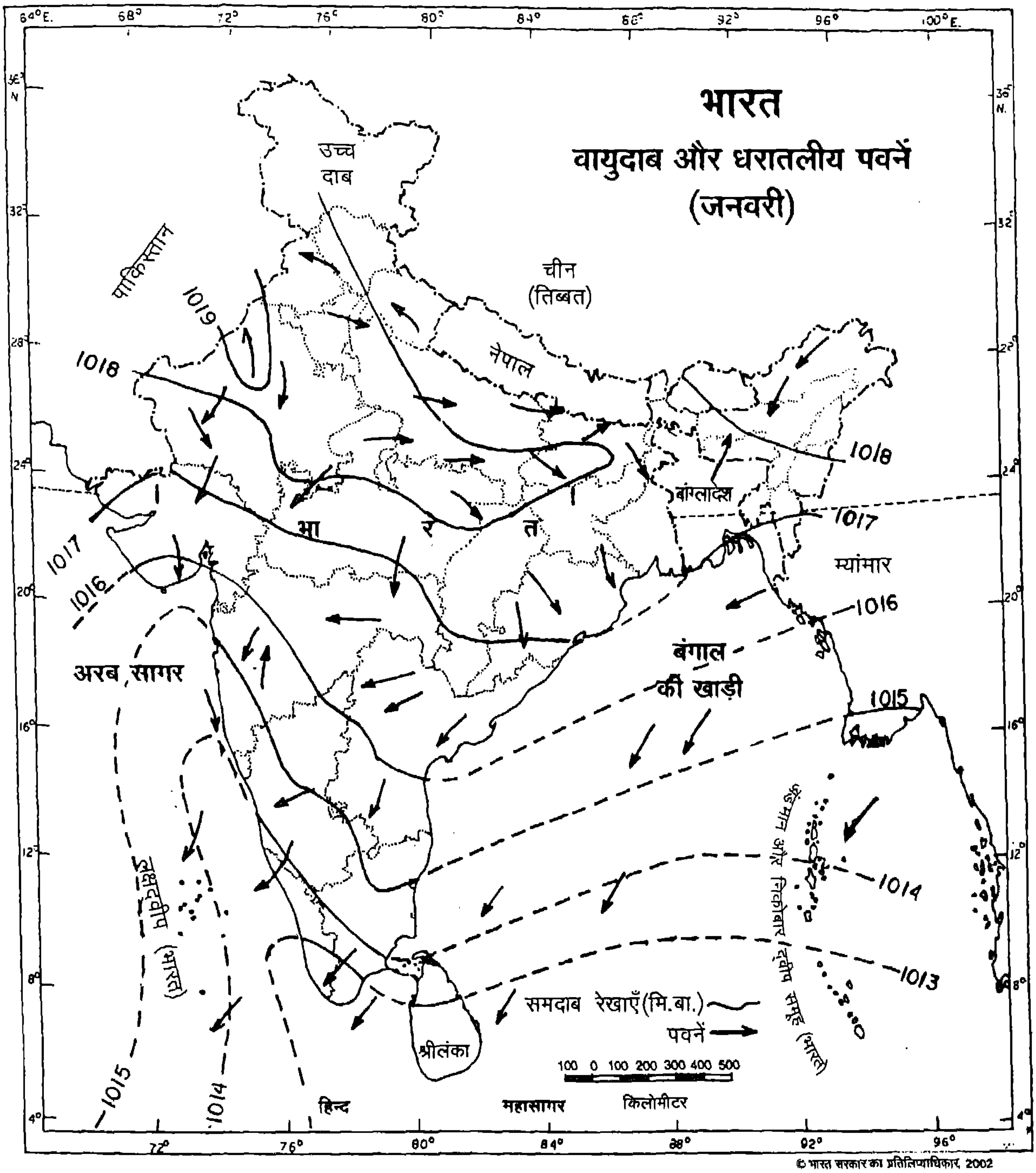
शीतऋतु : यह ऋतु दिसंबर में शुरु होकर फरवरी तक रहती है। सूर्य की किरणें इन दिनों मकर वृत्त पर लंबवत् पड़ती हैं। अत्यंत आंतरिक भाग में स्थित और समुद्र के प्रभाव से दूर भारत के उत्तर-पश्चिमी भाग में तापमान काफी गिर जाता है (चित्र 4.1) और इन दिनों यहाँ उच्च वायुमंडलीय दाब रहता है। यहाँ महीने का औसत तापमान 10° से 12° से. के बीच रहता है, लेकिन न्यूनतम तापमान इससे भी बहुत नीचे रहता है। देश के इस भाग में उच्च वायुदाब का एक केंद्र बन जाता है, जहाँ से बाहर की ओर ठंडी और शुष्क पवनें चलती हैं (चित्र 4.2)। उत्तर भारत में पवनें पश्चिम दिशा से, मध्य भारत में उत्तर दिशा से तथा प्रायद्वीपीय भारत में उत्तर पूर्वी दिशा से चलती हैं। इस ऋतु में गंगा के मैदान की ये विशेषताएँ हैं : स्वच्छ आकाश, सुहावना मौसम, मंद पश्चिमी समीर, निम्न आर्द्रता, निम्न तापमान, दिन के तापमान में काफी बड़ा अंतर। बह्मपुत्र और कछार घाटियों में उत्तर पूर्व से मंद-मंद समीर बहती है। शेष भारत में पवनों की दिशा उत्तरी और उत्तर-पश्चिमी होती है। प्रायद्वीपीय पठार के अधिकतर भाग पर साफ और धूप वाला मौसम रहता है। लेकिन तमिलनाडु के तटीय जिलों में उत्तर-पूर्वी मानसून से वर्षा होती है।

शीत ऋतु में अनेक चक्रवातीय अवदाब भूमध्य-सागर से पूर्व की ओर चलते हुए उत्तर भारत में पहुँचते हैं। इस क्षेत्र में ये अवदाब थोड़ी मात्रा में वर्षा करते हैं। संघनन क्रिया ऊपरी वायु में, सामान्यतः धरातल से तीन कि.मी. ऊपर होता है। काफी ऊँचे हिमालय के आस-पास के क्षेत्र के अलावा देश के अन्य भागों में वर्षण के वितरण में स्थानीय उच्चावच से कोई परिवर्तन नहीं होता है। शीत ऋतु की वर्षा तो अल्पमात्रा में होती है, किंतु गेहूँ की फसल के लिए अत्यंत लाभकारी होने के कारण इसका अर्थिक महत्त्व बहुत अधिक है। प्रायद्वीप के दक्षिण-पूर्वी भाग में बंगाल की खाड़ी में बनने वाले चक्रवातीय तूफानों



भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र में भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से माप गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।
इस मानचित्र में अरूणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शायी गयी अन्तर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।
इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य, और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई है।
आन्तरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।
इस मानचित्र में दर्शित अक्षरविन्यास विभिन्न सूत्रों द्वारा प्राप्त किए हैं।

*चित्र **4.1** भारत : तापमान (जनवरी)*



भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र में भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।
इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शायी गयी अन्तर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।
इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य, और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई है।
आन्तरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।
इस मानचित्र में दर्शित अक्षरविन्यास विभिन्न सूत्रो द्वारा प्राप्त किए हैं।

चित्र 4.2 भारत : वायुदाब और धरातलयीय पवनें (जनवरी)

और अवदाबों के प्रभाव से यदा-कदा वर्षा हो जाती है। यह वर्षा आंतरिक भागों की ओर घटती जाती है।

ग्रीष्म ऋतु : मार्च से मई की अवधि में उत्तर भारत में तापमान निरंतर तेजी से बढ़ता है तथा वायुदाब कम हो जाता है। दक्षिणी हिंद महासागर में भी तापमान कम हो जाता है। मार्च के महीने में दक्कन के पठार पर दिन का उच्चतम तापमान 38^0 से. रहता है। गुजरात और मध्य प्रदेश में अप्रैल के महीने में तापमान 38^0 से 44^0 से. तक रहता है। उत्तर-पश्चिमी भारत के शुष्क क्षेत्रों में मई के महीने में दिन का उच्चतम तापमान 48^0 से. से भी अधिक हो जाता है (चित्र 4.3)। निम्नतम वायुदाब का क्षेत्र भी इसी प्रदेश में स्थित होता है। इस निम्न वायु दाब की ओर स्थानीय पवनें चलने लगती हैं। स्थानीय पवनों का यह परिसंचरण इसीलिए महत्त्वपूर्ण हैं कि इससे यहाँ ऐसी दशाएँ पैदा हो जाती हैं, जो दक्षिण पश्चिम पवनों को आकर्षित करने में सहायक होती हैं।

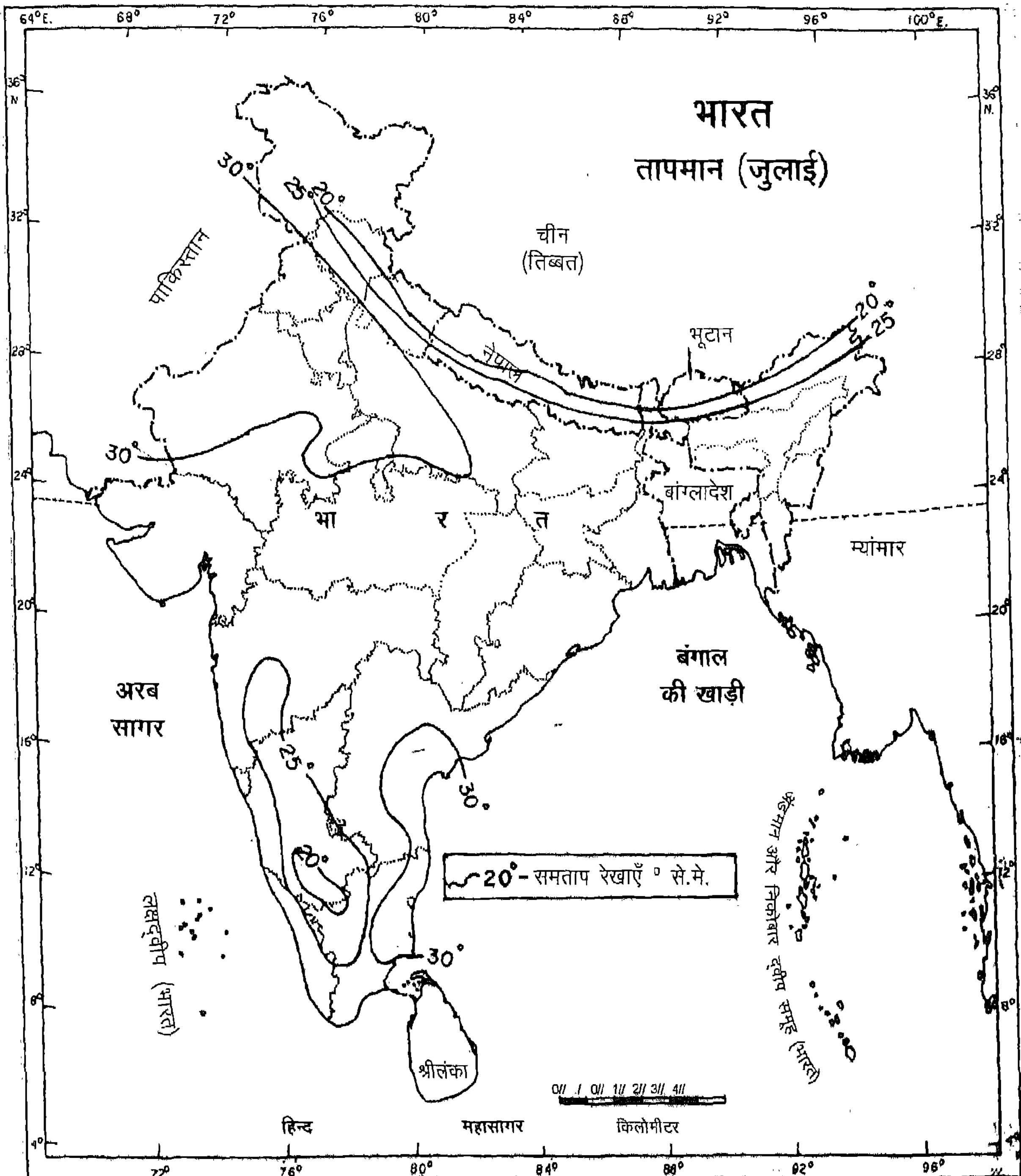
उतर भारत में पवनें मुख्यतः पश्चिम और उत्तर-पश्चिम दिशा से तथा राजस्थान में दक्षिण-पश्चिम दिशा से चलती हैं। गंगा के पूर्वी मैदान में पवनों की दिशा अधिकतर दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम रहती है। ब्रह्मपुत्र घाटी में पवनें पूर्व और पश्चिम दोनों ही दिशाओं से चलती हैं। गुजरात और मध्य भारत में पवनें अधिकतर पश्चिम और उत्तर-पश्चिम दिशाओं से आती हैं। प्रायद्वीप और पूर्वी तट के साथ-साथ पवनों की दिशा दक्षिणी और दक्षिण-पश्चिमी होती है। इसके विपरीत पश्चिमी तट पर वे सामान्यतः उत्तर दिशा से ही आती हैं।

उत्तर भारत के अधिकतर भागों में धूल भरी आँधियाँ और तड़ित झंझाओं का चलना सामान्य सी बात है। इस ऋतु की अधिकतर अवधि में वायुमंडल में धुंध छाई रहती है। जहाँ समुद्री आर्द्र पवनें स्थानीय गरम और शुष्क पवनों से मिलती हैं, उन प्रदेशों में अक्सर प्रचंड स्थानीय तूफान बन जाते हैं। इन तूफानों के साथ तेज हवाएँ, मूसलाधार वर्षा और ओले आते हैं। इनसे भारी विनाश होता है। ये तूफान पश्चिम बंगाल और असम में प्रायः आते हैं, जहाँ इन्हें क्रमशः काल बैशाखी और बोर्डोइचिल्ला कहते हैं। इन तूफानों से काफी मात्रा में वर्षा होती है, जो चाय की फसल और धान की उगती बसन्ती फसल के लिए लाभदायक होने के कारण इसका बहुत अधिक आर्थिक महत्त्व है। प्रायद्वीप में तड़ित झंझा से वर्षा मुख्य रूप से अप्रैल और मई में होती है। इसे ही आम्रवृष्टि कहते हैं। दक्षिण-पश्चिम मानसून की अस्थायी लहर के द्वारा केरल में मई के महीने में भारी वर्षा होती है। प्रायद्वीप के उत्तर-पश्चिमी भाग से शुष्क पवनें चलती हैं। यहाँ वर्षा अत्यल्प या बिल्कुल ही नहीं होती है।

दक्षिण-पश्चिमी मानसून की ऋतु : भारत के उत्तर-पश्चिमी भाग में मई में तापमान तेजी से बढ़ जाता है, जिसके परिणामस्वरूप वायुदाब घटने लगता है और शीत ऋतु के उच्च वायुदाब का स्थान अत्यंत निम्न वायु दाब ले लेता है। यह पश्चिमी राजस्थान से लेकर पश्चिम बंगाल तक विस्तीर्ण होता है। निम्न वायु दाब के इस क्षेत्र में वायु की कमी को पूरा करने के लिए बंगाल की खाड़ी और अरब सागर से वायु खिंच आती हैं (चित्र 4.4)। दक्षिणी गोलार्ध की दक्षिण पूर्वी व्यापारिक पवनें भारत के ऊपर के इस वायु परिसंचरण में, दक्षिण-पश्चिमी पवनों के रूप में आकर मिल जाती हैं। जून के प्रथम सप्ताह में केरल के तट पर दक्षिण-पश्चिम मानसून फट पड़ता हैं (चित्र 4.5)। धीरे-धीरे यह उत्तर की ओर बढ़ने लगता है तथा महीने के अंत तक सामान्यतः देश के अधिकतर भागों में फैल जाता है। उच्चावच के लक्षणों का मानसून पवनों के प्रवाह और वर्षा के वितरण पर सुस्पष्ट प्रभाव पड़ता है।

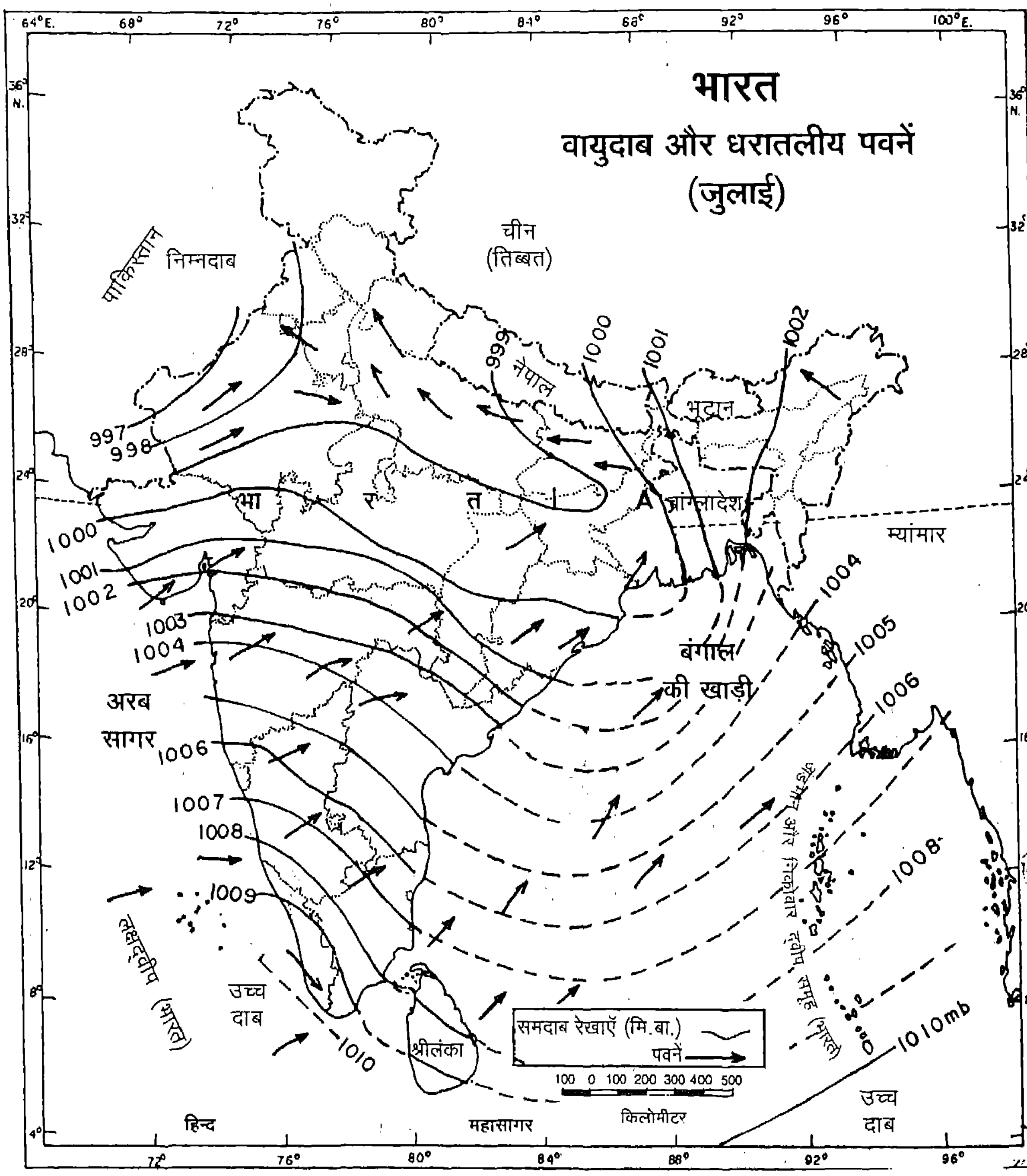
अरब सागर और बंगाल की खाड़ी, दोनों से ही मानसून भारतीय क्षेत्र में प्रवेश करता है। अरब सागर की मानसून की शाखा पश्चिमी तट से टकराकर मुंबई के दक्षिण में तटवर्ती जिलों और पश्चिमी घाट पर भारी वर्षा करती है। अरब सागर की मानसून पवनें दो शाखाओं में बँट जाती हैं। दक्षिणी धारा प्रायद्वीप के ऊपर से बहती है तथा बादलों के गर्जन और बिजली की चमक के साथ वर्षा करती है। उत्तरी धारा काठियावाड़ तट को पार करके आगे बढ़ती है तथा मुख्य रूप से गुजरात के तटवर्ती जिलों में वर्षा करती है। अरावली की पहाड़ियों के निकटवर्ती क्षेत्र को छोड़कर राजस्थान में बहुत कम वर्षा होती है।

बंगाल की खाड़ी की धारा भी दो शाखाओं में विभक्त हो जाती है। एक उत्तर-पूर्वी भारत, म्यांमार और थाईलैंड की ओर बढ़ जाती है तथा दूसरी बंगाल की खाड़ी को पार करके निम्न वायु दाब के मानसूनी गर्त की ओर पश्चिम दिशा में चली जाती है। गंगा के इसी मैदान में पवनों की



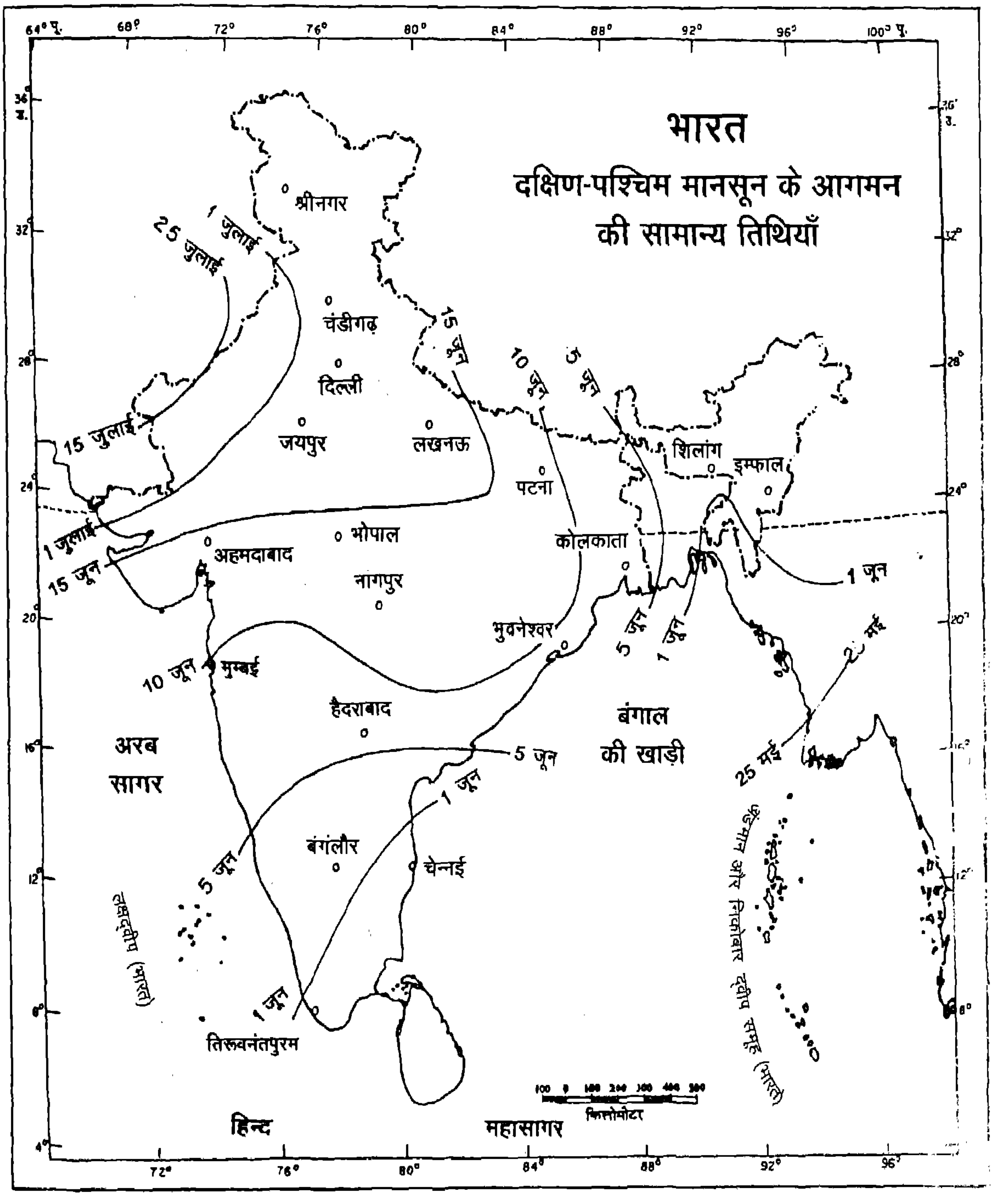
भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र में भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में है।
इस मानचित्र में अरूणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शायी गयी अन्तर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।
इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य, और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई है।
आन्तरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।
इस मानचित्र में दर्शित अक्षरविन्यास विभिन्न सूत्रों द्वारा प्राप्त किए हैं।

चित्र 4.3 भारत : तापमान (जुलाई)



भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र में भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में है।
इस मानचित्र में अरूणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शायी गयी अन्तर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।
इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य, और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई है।
आन्तरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।
इस मानचित्र में दर्शित अक्षरविन्यास विभिन्न सूत्रों द्वारा प्राप्त किए हैं।

चित्र 4.4 भारत : वायुदाब और धरातलीय पवनें (जुलाई)



भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र में भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
आन्तरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 4.5 भारत : दक्षिण-पश्चिम मानसून के आगमन की सामान्य तिथियाँ

दिशा पूर्वी हो जाती है। पश्चिम की ओर वर्षा घटती जाती है। लेकिन मैदानों की तुलना में हिमालय के दक्षिणी पार्श्व में वर्षा की मात्रा काफी अधिक रहती है। राजस्थान पहुँचते-पहुँचते इनकी आर्द्रता काफी घट जाती है। इसी कारण यहाँ बहुत कम वर्षा होती है।

निम्न वायु दाब का मानसूनी गर्त उत्तर भारत के ऊपर ही स्थिर नहीं रहता है। यह उत्तर और दक्षिण की दिशाओं में खिसकता रहता है तथा देश में वर्षा के वितरण को बहुत अधिक प्रभावित करता है। इससे मानसूनी वर्षा में विच्छेद (अंतराल) आ जाते हैं। अतंराल या विच्छेद (break) मानसूनी वर्षा की दुःखदायी विशेषता है। इससे खड़ी फसलों को भारी नुकसान होता है। इस ऋतु में असंख्य उष्ण कटिबंधीय चक्रवात भी आते हैं। बंगाल की खाड़ी और अरब सागर में उत्पन्न होने के बाद ये भारतीय भू-भाग की ओर चल पड़ते हैं। इनसे भारी वर्षा होती है तथा इस कारण आई बाढ़ों से बहुत बड़ी क्षति होती है। देश की तीन चौथाई वर्षा दक्षिण-पश्चिम मानसून की ऋतु में ही होती है।

पीछे हटते मानसून की ऋतु : सूर्य की दक्षिण की ओर आभासी (apparent) गति के परिणामस्वरूप गंगा की घाटी में स्थित निम्न वायु दाब का गर्त दक्षिण की ओर खिसकने लगता है, जिससे सितंबर के अंत तक दक्षिण-पश्चिम मानसून कमजोर हो जाता है। सितंबर के प्रथम सप्ताह में मानसून पश्चिमी राजस्थान से पीछे हट जाता है। इसी महीने के अंत तक राजस्थान, गुजरात, गंगा के पश्चिमी मैदान और मध्य उच्च भूमि से भी पीछे हट जाता है (चित्र 4.6)। अक्तूबर के प्रारंभ में निम्न वायु दाब का गर्त बंगाल की खाड़ी के उत्तरी भागों में केंद्रित हो जाता है तथा नवंबर के प्रारंभिक दिनों में ही यह कर्नाटक और तमिलनाडु के ऊपर चला जाता है। दिसंबर के मध्य तक निम्न वायुदाब का केंद्र प्रायद्वीप से पूरी तरह हट जाता है। यह परिवर्तन अक्तूबर के प्रथम सप्ताह में शुरु होकर दिसंबर के प्रथम सप्ताह तक पूरा हो जाता है। इस प्रकार अक्तूबर और नवंबर सक्रांति काल तथा शीत ऋतु की शुष्क दशाओं के अग्रदूत हैं।

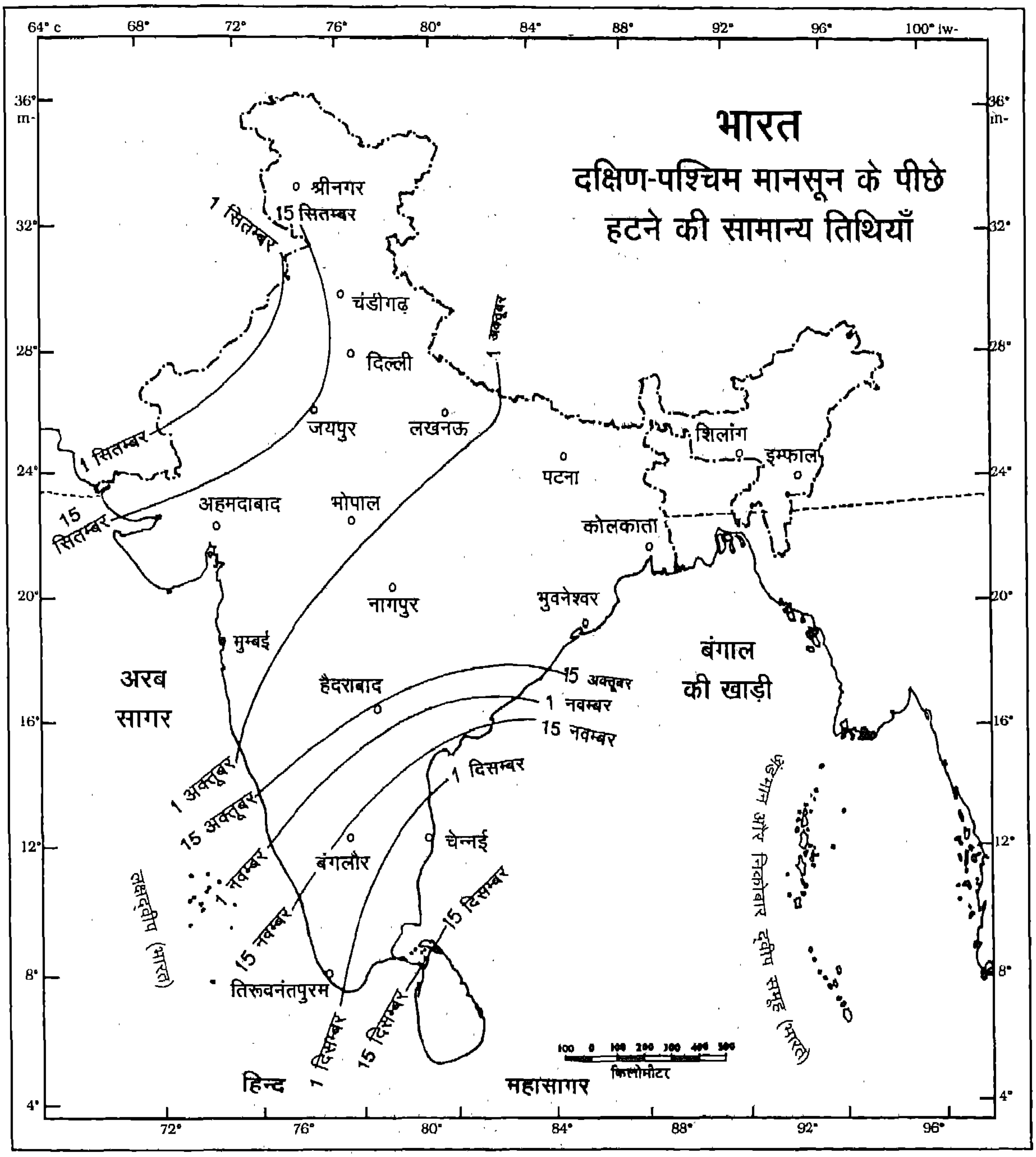
उत्तरी भारत में शुष्क मौसम पीछे हटते मानसून की विशेषता है। लेकिन प्रायद्वीप के पूर्वीभाग में इस ऋतु में भी वर्षा होती है। अक्तूबर और नवंबर में यहाँ वर्ष की सबसे अधिक वर्षा होती है। इस ऋतु की व्यापक वर्षा का संबंध चक्रवाती तूफानों से है, जो समुद्र में बनकर उत्तर की ओर आगे बढ़ जाते हैं। कुछ चक्रवाती तूफान बांग्लादेश और म्यांमार के तट से भी टकराते है। ऐसे चक्रवाती तूफान अरब सागर में कम ही आते हैं।

नवंबर तक देश के अधिकतर भागों से मानसून के हटते ही, उत्तर-पश्चिमी भारत में उच्च वायु दाब का एक केंद्र स्थापित हो जाता है। इसीलिए गंगा के मैदान के अधिकतर भागों में हवाएँ उत्तर-पश्चिम की दिशा से चलती हैं। असम और पश्चिम बंगाल में हवाएँ पूर्व से तथा पूर्वी राजस्थान में उत्तर से आती हैं। प्रायद्वीप के उत्तरी भाग में पवनों की दिशा उत्तरी और उत्तर-पश्चिमी रहती है। लेकिन इसके मध्य और दक्षिणी भाग में पवनें उतर-पूर्व और पूर्व से चलती हैं। प्रायद्वीप के दक्षिणी छोर पर पवनों की दिशा पश्चिमी होती है। देश में दक्षिण-पश्चिम मानसून पवनों के प्रसार की गति तेज होती है, लेकिन मानसून की धाराओं की गति पीछे हटते समय धीमी होती है। इसीलिए मानसून के प्रारंभिक महीनों की तुलना में पीछे हटती हुई मानसून पवनों से कम वर्षा होती है। इस ऋतु में वर्षा का वितरण बहुत ही अनियमित होता है।

वर्षा का वितरण

भारतीय कृषि के लिए वर्षा बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। देश की कृषि की संपन्नता बहुत कुछ समय पर होने वाली और सुवितरित वर्षा पर निर्भर करती है। वर्षा की कमी से कृषि पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। इसीलिए प्रायः कहा जाता है कि भारतीय कृषि मानसून के साथ एक जुआ है।

वर्षा के प्रादेशिक और सामयिक वितरण में बहुत अंतर पाया जाता है। भारत की 80 प्रतिशत से अधिक वार्षिक वर्षा, जून से लेकर सितंबर तक के चार महीनों में ही हो जाती है (चित्र 4.7)। लेकिन अन्य महीनों में भी थोड़ी बहुत वर्षा तो हो ही जाती है। शीत ऋतु में उत्तर-पश्चिमी भारत में लगभग 25 से. मी. वर्षा होती है। प्रायद्वीप के दक्षिण-पूर्वी भाग में पीछे हटते हुए दक्षिण-पश्चिम मानसून तथा उत्तर-पूर्वी मानसून से लगभग 25 से.मी. वर्षा हो जाती है। लेकिन प्रायद्वीप के आंतरिक भागों में वर्षा की मात्रा तेजी से घटने लगती है। ग्रीष्म ऋतु में उत्तर-पूर्वी भारत और पश्चिम बंगाल में तड़ित झंझाओं से वर्षा होती है। इसी अवधि में केरल में भी दक्षिण-पश्चिम मानसून के अस्थायी प्रसार से वर्षा हो जाती है। लेकिन भारत में सबसे

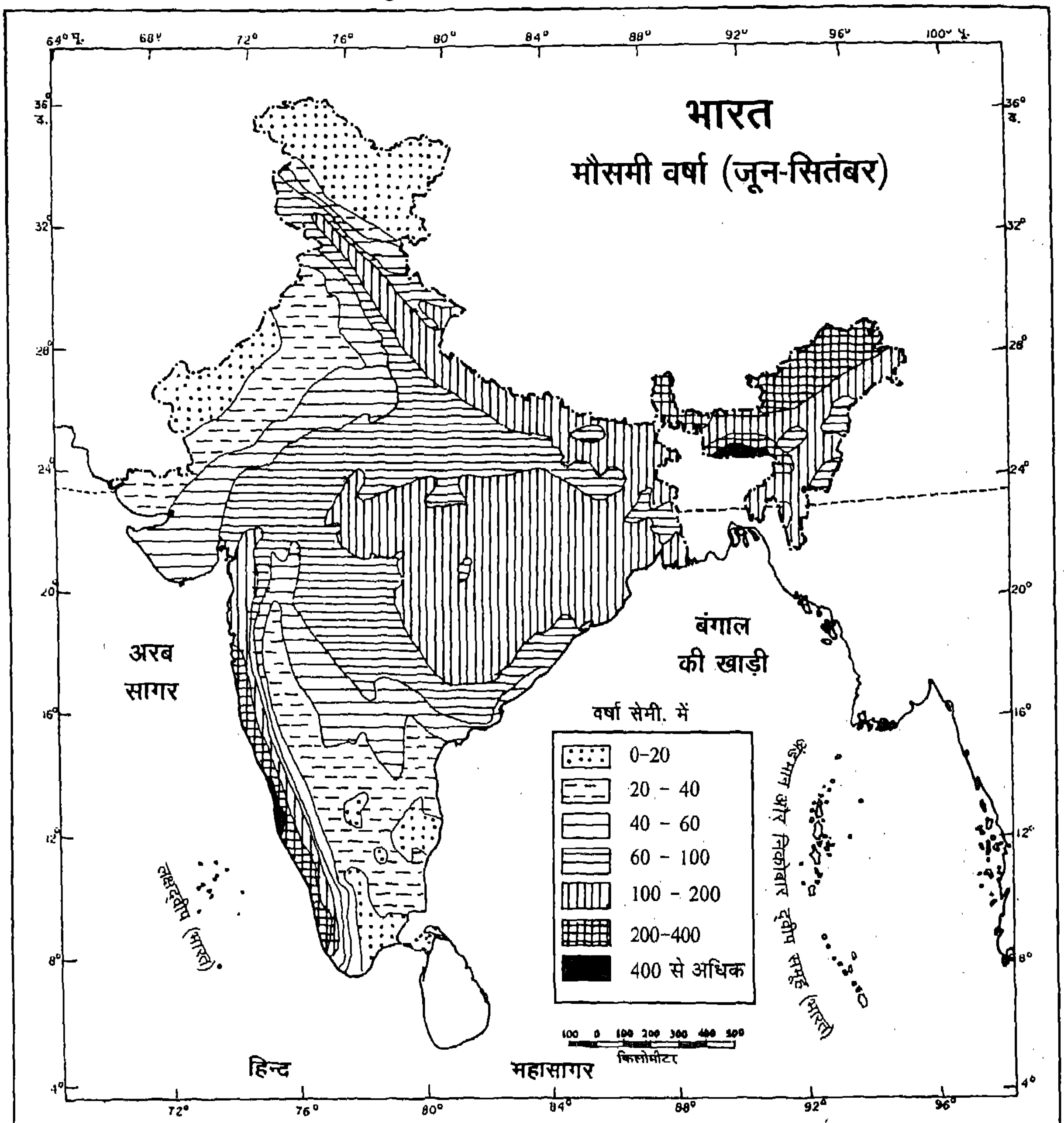


भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र में भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
आन्तरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 4.6 भारत : दक्षिण-पश्चिम मानसून के पीछे हटने की सामान्य तिथियाँ

अधिक वर्षा दक्षिण-पश्चिम मानसून से ही होती है। यही नहीं यह वर्षा अपेक्षाकृत सुवितरित है।

भारत में औसतन वर्ष में 125 से.मी. वर्षा होती है, लेकिन इसमें क्षेत्रीय (स्थानिक) भिन्नताएँ बहुत अधिक हैं। चित्र 4.8 में भारत में वर्षा का वार्षिक वितरण दिखाया गया है। भारत के पश्चिमी तट, पश्चिमी घाट, लक्षद्वीप, उत्तर-पूर्व के उप-हिमालयी क्षेत्रों और मेघालय की दक्षिणी पहाड़ियों पर सबसे अधिक वर्षा होती है। यहाँ 400 से.मी.



भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र में भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शायी गयी अन्तर्राज्य सीमा, उत्तरी पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।
आन्तरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।
इस मानचित्र में दर्शित अक्षरविन्यास विभिन्न सूत्रों द्वारा प्राप्त किए हैं।

चित्र 4.7 भारत : मौसमी वर्षा (जून-सितंबर)

से अधिक ही वर्षा होती है। भारत के मॉसिनराम और चेरापूंजी सर्वाधिक वर्षा के लिए विख्यात हैं। ब्रह्मपुत्र घाटी और निकटवर्ती पहाड़ियों पर 200 से.मी. से कम वर्षा होती है। गुजरात के दक्षिण भागों, पश्चिमी घाट, पूर्वी तमिलनाडु, प्रायद्वीप के उत्तरी-पूर्वी भाग के उड़ीसा, झारखंड और छत्तीसगढ़ राज्यों, बिहार, पूर्वी मध्य प्रदेश, उप-हिमालय के साथ-साथ विस्तृत गंगा के उत्तरी मैदान, कछार घाटी और मणिपुर में 100 से 200 से.मी. के बीच वर्षा होती है। प्रायद्वीप के कुछ भागों जैसे : विशेषरूप से आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और महाराष्ट्र, लद्दाख और पश्चिमी राजस्थान के अधिकतर भागों में 50 से.मी. से कम वर्षा होती है। भारत के शेष भागों में 50 से 100 से.मी. के बीच वर्षा होती है।

देश की वर्षा के वितरण का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने के बाद दो उल्लेखनीय तथ्य उजागर होते हैं : (क) भारत के उत्तरी भाग में वर्षा की मात्रा पश्चिम की ओर घटती जाती है; और (ख) प्रायद्वीपीय भारत में तमिलनाडु के तट को छोड़कर यह पूर्व की ओर घटती है।

वर्षा की परिवर्तिता : यह भारत की वर्षा का विशिष्ट लक्षण है। निम्नलिखित सूत्र की सहायता से वर्षा की परिवर्तिता का मान ज्ञात किया जाता है :

$$C = \frac{\text{मानक विचलन}}{\text{माध्य}} \times 100$$

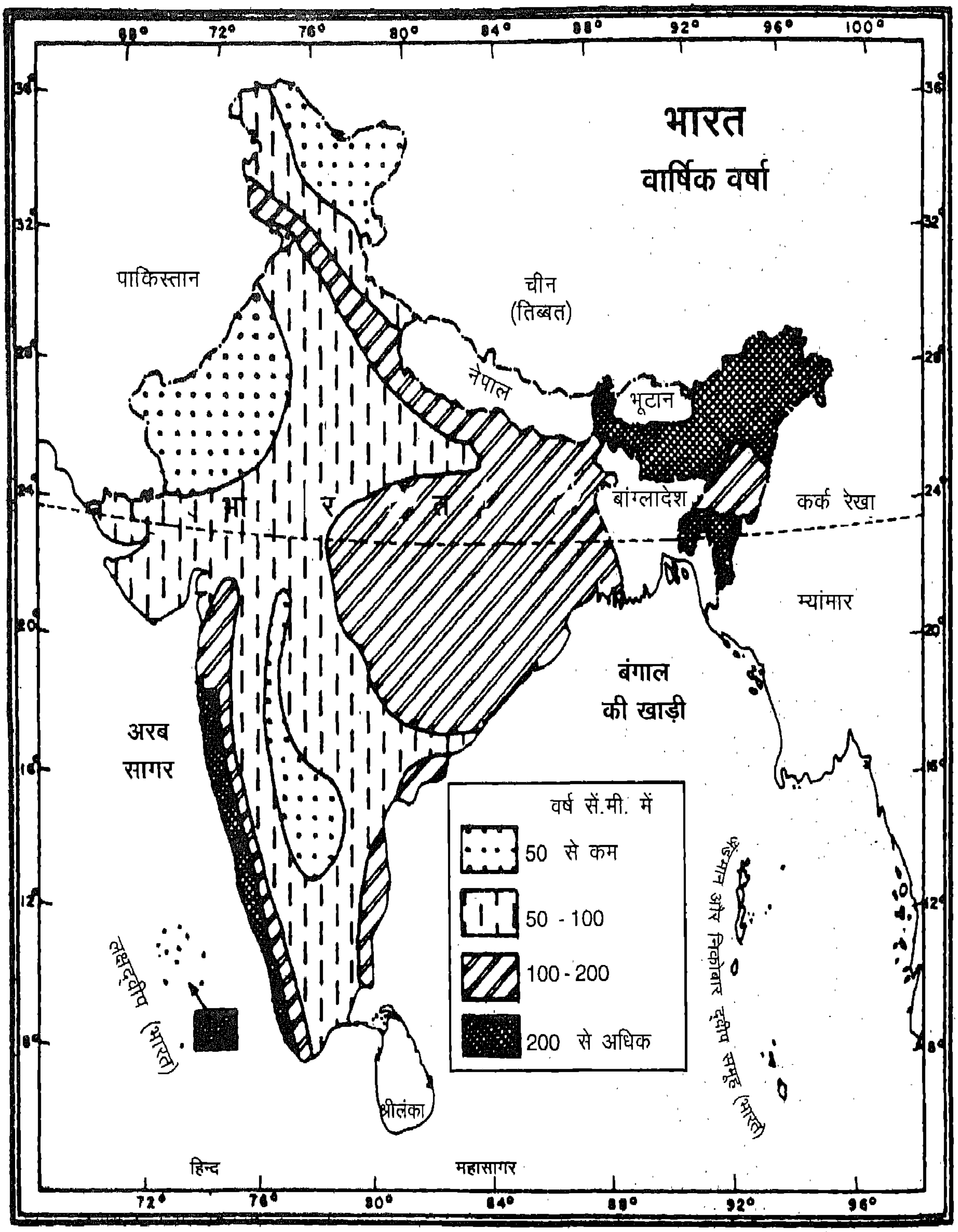
यहाँ C से तात्पर्य विचरण गुणांक से है। विचरण गुणांक वर्षा के माध्यमान से परिवर्तन को प्रदर्शित करता है। कुछ स्थानों की वास्तविक वर्षा में 20 से लेकर 50 प्रतिशत तक परिवर्तन हो जाता है। विचरण गुणांक के मान एक स्थान से दूसरे स्थान पर परिवर्तित हो जाते हैं। चित्र 4.9 में भारत की वर्षा की परिवर्तिता को दिखाया गया है। 25 प्रतिशत से कम परिवर्तिता वाले ये क्षेत्र हैं : पश्चिमी तट, पश्चिमी घाट, उत्तर-पूर्वी प्रायद्वीप, गंगा के पूर्वी मैदान, उत्तर-पूर्वी भारत, उत्तरांचल, हिमाचल प्रदेश और जम्मू और कश्मीर के दक्षिण-पश्चिमी भाग। इन क्षेत्रों में वार्षिक वर्षा 100 से.मी. से अधिक होती है। 50 प्रतिशत परिवर्तिता वाले क्षेत्र ये हैं : राजस्थान के पश्चिमी भाग, उत्तरी जम्मू और कश्मीर तथा दक्कन के पठार का आंतरिक भाग। इन क्षेत्रों में वार्षिक वर्षा 50 से.मी. से कम होती है। भारत के शेष भागों में परिवर्तिता 25 से 50 प्रतिशत तक है। इन क्षेत्रों में वार्षिक वर्षा 50 से 100 से.मी. के बीच होती है। ऊपर के वितरण से स्पष्ट है कि वर्षा की परिवर्तिता वर्षा की मात्रा का अनुसरण करती है। जितनी अधिक वर्षा उतनी ही वर्षा की परिवर्तिता कम; इसके विपरीत जितनी अधिक वर्षा की परिवर्तिता, उतनी ही कम वर्षा।

वर्षा की परिवर्तिता भारतीय कृषि में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उच्च परिवर्तिता की विशेषता वाले क्षेत्रों में पानी की हमेशा किल्लत बनी रहती है तथा फसलें आमतौर पर नष्ट हो जाती हैं। सूखे के दौर इन क्षेत्रों में प्रायः आते रहते हैं।

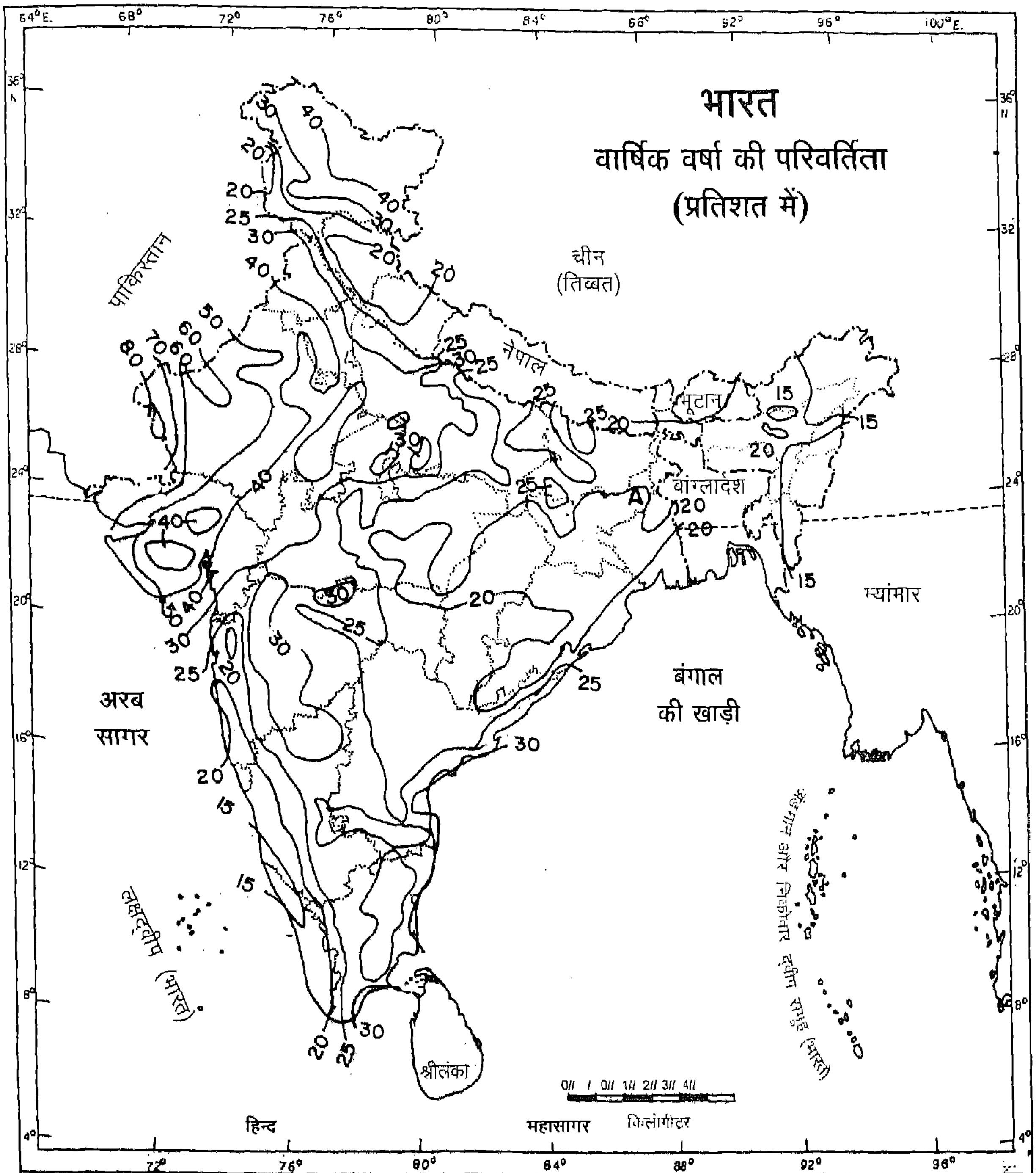
मानसूनी वर्षा की अन्य कई विशेषताएं हैं जैसे : (i) पूरे देश या इसके कुछ भागों में मानसूनी वर्षा का प्रारंभ काफी देर से होता है। (ii) जुलाई और अगस्त में जब ग्रीष्म ऋतु की फसलों को प्रचुर मात्रा में पानी की आवश्यकता होती है, तब सूखे के लंबे दौर आ जाते हैं। (iii) कभी-कभी मानसूनी वर्षा अपनी सामान्य तिथि से काफी पहले ही हट जाती है, इससे खड़ी फसलों को भारी नुक्सान होता है तथा शीत ऋतु की फसलों की बुवाई में बड़ी कठिनाई होती है, (iv) देश के किसी भाग में तो वर्षा सामान्य तिथि के बाद भी होती रहती है तथा किसी भाग में वर्षा पहले ही रुक जाती है, (v) ग्रीष्म ऋतु की वर्षा मूसलाधार होती है, इससे अधिकतर पानी उपयोग हुए बिना ही बह जाता है और मृदा का अपरदन होता है।

तापमान का वितरण

लोगों के आर्थिक जीवन पर तापमान का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। हमने किसी स्थान के तापमान के वितरण को प्रभावित करने वाले कारकों के विषय में पढ़ा है। हम जानते हैं कि समुद्र के निकट के स्थानों की तुलना में सुदूर आंतरिक भागों के स्थानों में ताप परिसर अधिक रहता है। भारत के उत्तर-पश्चिम भाग की तुलना में सुदूर-दक्षिण के स्थानों के तापमान में कम भिन्नताएँ होती हैं। मैदानी स्थानों की तुलना में पहाड़ी स्थानों के तापमान कम रहते हैं। अधिकतर देशों में जुलाई और अगस्त भी जून महीने के समान ही गरम होते हैं। लेकिन दक्षिण-पश्चिम मानसूनी वर्षा और मेघावरण के प्रभाव से भारत के अधिकतर भागों का तापमान इस अवधि में कुछ कम हो जाता है।



चित्र 4.8 भारत : वार्षिक वर्षा



भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र में भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में है।
इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शायी गयी अन्तर्राज्य सीमा, उत्तरी पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।
इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य, और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई है।
आन्तरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।
इस मानचित्र में दर्शित अक्षरविन्यास विभिन्न सूत्रों द्वारा प्राप्त किए है।

चित्र 4.9 भारत : वार्षिक वर्षा की परिवर्तिता (प्रतिशत में)

एल-नीनो और भारतीय मानसून

एल-नीनो एक जटिल मौसम तंत्र है। यह हर पाँच या दस साल बाद प्रकट होता रहता है। इसके कारण संसार के विभिन्न भागों में सूखा, बाढ़ और मौसम की चरम अवस्थाएँ आती हैं।

महासागरीय और वायुमंडलीय तंत्र इसमें शामिल होते हैं। पूर्वी प्रशांत महासागर में यह पेरू के तट के निकट कोष्ण समुद्री धारा के रूप में प्रकट होता है। इससे भारत सहित अनेक स्थानों का मौसम प्रभावित होता है।

भारत में मानसून की लंबी अवधि के पूर्वानुमान के लिए एल-नीनो का उपयोग होता है। सन् 1990-91 में एल-नीनो का प्रचंड रूप देखने को मिला था। इसके कारण देश के अधिकतर भागों में मानसून के आगमन में 5 से 12 दिनों तक की देरी हो गई थी।

शीत ऋतु में तापमान दक्षिण से उत्तर की ओर घटता जाता है। इस ऋतु में प्रायद्वीप में औसत मासिक तापमान 29^0 से. के आस-पास रहता है तथा उत्तर भारत में यह 12^0 से. से भी कम हो जाता है। सुदूर दक्षिण में औसत न्यूनतम तापमान लगभग 24^0 से. होता है, लेकिन उत्तर-पश्चिमी भारत में यह 5^0 से. रहता है। शीत लहर की अवधि में तापमान सामान्य से 6^0 से.नीचे गिर जाता है। इस समय कई दिनों तक उत्तरी भारत में पाला भी पड़ता रहता है।

ग्रीष्म ऋतु में उत्तर-पश्चिम भारत के आंतरिक भागों में उच्चतम तापमान रहता है। संपूर्ण उत्तर भारत में अप्रैल में औसत मासिक तापमान 37^0 से. से अधिक हो जाता है। उत्तर-पश्चिम और मध्य भारत के अधिकतर भागों में मई का तापमान 40^0 से. से ऊपर चला जाता है। पश्चिमी राजस्थान और मध्य भारत में अधिकतम तापमान कभी-कभी 50^0 से. तक बढ़ जाता है। उत्तर-पश्चिम भारत में जब तापमान सामान्य से 6^0 से. से अधिक हो जाता है, तो यहाँ गरमी की लहर आ जाती है। सूंपर्ण भारत में मई के महीने में औसत न्यूनतम तापमान 21^0 से. से अधिक रहता है। लेकिन प्रायद्वीप के पूर्वी आधे भाग में यह 26^0 से. से अधिक रहता है। मानसूनी वर्षा के प्रारंभ होते ही तापमान तेजी से गिरने लगता है। उत्तर-पश्चिम भारत में जुलाई में न्यूनतम तापमान घटकर 35^0 से. रह जाता है। अगस्त के महीने में तापमान और भी कम हो जाता है, लेकिन जैसे ही मध्य सितंबर में वर्षा थम जाती है यह पुनः बढ़कर 40^0 से. हो जाता है। इसके बाद औसत अधिकतम तापमान घट जाता है।

भारत के जलवायु प्रदेश

भारतीय मानसून की मौसमी दशाओं में कुछ प्रादेशिक भिन्नताएँ पाई जाती हैं। इन्हीं भिन्नताओं के आधार पर मानसूनी जलवायु के कुछ उप-प्रकारों की पहचान की गई है। जलवायु प्रदेश में जलवायु की लगभग एक जैसी दशाएँ पाई जाती हैं, जो कुछ कारकों का संयुक्त परिणाम होती हैं। तापमान और वर्षा जलवायु के दो महत्त्वूर्ण तत्व हैं, जिन्हें जलवायु के वर्गीकरण की किसी भी योजना में निर्णायक माना जाता है। लेकिन फिर भी जलवायु का वर्गीकरण एक जटिल प्रक्रिया है। जलवायु के वर्गीकरण की विभिन्न योजनाएँ हैं। कोपेन की योजना पर आधारित जलवायु के प्रमुख प्रकारों का नीचे के अनुच्छेदों में वर्णन किया गया है।

कोपेन की योजना के अनुसार प्रदेश : कोपेन ने तापमान और वषर्ण के मासिक मानों को जलवायु के वर्गीकरण की योजना का आधार बनाया है। कोपेन ने पाँच प्रमुख जलवायु प्रदेशों का निर्धारण किया है। ये प्रदेश हैं :

(अ) *उष्ण कटिबंधीय जलवायु :* यहाँ औसत मासिक तापमान पूरे वर्ष 18^0 से. से अधिक रहता है।

(ब) *शुष्क जलवायु :* यहाँ तापमान की तुलना में वर्षण बहुत कम होता है, इसलिए शुष्क है। शुष्कता के कम होने पर अर्द्ध शुष्क मरुस्थल (S) होता है। इसके विपरीत शुष्क्ता अधिक होने पर मरुस्थल (W) होता है।

(स) *कोष्ण जलवायु :* यहाँ सबसे ठंडे महीने का औसत तापमान 18^0 से. और -3^0 से. के बीच रहता है।

(द) *हिम जलवायु :* यहाँ सबसे कोष्ण महीने का औसत तापमान 10^0 से. से अधिक और सबसे ठंडे महीने का औसत तापमान -3^0 से. से कम रहता है।

(इ) *बर्फ जलवायु :* यहाँ सबसे कोष्ण महीने का औसत तापमान 10^0 से. से कम रहता है।

गरमी की लहर और शीत लहर

भारत के कुछ भागों में मार्च से लेकर जुलाई के महीनों की अवधि में असाधारण रूप से गरम मौसम के दौर आते हैं। ये दौर एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश की ओर खिसकते रहते हैं। इन्हें गरमी की लहर कहते हैं। गरमी की लहर से प्रभावित इन प्रदेशों के तापमान सामान्य से 6^0 से. अधिक रहते हैं। सामान्य से 8^0 से. या इससे अधिक तापमान के बढ़ जाने पर चलने वाली गरमी की लहर को प्रचंड (severe) माना जाता है। इसे उत्तर भारत में 'लू' कहते हैं। प्रचंड गरमी की लहर की अवधि जब बढ़ जाती है तब किसानों के लिए गंभीर समस्याएँ पैदा हो जाती हैं। बड़ी संख्या में मनुष्य और पशु मौत के मुहँ में चले जाते हैं। दक्षिण के केरल और तमिलनाडु राज्यों तथा पांडिचेरी, लक्षद्वीप, तथा अंडमान और निकोबार द्वीप समूह को छोड़कर देश के लगभग सभी भागों में गरमी की लहर आती है। उत्तर-पश्चिम भारत और उत्तर प्रदेश में सबसे अधिक गरमी की लहरें आती हैं। साल में कम से कम गरमी की एक लहर तो आती ही है।

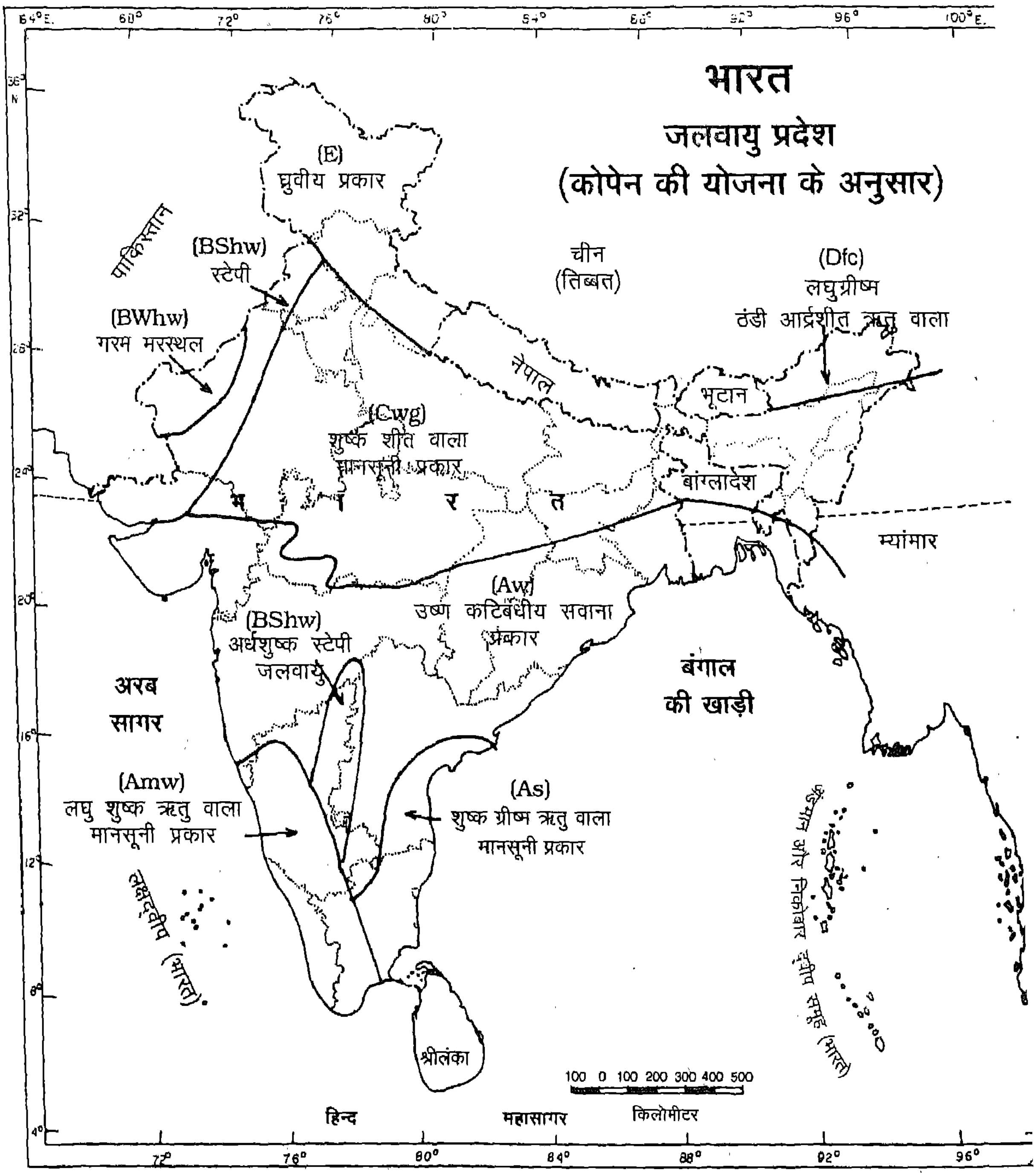
उत्तर-पश्चिम भारत में नवंबर से लेकर अप्रैल तक ठंडी और शुष्क हवाएँ चलती हैं। जब न्यूनतम तापमान सामान्य से 6^0 से. से नीचे चला जाता है, तब इसे शीत लहर कहते हैं। जम्मू और कश्मीर, पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान और मध्य प्रदेश में ठिठुराने वाली शीत लहर चलती है। जम्मू और कश्मीर में औसतन साल में कम से कम चार शीत लहर तो आती ही हैं। इसके विपरीत गुजरात और पश्चिमी मध्य प्रदेश में साल में एक शीत लहर आती है। ठिठुराने वाली शीत लहरों की आवृत्ति पूर्व और दक्षिण की ओर घट जाती है। दक्षिणी राज्यों में सामान्यतः शीत लहर नहीं चलती।

कोपेन ने जलवायु के प्रकारों को निर्धारित करने के लिए अक्षरों का संकेत के रूप में प्रयोग किया जैसाकि ऊपर दिया गया है। प्रत्येक प्रकार को उप-प्रकारों में विभाजित किया गया है। इस विभाजन में तापमान और वर्षा के वितरण में मौसमी भिन्नताओं को आधार बनाया गया है। उसने अंग्रेजी के बड़े अक्षर S को अर्द्ध मरूस्थल के लिए और W को मरूस्थल के लिए प्रयोग किया। इसी तरह उप-विभागों को परिभाषित करने के लिए अंग्रेजी के निम्नलिखित छोटे अक्षरों का उपयोग किया है जैसे : f (प्रर्याप्त वर्षण), m (शुष्क मानसून होते हुए भी वर्षा वन) w (शुष्क शीत ऋतु), h (शुष्क और गरम), c (चार महीनों से कम अवधि में औसत तापमान 10^0 से. से अधिक), और g (गंगा का मैदान)। इस योजना के अनुसार भारत को आठ जलवायु प्रदेशों में बाँटा जा सकता है (सारणी 4.1, एवं चित्र 4.10)।

जलाधिशेष और जलाभाव क्षेत्र

वर्षण और जल की आवश्यकता के बीच के संबंध को जल सतुंलन कहते हैं। यदि वर्षण, वाष्पीकरण और वाष्पोत्सर्जन की अधिकतम मात्रा से ज्यादा है, तो क्षेत्र आर्द्र कहलाएगा और यदि वर्षण, जल की आवश्यकता से कम है, तो क्षेत्र शुष्क कहलाएगा। वर्षण और जल की आवश्यकता ऋतुओं के अनुसार बदलती रहती है। किसी ऋतु में वर्षण का अभाव हो सकता है और दूसरी ऋतु में अधिकता हो सकती है। जल संतुलन के निर्धारण के लिए वास्तविक वाष्पीकरण और वाष्पोत्सर्जन तथा संभावित वाष्पोत्सर्जन के बीच स्पष्ट अंतर मालूम होना चाहिए। पहली स्थिति में जल की मात्रा, जो वास्तव में वाष्पीकृत और वाष्पोत्सर्जित हो जाती है, जबकि दूसरी स्थिति में जल की वह मात्रा है, जो यदि उपलब्ध होती तो वाष्पीकृत और वाष्पोत्सर्जित हो जाती। जल संतुलन का मूल्यांकन करते समय, वर्षण को 'आय', संभावित वाष्पोत्सर्जन को 'खर्च' और मृदा में संचित नमी की मात्रा को शुष्क ऋतु में उपयोग करने के लिए भंडार के रूप में माना जाता है। जलाभाव जलवायु को उत्तरोतर शुष्क और जल की अधिकता उसे उत्तरोतर आर्द्र कर देती है।

भारत का जलाधिशेष क्षेत्र प्रायद्वीप का पश्चिमी घाट है। पूर्व की ओर बहने वाली गोदावरी, कृष्णा और कावेरी जैसी बड़ी नदियाँ और पश्चिम की ओर बहने वाली तटीय नदियाँ इसी पश्चिमी घाट से निकलती है। जल के अधिशेष का दूसरा क्षेत्र हिमालय के दक्षिणी ढलानों, मेघालय, पूर्वी पर्वत श्रेणियों में है। इन क्षेत्रों में प्रतिवर्ष 100 से.मी. से अधिक जलाधिशेष रहता है। राजस्थान, पंजाब तथा कर्नाटक, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, गुजरात और उत्तर प्रदेश के अधिकतर भागों में या तो जलाधिशेष नहीं होता, या बहुत कम



भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र में भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में है।
इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शायी गयी अन्तर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।
इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य, और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई है।
आन्तरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।
इस मानचित्र मे दर्शित अक्षरविन्यास विभिन्न सूत्रों द्वारा प्राप्त किए हैं।

चित्र 4.10 भारत : जलवायु प्रदेश (कोपेन की योजना के अनुसार)

सारणी 4.1 : कोपेन की योजना के अनुसार भारत के जलवायु प्रदेश

जलवायु के प्रकार	*क्षेत्र*
Amw - लघु शुष्क ऋतु वाला मानसूनी प्रकार	गोआ के दक्षिण में भारत का पश्चिमी तट
As - शुष्क ग्रीष्म ऋतु वाला मानसूनी प्रकार	तमिलनाडु का कोरोमंडल तट
Aw - उष्ण कटिबंधीय सवाना प्रकार	कर्क वृत के दक्षिण में प्रायद्वीपीय पठार का अधिकतर भाग
BShw - अर्ध शुष्क स्टेपी जलवायु	उत्तर-पश्चिमी गुजरात, पश्चिमी राजस्थान और पंजाब के कुछ भाग
BWhw- गरम मरुस्थल	राजस्थान का सबसे पश्चिमी भाग
Cwg- शुष्क शीत ऋतु वाला मानसूनी प्रकार	गंगा का मैदान, पूर्वी राजस्थान, उत्तरी मध्य प्रदेश, उत्तर पूर्वी भारत का अधिकतर प्रदेश
Dfc - लघु ग्रीष्म तथा ठंडी आर्द्र शीत ऋतु वाला जलवायु प्रदेश	अरुणाचल प्रदेश
E - ध्रुवीय प्रकार	जम्मू और कश्मीर, हिमाचल प्रदेश और उत्तरांचल

20° से.मी. प्रतिवर्ष से भी कम होता है। हमारे देश में जलाधिशेष की अन्य विशेषता है, ऋतुओं के अनुसार जल का घटना-बढ़ना। सर्वाधिक जलाधिशेष वर्षा ऋतु में रहता है।

सर्वाधिक जलाभाव का क्षेत्र, उत्तर-पश्चिमी भारत के राजस्थान, पंजाब और हरियाणा हैं। इनमें प्रतिवर्ष 150 से.मी. से अधिक जलाभाव रहता है। जलाभाव का दूसरा बड़ा क्षेत्र कृष्णा नदी की द्रोणी है। जलाभाव केवल शुष्क क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं है। यह उन क्षेत्रों में भी पाया जाता है, जहाँ दक्षिणी-पश्चिम मानसून की ऋतु में भारी वर्षा होती है।

नमी सूचकांक : जलाभाव और जल की आवश्यकता के बीच के अनुपात को शुष्कता का सूचकांक कहते हैं। इसके विपरीत जलाधिशेष और जल की आवश्यकता के बीच के अनुपात का आर्द्रता सूचकांक कहते हैं। इन सूचकांकों को प्रतिशत में इस प्रकार व्यक्त किया जाता है

$I_a = d \times 100/n \quad I_h = s \times 100/n$, इसमें I_a शुष्कता के सूचकांक को, I_h आर्द्रता के सूचकांक को, d जलाभाव को, s जलाधिशेष और n जल की आवश्यकता को प्रदर्शित करता है।

आर्द्रता और शुष्कता सूचकांकों के वार्षिक मानों के आधार पर थार्न्थवेट ने नमी सूचकांक (I_m) विकसित किया। इसका सूत्र है :

$$I_m = 100s - 60d/n$$

इसमें ऊपर दिए गए अक्षर चिह्नों का उपयोग किया गया है।

नमी सूचकांक के धनात्मक मान आर्द्र जलवायु और ऋणात्मक मान शुष्क जलवायु को दर्शाते हैं। नमी सूचकांकों के आधार पर निम्नलिखित पाँच जलवायु पहचाने जाते हैं:

A	अति आर्द्र	:	I_m 100 या अधिक;
B	आर्द्र	:	I_m 20 और 100 बीच;
C_2	नम उप-आर्द्र	:	I_m 0 और 20 के बीच;
C_1	शुष्क उप-आर्द्र	:	I_m 0 और -20 के बीच;
D	अर्द्ध शुष्क	:	I_m -40 और -20 के बीच;
E	शुष्क	:	I_m -40 और इससे कम।

ऋतुओं के अनुसार नमी में घट-बढ़ को थार्न्थवेट ने अंग्रेजी के छोटे अक्षरों के द्वारा अभिव्यक्त किया है, जैसे ग्रीष्मऋतु में जलाभाव को s के द्वारा, शीतऋतु में जलाभाव को w के द्वारा, आर्द्र जलवायु में जलाभाव के न होने या बहुत कम होने को r के द्वारा, तथा शुष्क जलवायु में जलाधिशेष के न होने या बहुत कम होने को d के द्वारा दर्शाया गया है। ऊपर वर्णित नमी सूचकांक के आधार पर थार्न्थवेट की जलवायु प्रकारों के विभाजन की योजना के अनुसार भारत को छः जलवायु प्रदेशों में बाँटा गया है (सारणी 4.2 तथा चित्र 4.11)।

नमी का अभाव, नमी का अधिशेष तथा इन दोनों में ऋतुओं के अनुसार घट-बढ़, पौधों की वृद्धि और विकास के प्रमुख निर्धारक हैं।

जल संतुलन का ज्ञान, वैज्ञानिक सिंचाई में बहुत उपयोगी होता है। इसके द्वारा अच्छे कृषि उत्पादन के लिए न केवल नमी की आवश्यकता का ज्ञान होता है अपितु सिंचाई के लिए पानी की उपयुक्त मात्रा का भी पता चलता है।

सूखा : यह वह दशा है, जिसमें अधिकतम वाष्पीकरण और वाष्पोत्सर्जन के लिए आवश्यक जल की मात्रा की तुलना में वर्षण तथा मृदा द्वारा प्राप्त जल की मात्रा कम होती है। सूखा तीन प्रकार का होता है : स्थायी, ऋतुनिष्ठ तथा आकस्मिक। स्थायी सूखा शुष्क जलवायु की विशेषता है। ऐसे क्षेत्र में वनस्पति विरल, कठोर और कम से कम जल मिलने पर जीवित रहने वाली होती है। इस प्रकार सूखे की दशा में बिना सिंचाई के खेती असंभव है। ऋतुनिष्ठ सूखा ऐसी जलवायु के क्षेत्रों में पड़ता है, जहाँ वर्षा और शुष्क ऋतुओं में स्पष्ट अंतर पाया जाता है। भारत का अधिकतर क्षेत्र ऋतुनिष्ठ सूखे से पीड़ित हैं। आकस्मिक सूखा अनियमित होता है। यह परिवर्तनशील वर्षा के क्षेत्रों में पड़ता है। वैसे तो यह किसी भी ऋतु में पड़ सकता है, लेकिन यह प्रायः उप-आर्द्रता जलवायु वाले क्षेत्रों में पड़ता है।

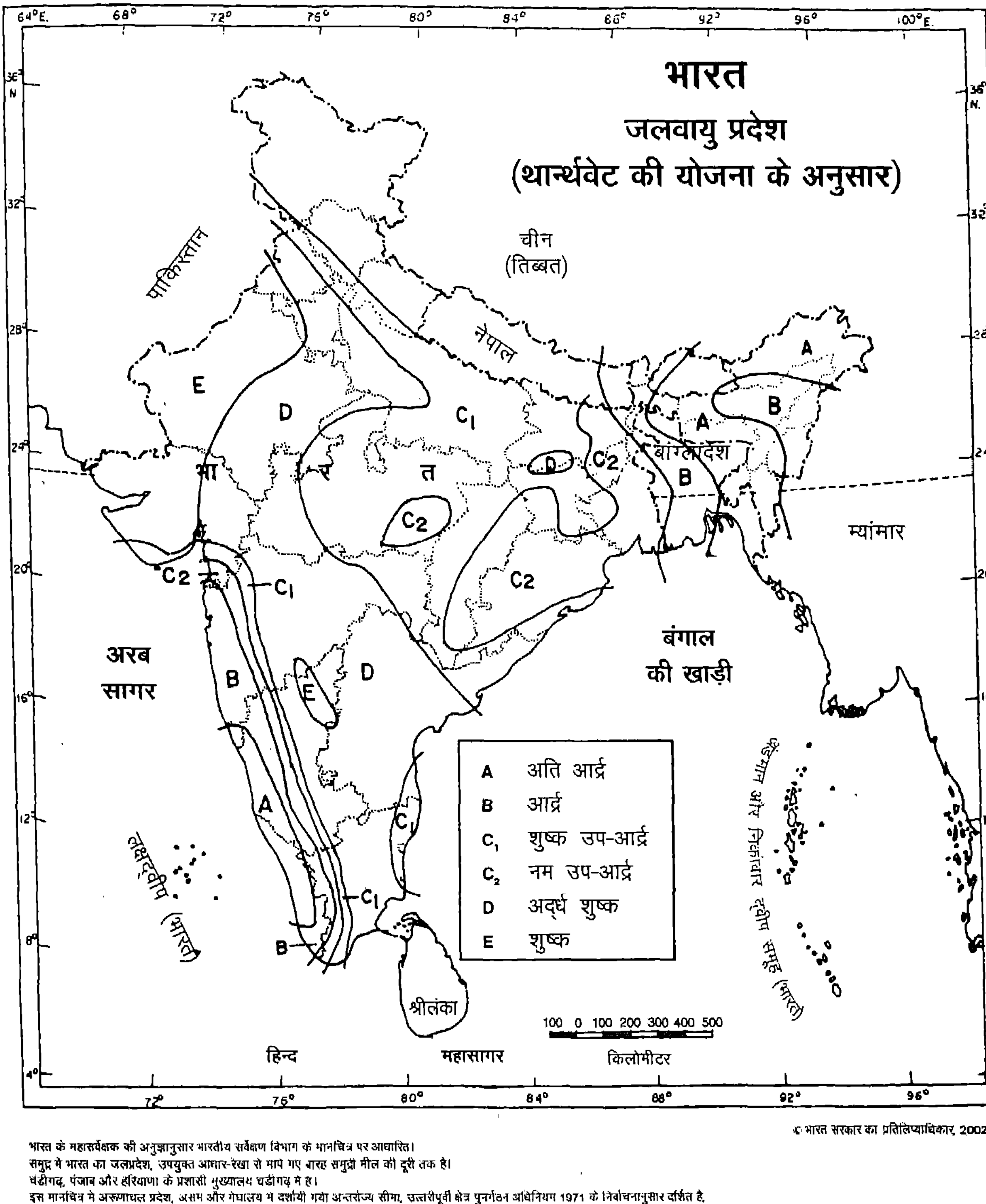
जलवायु और लोग

जलवायु का सुखद या दुःखद होना भी जलवायु के वर्गीकरण के किसी भी अध्ययन में महत्त्वपूर्ण है। ली (Lee) ने मानव सुख की दृष्टि से जलवायु का अध्ययन किया था। उसने वर्ष के सबसे गरम और सबसे ठंडे महीने के तापमान और आर्द्रता को इस अध्ययन का आधार बनाया था।

जब सबसे गरम और ठंडे महीनों का औसत तापमान 30^0 से. होता है, तब इसे गरम के वर्ग में रखा जाता है; जब यह 20^0-30^0 से. होता है तो कोष्ण; 10^0-20^0 से. है, तो शीतोष्ण; तथा जब यह 10^0 से. से कम होता है, तो

सारणी 4.2 : थार्न्थवेट की योजना के अनुसार भारत के जलवायु प्रदेश

जलवायु के प्रकार	*क्षेत्र*
A अति आर्द्र	उत्तर-पूर्वी भारत में मिजोरम, त्रिपुरा, मेघालय, निचला असम, और अरुणाचल प्रदेश तथा गोआ के दक्षिण में पश्चिमी तट।
B आर्द्र	नागालैंड, ऊपरी असम और मणिपुर, उत्तरी-बंगाल और सिक्किम, तथा पश्चिमी तटवर्ती क्षेत्र
C2 नम उप-आर्द्र	पश्चिम-बंगाल, उड़ीसा, पूर्वी-बिहार, पंचमढ़ी (मध्य प्रदेश), पश्चिमी घाट के पूर्वी ढाल
C1 शुष्क उप-आर्द्र	गंगा का मैदान, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, उत्तर-पूर्वी आंध्र प्रदेश, उत्तरी-पंजाब और हरियाणा, उत्तर-पूर्वी तमिलनाडु, उतरांचल, हिमाचल प्रदेश तथा जम्मू और कश्मीर।
D अर्ध शुष्क	तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, पूर्वी-कर्नाटक, पूर्वी-महाराष्ट्र, उत्तर-पूर्वी-गुजरात, पूर्वी-राजस्थान, पंजाब और हरियाणा का अधिकतर भाग
E शुष्क	पश्चिमी-राजस्थान, पश्चिमी-गुजरात और दक्षिणी-पंजाब



भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र मे भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ मे है।
इस मानचित्र मे अरूणाचल प्रदेश, असम और मेघालय मे दर्शायी गयी अन्तर्राज्य सीमा, उत्तरीपूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।
इस मानचित्र मे अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य, और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई है।
आन्तरिक विवरणो को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।
इस मानचित्र मे दर्शित अक्षरविन्यास विभिन्न सूत्रो द्वारा प्राप्त किए हैं।

*चित्र **4.11** भारत : जलवायु प्रदेश (थार्न्थवेट की योजना के अनुसार)*

इसे शीतल के वर्ग में रखा जाता है। आर्द्रता को सबसे गरम और सबसे ठंडे महीनों के औसत वाष्पदाब के संदर्भ में अभिव्यक्त किया जाता है। जब यह पारे का 20 मि.मी. से अधिक होता है, तब इसे जलवायु के जल सिक्त (wet) वर्ग में रखा जाता है ; 15-20 मि.मी. होने पर नम (moist), 10-15 मि.मी. होने पर आर्द्र (humid), तथा 10 मि.मी. से कम होने पर शुष्क। ऊपर दिए गए आर्द्रता के वर्गीकरण के आधार पर सुब्रह्मण्यम और शिवराम कृष्णैया ने भारत में पाँच जैव-जलवायुविक मंडल निर्धारित किए हैं। ग्रीष्म ऋतु और शीत ऋतु, के लिए ये मंडल अलग-अलग हैं। इनके नाम हैं (i) पीड़ादायक (discomfortable); (ii) कष्टकर (uncomfortable); (iii) कम सुखद ; (iv) सुखद ; (v) अत्यधिक सुखद क्षेत्र।

ग्रीष्म ऋतु में देश के पीड़ादायक क्षेत्र हैं : पूर्वी तटीय मैदान, और पश्चिमी तथा उत्तर-पश्चिमी भारत। कष्टकर क्षेत्र हैं : महाराष्ट्र का पठार, मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश और बिहार के कुछ भाग, तथा लद्दाख। कम सुखद क्षेत्र हैं : भारत का पश्चिमी तट, प्रायद्वीप का उत्तर-पश्चिमी भाग तथा गढ़वाल हिमालयी क्षेत्र। सुखद क्षेत्र हैं : मध्य-मेघालय, गढ़वाल हिमालय के कुछ भाग, तथा पश्चिमी घाट के ऊँचे क्षेत्र। अत्यधिक सुखद क्षेत्र हैं : कर्नाटक में बंगलौर और मैसूर के आस-पास का आंतरिक क्षेत्र तथा पश्चिमी घाट के पूर्वी ढलानों पर पुणे-कोल्हापुर का क्षेत्र।

शीत ऋतु में उत्तरांचल, हिमाचल प्रदेश, तथा जम्मू और कश्मीर पीड़ादायक हो जाते हैं। राजस्थान से लेकर बिहार तक विस्तृत सम्पूर्ण उत्तर-भारत तथा मध्य प्रदेश के उत्तरी भाग कष्टकर होते हैं। देश के कम सुखद क्षेत्र हैं : उत्तर-पूर्वी भारत तथा प्रायद्वीप के उत्तर-पूर्वी पठार। सुखद क्षेत्र हैं : भारत के पूर्वी तटीय मैदान, केरल, महाराष्ट्र और गुजरात के कुछ भाग। अत्यधिक सुखद क्षेत्र हैं : कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु के आंतरिक भाग।

भू-मंडलीय तापन का प्रभाव

प्राचीन काल में जलवायु में परिवर्तन हुआ है। इसमें आज भी परिवर्तन हो रहे हैं। भारत में जलवायु परिवर्तन के अनेक ऐतिहासिक और भू-वैज्ञानिक प्रमाण मिलते हैं। इस परिवर्तन के लिए अनेक प्राकृतिक एवं मानवकृत कारक उत्तरदायी हैं। ऐसा कहा जाता है कि भू-मंडलीय तापन के प्रभाव से ध्रुवीय व हिम की चादरें और पर्वतीय हिमानियाँ पिघल जाएंगी। इसके परिणामस्वरूप समुद्रों में जल की मात्रा बढ़ जाएगी।

आजकल संसार के तापमान में काफी वृद्धि हो रही है। मानवीय क्रियाओं द्वारा उत्पन्न कार्बनडाइऑक्साइड की वृद्धि चिंता का प्रमुख कारण है। जीवश्म ईंधनों के जलने से वायुमंडल में इस गैस की मात्रा क्रमशः बढ़ रही है। कुछ अन्य गैसें जैसे : मीथेन, क्लोरो-फल्यूरो-कार्बन, ओजोन, और नाइट्रस ऑक्साइड, वायुमंडल में अल्प मात्रा में विद्यमान हैं। इन्हें तथा कार्बनडाइऑक्साइड को हरितगृह गैसें कहते हैं। कार्बनडाइऑक्साइड की तुलना में अन्य चार गैसें दीर्घ तरंगी विकिरण का ज्यादा अच्छी तरह से अवशोषण करती हैं, इसीलिए हरितगृह प्रभाव को बढ़ाने में उनका अधिक योगदान है। इन्हीं के प्रभाव से पृथ्वी का तापमान बढ़ रहा है।

विगत 150 वर्षों में पृथ्वी की सतह का औसत वार्षिक तापमान बढ़ा है। ऐसा अनुमान है कि सन् 2100 में भू-मंडलीय तापमान में लगभग 2^0 सेल्सियस की वृद्धि हो जाएगी। तापमान की इस वृद्धि से कई अन्य परिवर्तन भी होंगे। इनमें से एक है गरमी के करण हिमानियों और समुद्री बरफ के पिघलने से समुद्र तल का ऊँचा होना। प्रचलित पूर्वानुमान के अनुसार औसत समुद्र तल 21 वीं शताब्दी के अंत तक 48 से.मी. ऊँचा हो जाएगा। इसके कारण प्राकृतिक बाढ़ों की संख्या बढ़ जाएगी। जलवायु परिवर्तन से कीटजन्य मलेरिया जैसी बीमारियाँ बढ़ जाएंगी। साथ ही वर्तमान जलवायु सीमाएँ भी बदल जाएंगी, जिसके कारण कुछ भाग अधिक जलसिक्त (Wet) और अधिक शुष्क हो जाएंगे। कृषीय प्रतिरूपों के स्थान बदल जाएंगे। जनसंख्या और परितंत्र में भी परिवर्तन होंगे। जरा सोचिए, यदि आज का समुद्र तल 50 से.मी. ऊँचा हो जाए, तो भारत के तटवर्ती क्षेत्रों पर क्या प्रभाव पड़ेगा?

अभ्यास

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित के उत्तर संक्षेप में दीजिए :
   - (i) मानसून शब्द से क्या तात्पर्य है ?
   - (ii) भारतीय मानसून के विकास में सहायक दो कारकों के नाम बताइए।
   - (iii) भारतीय जलवायु की दो मुख्य ऋतुओं के नाम बताइए।
   - (iv) महीनों के नाम के साथ भारत की संक्रांति काल की ऋतुओं के नाम बताइए।
   - (v) जेट वायुधारा किसे कहते हैं ?
   - (vi) मानसून में 'विच्छेद' किसे कहते हैं ?
   - (vii) गंगा के मैदान में दक्षिण-पश्चिमी मानसून से होने वाली वर्षा पश्चिम की ओर क्यों घट जाती है ?
   - (viii) असम और बंगाल की तड़ित झंझाओं के स्थानीय नाम बताइए।
   - (ix) पीछे हटते मानसून की ऋतु में केरल में पवनों की कौन-सी दिशा होती है ?
   - (x) गरमी की लहर और शीत लहर किसे कहते हैं ?
   - (xi) वर्षा की परिवर्तिता की गणना के लिए किस सूत्र का उपयोग किया जाता है ?
   - (xii) भारत में ध्रुवीय प्रकार की जलवायु कहाँ पाई जाती है ?
   - (xiii) शीत ऋतु में भारत के अत्यधिक सुखद क्षेत्रों के नाम बताइए।
   - (xiv) भारत के अति आर्द्र जलवायु वाले क्षेत्रों के नाम लिखिए।
   - (xv) मानसूनी वर्षा की चार विशेषताएँ बताइए।
   - (xvi) आम्र वृष्टि किसे कहते हैं ?

2. कारण बताइए :
   - *(i) उत्तर-पश्चिम भारत में शीत ऋतु में भी वर्षा होती है।*
   - (ii) ग्रीष्म ऋतु की तुलना में तमिलनाडु में शीत ऋतु में अधिक वर्षा होती है।
   - (iii) पश्चिमी राजस्थान में बहुत थोड़ी वर्षा होती है।
   - (iv) शीत ऋतु में भारत के उत्तर-पश्चिमी भाग में उच्च वायु दाब का केंद्र बन जाता है।
   - (v) दक्षिण-पश्चिम मानसून की ऋतु में गंगा की घाटी में पवनें प्रायः पूर्व से पश्चिम की ओर चलती हैं।
   - (vi) मॉसिनराम और चेरापूंजी में भारी वर्षा होती है।
   - (vii) मुंबई की अपेक्षा दिल्ली का तापान्तर अधिक है।

3. नीचे दिए गए स्तंभों से सही जोड़े बनाइए :

जलवायु / मौसम	*प्रदेश*
(क) 25 प्रतिशत से कम वर्षा परिवर्तिता	(i) मध्य मेघालय
(ख) शुष्क ग्रीष्म ऋतु वाली मानसूनी प्रकार (As)	(ii) पश्चिमी-मध्य प्रदेश
(ग) शुष्क उप-आर्द्र	(iii) उत्तर प्रदेश
(घ) ग्रीष्म ऋतु में सुखद क्षेत्र	(iv) गंगा का मैदान
(ङ.) 50 और 100 से.मी. के बीच वार्षिक वर्षा	(v) गंगा का पूवी मैदान
(च) गरमी की लहर	(vi) तमिलनाडु का कोरोमंडल तट

4. भारत की ग्रीष्म और शीत ऋतुओं में तापमान के वितरण का वर्णन कीजिए।
5. "भारतीय किसान के लिए मानसून जुआ है" व्याख्या कीजिए।
6. भारत में वर्षा के वितरण के प्रतिरूपों का वर्णन कीजिए।

7. भारत की शीत ऋतु के प्रमुख लक्षणों का वर्णन कीजिए।
8. भारतीय मानसून के आगमन और निवर्तन (पीछे हटना) के अर्थ स्पष्ट कीजिए।

परियोजना कार्य

1. भारत के रेखा मानचित्र में निम्नलिखित को दिखाइए :
   (क) शीतकालीन वर्षा के क्षेत्र
   (ख) ग्रीष्म ऋतु में तड़ित झंझा के क्षेत्र
   (ग) शीतऋतु में पवनों की दिशा
   (घ) वर्षा की 50 प्रतिशत परिवर्तिता वाले क्षेत्र
   (ङ.) 200 से.मी. से अधिक वर्षा वाले क्षेत्र।

2. (i) नीचे दिए गए आंकड़ों के आधार पर तिरुवनन्तपुरम, दिल्ली और जोधपुर की वर्षा और तापमान के आरेख बनाइए।

स्थान	ज.	फ.	मा.	अ.	म.	जू.	जु.	अ.	सि.	अ.	न.	दि.
तिरुवनन्तपुरम												
औसत अधिकतम ता.से.अंश	31.3	31.7	31.4	32.3	31.9	29.5	29.2	29.1	29.7	30.0	30.1	30.7
औसत न्यूनतम ता.से.अंश	22.2	22.9	24.2	25.1	25.3	23.7	23.3	23.3	23.3	23.4	23.1	22.4
वर्षा मि.मी.	22.9	20.8	38.6	105.7	207.8	356.4	223.0	145.5	137.9	273.3	20.5	64.7
दिल्ली												
औसत अधिकतम ता.से.अंश	21.1	24.3	30.6	37.1	41.2	40.2	35.1	33.6	33.7	33.3	28.8	23.1
औसत न्यूनतम से.अंश	7.3	9.4	14.8	21.4	26.7	28.7	26.9	26.1	24.3	18.5	11.4	6.8
वर्षा मि.मी.	20.8	23.6	12.9	9.7	9.7	67.6	186.2	169.9	134.9	14.2	2.0	8.6
जोधपुर												
औसत अधिकतम ता.से.अंश	24.5	27.1	32.7	37.7	40.9	39.8	35.9	33.1	34.5	35.4	31.0	26.2
न्यूनतम औसत ता.से.अंश	9.2	11.4	16.5	21.8	26.6	28.1	26.7	25.0	23.8	18.7	13.2	10.2
वर्षा मि.मी.	5.1	6.1	2.8	3.3	9.7	30.7	108.2	131.3	57.4	7.6	1.8	2.00

संकेत – ता.: तापमान, से. : सेल्सियस, मि.मी. : मिलीमीटर

(ii) इन स्थानों के तापमान और वर्षा के वितरण की एक-दूसरे से तुलना कीजिए।

5
अध्याय

प्राकृतिक वनस्पति

पौधों के समूह को वनस्पति कहते हैं। प्राकृतिक वनस्पति में केवल वे पौधे ही सम्मिलित किए जाते हैं, जो मानव की सहायता के बिना जंगली अवस्था में उगते हैं। अपनी संरचना और पदार्थों में परिवर्तन करके ऐसे पौधे अपने आपको प्राकृतिक पर्यावरण के अनुकूल बना लेते हैं। इस प्रकार फसलें और फलों के बाग वनस्पति के सामान्य वर्ग में शामिल किए जाते हैं, लेकिन वे प्राकृतिक वनस्पति का अंग नहीं होते। ऐसे पौधे प्राकृतिक वनस्पति का भी अंग हो सकते हैं, यदि वे मानव के हस्तक्षेप के बिना ही उगें। विभिन्न पर्यावरणीय एवं पारितंत्रीय परिवेश में जो कुछ भी प्राकृतिक रूप में उगता है, उसे प्राकृतिक वनस्पति कहते हैं। मानव के फसलों के उगाने और पशुओं को पालने से पूर्व संपूर्ण पृथ्वी पर प्राकृतिक वनस्पति का आवरण था। यदि हम 25 वर्षों के लिए पृथ्वी को अकेला छोड़ें, तो यह पुनः प्राकृतिक वनस्पति से भरपूर हो जाएगी।

प्राकृतिक वनस्पति पौधों का वह समुदाय है, जिसमें लंबे समय तक किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं हुआ है। मानव के हस्तक्षेप से रहित प्राकृतिक वनस्पति के उस भाग को अक्षत वनस्पति कहते हैं। भारत में अक्षत वनस्पति हिमालय, थार मरुस्थल और सुंदरबन (बंगाल का डेल्टा) के अगम्य क्षेत्रों में पाई जाती है। दूसरे क्षेत्रों में वनस्पति में परिवर्तन हो गया है। इस परिवर्तन के कारण हैं : जनसंख्या वृद्धि, भूमि अधिग्रहण क्षेत्र का विस्तार तथा कृषि के लिए वनस्पति को साफ करके खेत बनाना। सम्राट अशोक ने सड़कों के किनारे वृक्ष लगवाए थे तथा मुगलों ने फलदार वृक्षों के विशिष्ट बाग लगवाए थे। लोगों ने जंगली दशा में उगने वाली घासों, झाड़ियों और वृक्षों की मूल प्रजातियों से सैकड़ों फसलें विकसित की थीं। मूल जातियों में से आज भी अनेक पेड़-पौधे उसी रूप में पाए जाते हैं जैसे : कीकर, पीपल, बेर और ढाक।

जैसाकि पहले कहा जा चुका है कि प्राकृतिक वनस्पति अपने आपको भौतिक पर्यावरण, ऊँचाई, मौसम, जलवायु आदि के अनुकूल बना लेती है। इसलिए प्राकृतिक वनस्पति में बहुत भिन्नता पाई जाती है। पर्वतों पर लंबे और छोटी पत्तियों वाले वृक्षों के वन, कोष्ण जलवायु में चौड़ी पत्ती वाले वृक्षों के वन, मरुस्थलों में झाड़ियाँ और कांटेदार वृक्षों वाले वन, और दलदली भूमि में गरान (मैंग्रोव) वन पाए जाते हैं।

भारत में बहुत प्राकृतिक विषमता है। अतः यहाँ की प्राकृतिक वनस्पति में भी बहुत विविधता पाई जाती है। हिमालय की ऊँचाई पर शीतोष्ण वनस्पति दिखाई पड़ती है तथा पश्चिमी घाट पर उष्ण कटिबंधीय हरे-भरे वन पाए जाते हैं। डेल्टाई प्रदेशों में उष्ण कटिबंधीय वन और गरान मिलते हैं, राजस्थान के मरुस्थली और अर्ध-मरुस्थली भाग खेजड़ी वृक्षों, झाड़ियों और कांटेदार वृक्षों के लिए प्रसिद्ध हैं। जलवायु की परिवर्तिता, विशेषरूप से वर्षा की मात्रा में अंतर होने के कारण देश के अन्य भागों में विभिन्न प्रकार के वन पाए जाते हैं। वनस्पति उष्ण कटिबंधीय से उपोष्ण कटिबंधीय में तथा अंत में हिमालय के ढालों पर अल्पाइन प्रकार में बदल जाती है। इसी प्रकार पश्चिमी घाट और नीलगिरि पर वनस्पति में परिवर्तन आ जाता है। पूर्वी और पश्चिमी हिमालय, पश्चिमी घाट के पूर्वी और पश्चिमी ढलानों तथा भारत के उत्तर-पश्चिमी मैदानों और गंगा के मध्यवर्ती और निचले मैदानों में भी वर्षा की मात्रा के परिवर्तन के साथ ही वनस्पति का स्वरूप भी बदल जाता है।

वनस्पति के प्रकार

विभिन्न विद्वानों, संस्थाओं और संगठनों ने भारत की वनस्पति का वर्गीकरण किया है, लेकिन एच.जी. चैंपियनकृत वर्गीकरण सबसे अधिक लोकप्रिय और बहुमान्य है। सन् 1936 में चैंपियन ने वृहत्तर भारत के लिए अपने वर्गीकरण की योजना विकसित की थी। सन् 1968 में चैंपियन और सेठ ने स्वतंत्र भारत के लिए इसे पुनः प्रकाशित किया है। यह वर्गीकरण पौधों की संरचना, आकृति विज्ञान और

पादपी स्वरूप पर आधारित है। सर्वप्रथम वनों को 16 मुख्य वर्गों में विभाजित किया गया है, फिर इन्हें 221 उप-वर्गों में बाँटा गया है। 16 प्रकारों को पुनः निम्नलिखित 6 वर्गों में समूहित किया गया है (चित्र 5.1) :

1. उष्ण कटिबंधीय सदाहरित वन
2. उष्ण कटिबंधीय शुष्क पर्णपाती वन
3. अर्ध-मरुस्थलीय वन और मरुस्थलीय वनस्पति (कांटेदार वन)
4. ज्वारीय अथवा डेल्टाई वन
5. पर्वतीय वनस्पति
6. घासें

उष्ण कटिबंधीय सदाहरित वन : इन्हें वर्षा वन भी कहते हैं। ये वन तीन प्रकार के हैं : आर्द्र-सदाहरित, अर्ध-सदाहरित तथा आर्द्र-पर्णपाती वन। ये वन भारत के कुल वन क्षेत्र के 49 प्रतिशत भाग पर फैले हैं। ये वन सामान्यतः वहीं पाए जाते है, जहाँ वर्षा 130 और 250 से.मी. के बीच होती है तथा तापमान 22^0 से लेकर 27^0 से. तक रहता है।

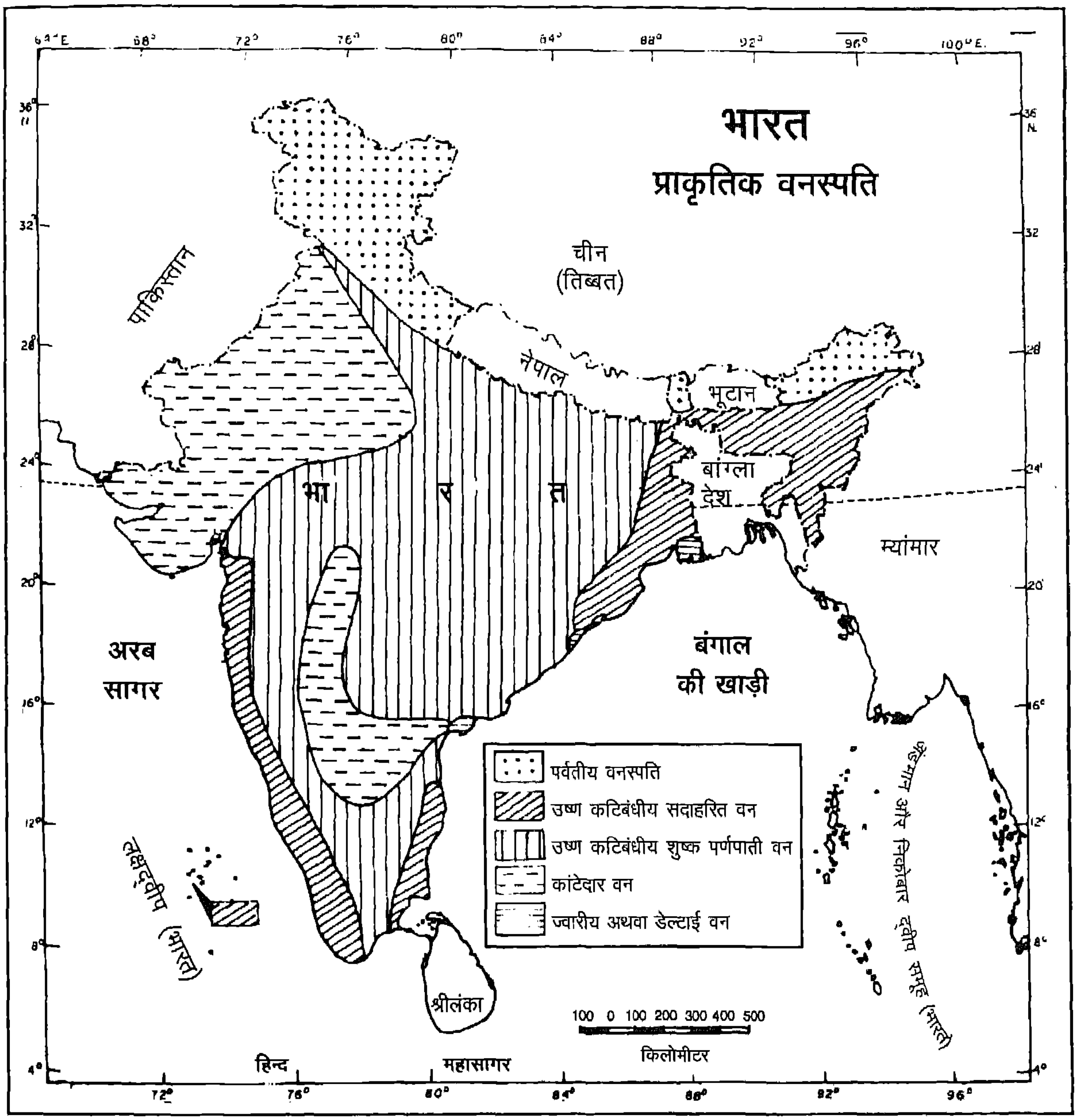
उष्ण कटिबंधीय सदाहरित वनों के मुख्य क्षेत्र ये हैं : पश्चिमी घाट, प्रायद्वीपीय भारत के अरब सागर के तट के साथ-साथ का क्षेत्र, भारत का उत्तर-पूर्वी प्रदेश, तथा अंडमान और निकोबार द्वीप समूह। इन वनों के कुछ छोटे-छोटे अवशिष्ट क्षेत्र उड़ीसा में भी मिलते हैं। मानवीय हस्तक्षेप के कारण सदाहरित वनों की तुलना में अर्ध-सदाहरित वनों का विस्तार अधिक है। आर्द्र पर्णपाती प्रकार के वन मध्य प्रदेश, केरल, तमिलनाडु के दक्षिणी कोयंबतूर क्षेत्र, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, बिहार, पश्चिम बंगाल और असम में भली-भाँति उगते हैं।

वर्षा वनों के तीनों प्रकारों के वनस्पतिजात और प्राणिजात में काफी अंतर पाया जाता है। पश्चिमी-घाट के पश्चिमी ढलानों पर ये वन बहुत घने हैं। लेकन पूर्वी ढाल वृष्टि छाया प्रदेश में आते हैं। इन वनों में व्यापारिक महत्त्व के वृक्षों की अनेक प्रजातियाँ मिलती हैं। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं: भारतीय रोजवुड, (डलबर्गिया लैटीफोलिया) मलाबार कीनो, सागौन और टर्मिनालिया क्रेनुलटा। फसलों और रोपण कृषि के लिए उपयुक्त अनेक क्षेत्रों से ये वृक्ष काट दिए गए हैं। वर्षा वनों में वृक्षों की अनेक प्रजातियाँ पाई जाती हैं। दक्षिण-पश्चिमी भारत के सभी सदाहरित और अर्ध-सदाहरित वनों में नदियों, नालों और तालाबों के किनारे बांस के झुरमुट मिलते हैं।

उत्तर-पूर्वी भारत में उष्ण कटिबंधीय वनस्पति 900 मी. की ऊँचाई तक पाई जाती है। इनमें सदाहरित और अर्ध-सदाहरित वर्षा वन, आर्द्र-पर्णपाती मानसून वन, नदियों के किनारे के वन, दलदल और घास भूमि शामिल हैं। सदाहरित वर्षा वन असम घाटी, पूर्वी हिमालय की पाद पहाड़ियों, नागा पहाड़ियों के भागों, मेघालय, मिजोरम और मणिपुर में पाए जाते हैं। यहाँ वर्षा प्रतिवर्ष 200 से.मी. से अधिक होती है। असम घाटी में विशालकाय डिपटैरोकारपस, मैक्रोकारपस और साल (शोरिया असैमिका) एकाकी ही उगते हैं। कभी-कभी इनके तने का घेरा (girth) 7 मी. तक और ऊँचाई 50 मी. तक हो जाती है। साल वन अधिकतर आर्द्र-पर्णपाती प्रकार के होते हैं। अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में भी तीनों प्रकार अर्थात् उष्ण कटिबंधीय सदाहरित, उष्ण कटिबंधीय अर्ध-सदाहरित तथा उष्ण कटिबंधीय आर्द्र-पर्णपाती वन, पाए जाते हैं।

उष्ण कटिबंधीय शुष्क पर्णपाती वन : ये वन उन क्षेत्रों में पाए जाते हैं, जहाँ वर्ष में 60 से लेकर 120 से.मी. के बीच वर्षा होती है तथा नवंबर से मई तक एक लंबी शुष्क ऋतु होती है। 29^0 से 35^0 से. के मध्य अधिकतम तापमान वाले तथा 18^0 से 23^0 से. के मध्य न्यूनतम तापमान वाले क्षेत्रों में ये वन अच्छी तरह से उगते हैं। इन वन क्षेत्रों में ग्रीष्म ऋतुओं में काफी गरमी पड़ती है तथा तापमान 48^0 से. तक पहुँच जाता है। इन वनों में पेड़ 13 से 20 मी. तक ऊँचे बढ़ जाते हैं। इन वनों में वृक्षों की प्रजातियाँ कम हैं। प्रायः सागौन और एक्सल वुड (एनोजिसस) मिलते हैं।

वनों का यह प्रकार कुल वन क्षेत्र के 28.6 प्रतिशत भाग में पाया जाता है। इन वनों का विस्तार मुख्यतः गंगा के मैदान, भारतीय प्रायद्वीप के मध्यवर्ती भाग और तमिलनाडु में कोयंबतूर के पठार पर है। इन वनों के मुख्य वृक्ष हैं : सागौन (टैक्टोना ग्रांडिस), इमली, अमलतास (कैसिया) खैर और बांस। प्रायद्वीपीय पठार के अधिक वर्षा वाले प्रदेशों और उत्तरी भारत के मैदान में ये वन पार्क-भूमि जैसे लगते हैं। खुले मैदान में सागौन तथा अन्य वृक्ष सामान्य रूप में उगते हैं। इन वृक्षों के बीच-बीच में घास के छोटे-छोटे मैदान होते हैं। शुष्क ऋतु के आगमन के



भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र मे भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
आन्तरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 5.1 *भारत : प्राकृतिक वनस्पति*

साथ ही ये वृक्ष अपनी सारी पत्तियाँ गिरा देते हैं। इस समय ये वन विस्तृत घास भूमि की तरह दिखाई पड़ते हैं, जिसमें चारों ओर पत्ते-विहीन वृक्ष होते हैं। पश्चिम की ओर ये वन शुष्क कांटेदार वनों में विलीन हो जाते हैं। नमी वाले क्षेत्रों में विशेषरूप से नदियों के निकट पीपल खूब फूलता-फलता है। इन वनों का एक अन्य सुंदर वृक्ष सेमल है। सेमल (बौम्बक्सीबा) की रूई कोमल और रेशमी होती है।

अर्ध-मरुस्थलीय वन तथा मरुस्थलीय वनस्पति (कांटेदार वन): ये वन घासभूमि और झाड़ियों के मिश्रण हैं। ये वन 30 से 60 से.मी. वर्षा वाले तथा 8 से 11 महीने

की शुष्क ऋतु वाले क्षेत्रों में पाए जाते हैं। यहाँ की भूमि समतल और मृदा सामान्यतः उपजाऊ है। इसीलिए इन वनों के अधिकतर भागों को साफ करके मनुष्य ने खेती करनी शुरू कर दी थी। यह विशेषरूप से वहीं संभव हुआ जहाँ सिंचाई के साधन उपलब्ध थे। पूर्वी-राजस्थान, दक्षिण-पश्चिमी पंजाब, पश्चिमी हरियाणा, मध्य प्रदेश के बुंदेलखंड, उत्तर प्रदेश, दक्षिणी-कर्नाटक और आंध्र प्रदेश में इस प्रकार की वनस्पति पाई जाती है। उष्ण कटिबंधीय अर्ध-मरुस्थलीय वनस्पति, उष्ण कटिबंधीय कांटेदार वनस्पति में विलीन हो जाती है। यहाँ वनस्पति विरल है। इन बौने वनों में वृक्ष और झाड़ियाँ दूर-दूर उगे होते हैं। इनमें ऐकेशिया तथा यूफोर्बिया बहुतायत से पाए जाते हैं। घाटियों में जंगली खजूर के पेड़ उगते हैं। नदियों के किनारे और टीलों पर खैर (ऐकेशिया कैच्यू) शीशम, पीपल (फाइकस रिलीजियोसा) और बबूल (एकेशिया अरेबिका) के वृक्ष मिलते हैं। अरावली की श्रेणियों में खरधई (एनोजैविसस पेंडुला), बेर (जिजिफस मौरीटियानिया) और ढाक के वृक्षों की बहुतायत है। आज की अपेक्षा प्राचीन काल में थार मरुस्थल का अधिक भाग वनों से ढका था। कम वर्षा और अति चराई ने इसे रेगिस्तान बना दिया है। यहाँ घास के झुंड कहीं-कहीं 2 मी. ऊँचे तक बढ़ जाते हैं। वर्षा ऋतु का आगमन तूफानों (अल्पकालिक झंझा) के साथ होता है। इससे मृदा को बहुत हानि होती है। गरम हवाएँ भी वृक्षों और झाड़ियों की वृद्धि को प्रभावित करती हैं। कोपलों की सुरक्षा के लिए घासों में मोटी पत्तियों का गुच्छा सा उग आता है। इनकी जड़ों में बारीक शाखाएँ होती हैं। शुष्क ऋतु में पत्ते-विहीन होकर वृक्ष वाष्पोत्सर्जन की मात्रा को कम कर लेते हैं। इनकी मूसला जड़ें होती हैं। इन वनों की शाखाएँ छोटी-छोटी तथा ऊँचाई केवल 15 मी. तक ही होती है। इन वृक्षों की छाल मोटी और मुड़ी हुई आकृति की होती है।

ज्वारीय अथवा डेल्टाई वन : भारत विविध प्रकार की आर्द्र भूमियों में सपन्न है, इसमें विविध प्रकार के वन्य-जीव और पेड़-पौधे पाए जाते हैं। भूमि के 70 प्रतिशत भाग में धान की खेती होती है। आर्द्र भूमि का कुल क्षेत्रफल 3,904,543 हैक्टेयर है। अंतर्राष्ट्रीय महत्त्व के आर्द्र भूमि सम्मेलन (रामसर सम्मेलन) के अंतर्गत चिल्का झील (उड़ीसा) तथा केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान (भरतपुर) की दो आर्द्र भूमियाँ, अनेक संरक्षित जलपांखियों के उल्लेखनीय आवास हैं। संयुक्त राष्ट्र के सदस्य देशों के बीच किया गया समझौता ही अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन है। प्रदेशानुसार देश की आर्द्र भूमियों के 8 वर्ग हैं : (i) दक्षिण में दक्कन के पठार के जलाशय। इसमें लैगून और दक्षिण-पश्चिमी तट की आर्द्र भूमियाँ भी शामिल हैं; (ii) राजस्थान, गुजरात और कच्छ की खाड़ी के विस्तृत खारी जलाशय; (iii) गुजरात के पूर्व में राजस्थान (केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान) से होकर मध्य प्रदेश तक की अलवणजल की झीलें और अन्य जलाशय; (iv) भारत के पूर्वी तट की डेल्टाई आर्द्र भूमियाँ और लैगून (चिल्का झील); (v) गंगा के मैदान की अलषण जल की दलदलें; (vi) ब्रह्मपुत्र के बाढ़ के मैदान, उत्तरी-पूर्वी भारत की पहाड़ियाँ तथा हिमालय की पाद पहाड़ियों की दलदलें; (vii) कश्मीर और लद्दाख के पर्वतीय प्रदेश की नदियाँ और झीलें; (viii) अंडमान और निकोबार द्वीप समूह के गरान (मैंग्रोव) तथा अन्य आर्द्र भूमियाँ। गरान (मैंग्रोव) वनों को भी इसी वर्ग में सम्मिलित किया जाता है। ये वन समुद्र तट पर स्थित खारी दलदलों, ज्वारीय निवेशिकाओं, संकरी खाड़ियों, पंक मैदानों और ज्वारनदमुखों में उगते हैं। इन वनों में अनेक लवण-सह पौधों की प्रजातियाँ पाई जाती हैं। निवेशिकाओं के जाल के स्थिर जल और ज्वारीय प्रवाह में विविध प्रकार के अनेक पक्षियों को आश्रय मिलता है।

भारत में गरान वन 6,740 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में फैले हैं। यह संसार के कुल गरान वन क्षेत्र का 7 प्रतिशत है। अंडमान और निकोबार द्वीप समूह और पश्चिम बंगाल के सुंदरबन में इनका बहुत अच्छा विकास हुआ है। इन वनों के अन्य उल्लेखनीय क्षेत्र हैं : महानदी, गोदावरी और कृष्णा नदियों के डेल्टा प्रदेश। इन वनो पर मानवीय क्रिया-कलापों के कारण विनाश का खतरा मंडरा रहा है। इसलिए इनका संरक्षण अत्यावश्यक है।

पर्वतीय वनस्पति : पर्वतीय प्रदेश में पाई जाने वाली यह वनस्पति दो प्रकार की है : हिमालयी और प्रायद्वीपीय वनस्पति।

हिमालयी पर्वतीय वनस्पति : ऊँचाई और वर्षा की मात्रा के आधार पर हिमालयी वनस्पति को चार वर्गों में विभाजित किया गया है। ये वर्ग हैं : उष्ण कटिबंधीय, उपोष्ण कटिबंधीय, शीतोष्ण कटिबंधीय और अल्पाइन। उच्चावच में स्थानीय विभिन्नताओं, जलवायु, सूर्य के

प्रकाश की ओर रूख तथा पवनें, प्रत्येक क्षेत्र की वनस्पति के संघटन में उल्लेखनीय परिवर्तन कर देती हैं।

उष्ण कटिबंधीय सदाहरित पर्वतीय वर्षा वन पूर्वी और मध्य हिमालय की आर्द्र पाद-पहाड़ियों तक ही सीमित हैं। ये वन 1,500 मी. की ऊँचाई तक पाए जाते हैं। इन वनों में इमारती लकड़ी वाले तथा राल (रेजिन) उत्पादक वृक्ष पाए जाते हैं। नागकेसर के वृक्ष (आयरन वुड) 1,200 से लेकर 1,300 मी. तक की ऊँचाई पर सरंध्र मृदा में खूब उगते हैं। बांस तीव्र ढालों पर पाए जाते हैं। अरुणाचल प्रदेश से लेकर पश्चिम की ओर मध्य नेपाल तक 1,200 से 1,300 मी. ऊँचाई पर बलुहा पत्थर पर विकसित अधकचरी मिट्टी (लिथोसोल) पर बांज (ओक) और पांगर (चेस्टनट) के वृक्ष उगते हैं। भिदुर (आल्डर) के वृक्ष अपेक्षाकृत अधिक तीव्र ढालों पर नदी-नालों के किनारे पाए जाते हैं। इन वृक्षों के अलावा लगभग 4,000 प्रजातियों के पुष्पी पादप भी यहाँ उगते है। इनमें से 20 प्रकार के ताड़ हैं। ये वन नेपाल, उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश की तराई के आर्द्र प्रदेश में पाए जाते हैं। ये वन उन प्रदेशों में उगते हैं, जहाँ साल में 100 से लेकर 150 से.मी. तक वर्षा होती है, तापमान 26^0 और 27^0 से. के मध्य रहता है तथा आर्द्रता 60 प्रतिशत रहती है। छोटे-बड़े पर्णपाती वृक्ष इन वनों का विशिष्ट लक्षण है। ये अपेक्षाकृत अधिक ऊँचाई पर उगते हैं। अपेक्षाकृत कम ऊँचाई वाले प्रदेशों में वृक्षों के बीच-बीच में बांस के झुरमुट, लताएँ, बेंत और सदाहरित झाड़ियाँ उगती हैं। मुख्य वृक्ष हैं : साल, बेर, गूलर, झिंगल, पलाश (ढाक), महुआ, सेमल, आंवला, जामुन आदि।

पश्चिम की ओर घटती वर्षा और बढ़ती ऊँचाई के कारण वर्षा वनों का स्थान उष्ण कटिबंधीय पर्णपाती वन ले लेते हैं। कीमती इमारती लकड़ी वाला साल इन वनों का मुख्य वृक्ष है। 920 मी. की ऊँचाई वाले क्षेत्रों में आर्द्र साल के उगने की आदर्श दशाएँ पाई जाती हैं। लेकिन 1,370 मी. की ऊँचाई तक भी शुष्क साल उगता है।

1,500 से लेकर 3,500 मी. की ऊँचाई तक शीतोष्ण कटिबंधीय वन पाए जाते हैं। इनमें शंकुधारी तथा शीतोष्ण कटिबंधीय चौड़ी पत्ती वाले वृक्ष उगते हैं। बांज और शंकुधारी वृक्षों के सदाहरित वन लघु हिमालय की मुख्य विशेषता है। कश्मीर में पीरपंजाल की श्रेणी के बाह्य ढालों पर इन्हें विशेषरूप से देखा जा सकता है। 920 से लेकर 1,640 मी. की ऊँचाई तक चीड़ (पाइनस राक्सबर्घी) प्रमुख वृक्ष हैं। आंतरिक घाटियों में वृक्षों की ये प्रजातियाँ 800 मी. की ऊँचाई पर भी मिलती हैं। देवदार (सीडर) एक अत्यंत मूल्यवान स्थानीय प्रजाति का वृक्ष है। यह मुख्य रूप से हिमालय की श्रेणी के पश्चिमी भाग में उगता है। देवदार के पेड़ 2,700 मी. की ऊँचाई पर पाए जाते हैं। सतलुज और गंगा नदी की घाटियों में ये वृक्ष और भी अधिक ऊँचाई पर उगते हैं। नीला चीड़ और स्प्रूस 2,225 मी. से 3,048 मी. की ऊँचाई तक भी उगते हैं।

अल्पाइन क्षेत्र वृक्ष-सीमा के उपर से शुरू होता है। इसका विस्तार 3,200 तथा 3,500 मी. की ऊँचाई के मध्य है। अल्पाइन क्षेत्र पश्चिमी हिमालय में 3,900 मी. तथा पूर्वी हिमालय में 4,450 मी. की ऊँचाई तक विस्तृत है। इस क्षेत्र में आर्द्र अल्पाइन वनस्पति पाई जाती है। नंगा पर्वत के धूपवाले, तीव्र तथा चट्टानी ढालों पर और सूखे क्षेत्रों में जूनिपर नामक वृक्ष बहुतायत में पाए जाते हैं। यह 3,880 मी. की ऊँचाई पर भी पाया जाता है। बुरुंश सर्वत्र पाया जाता है, लेकिन पूर्वी हिमालय के आर्द क्षेत्रों में यह बहुतायत से उगता है। यहाँ यह पेड़ से होकर छोटी झाड़ी जैसे सभी आकारों में उगता है। इसी ऊँचाई पर पाए जाने वाले अन्य वृक्ष हैं : भोजपत्र और हनी सकल। कम ऊँचाई के छाया वाले क्षेत्रों में जहाँ आर्द्रता अधिक होती है, काई और शैवाल (लाइकेन) उगते हैं। हिमाद्रि (बृहतहिमालय) के ऊँचे भागों में अल्पाइन वनस्पति पाई जाती है। एवरेस्ट पर्वत और नंगा पर्वत पर हिमरेखा के ठीक नीचे अल्पाइन वनस्पति मिलती है। इस वनस्पति में झाड़ियाँ, बुरूंश, काई, शैक और वन्यफूल सम्मिलित हैं। वृहत् हिमालय के ऊँचे क्षेत्रों में रहने वाले लोग अल्पाइन वनस्पति क्षेत्र का उपयोग ग्रीष्म ऋतु में भेड़ों को चराने के लिए करते हैं।

प्रायद्वीपीय पर्वतीय वनस्पति : प्रायद्वीपीय क्षेत्र में पर्वतीय वनस्पति के तीन विशिष्ट क्षेत्र पश्चिमी घाट, विंध्याचल और नीलगिरी हैं। अयनमंडल में (उष्ण कटिबंध) होने तथा मात्र 1,500 मी. की ऊँचाई होने के कारण ऊँचे ढलानों पर शीतोष्ण कटिबंधीय वनस्पति पाई जाती है। केरल, कर्नाटक और तमिलनाडु में सहष्णाद्रि के कम ऊँचाई वाले ढलानों पर उपोष्ण कटिबंधीय वनस्पति मिलती है। नीलगिरि, अनैमलाई और पलनी पहाड़ियों पर शीतोष्ण कटिबंधीय वनों को शोला कहते हैं। इस वन के तेल और औषधियों के लिए उपयोगी अन्य वृक्ष हैं : मैग्नोलिया,

लारेल, यूकेलिप्टस, सिनकोना और ठांठर (वाटल)। सतपुड़ा और मैकाल पर्वत श्रेणियों पर भी ऐसे वन पाए जाते हैं।

घासें : बारहमासी घासों की 60 प्रजातियाँ हैं। इनसे मिलकर ही हमारा पारितंत्र बना है, जो हमारे पशुधन के जीवन का आधार है। वास्तविक चरागाह और घास भूमियाँ लगभग 12.04 करोड़ हैक्टेयर क्षेत्र में विस्तीर्ण हैं। चराई के लिए अन्य भूमि, वृक्ष-फसलों और उद्यानों, बंजर भूमि तथा परती भूमि के रूप में हैं। जिनका क्षेत्रफल क्रमशः 37 लाख हैक्टेयर, 15 लाख हैक्टेयर और 23.3 लाख हैक्टेयर है। वनों के अपकर्ष (डिग्रेडेशन) और विनाश के परिणामस्वरूप ही चरागाह और घासभूमियाँ विकसित हुई हैं। कालांतर में चरागाह सवाना में बदल जाते हैं। हिमालय की अधिक ऊँचाइयों वाले उप-अल्पाइन और अल्पाइन क्षेत्रों में वास्तविक चरागाह पाए जाते हैं। भारत में घास के तीन पृथक आवरण हैं। उष्ण कटिबंधीय : यह मैदानों में पाया जाता है। उपोष्ण कटिबंधीय तथा शीतोष्ण कटिबंधीय घास भूमियाँ मुख्य रूप से हिमालय की पर्वत में ही पाई जाती हैं।

वन-नीति और वनों का संरक्षण

मनुष्यों और पशुओं की बढ़ती हुई संख्या का प्राकृतिक वनस्पति पर दुष्प्रभाव पड़ा है। जो क्षेत्र कभी वनों से ढके थे, आज अद्‌र्ध-मरुस्थल बन गए हैं। राजस्थान में भी कभी वन थे। पारिस्थितिक संतुलन के लिए वन अनिवार्य हैं। मानव का अस्तित्व और विकास पारिस्थितिक संतुलन पर निर्भर है। संतुलित पारितंत्र और स्वस्थ पर्यावरण के लिए भारत के कम से कम एक तिहाई भाग पर वन होने चाहिए। दुर्भाग्य से हमारे देश के एक चौथाई भाग पर भी वन नहीं हैं। इसीलिए वन संसाधनों के संरक्षण और प्रबंधन के लिए एक नीति की आवश्यकता है।

भारत की पहली वन नीति सन् 1952 में लागू की गई थी। लोगों की स्थानीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए और जन-जातियों के विकास के लिए टिकाऊ वन प्रबंधन पर बल दिया गया था। जन-जातियों की आजीविका वनों के सहारे ही चलती है।

सन् 1988 में नई राष्ट्रीय वन नीति, वनों के क्षेत्रफल में हो रही कमी को रोकने के लिए बनाई गई थी। इस नीति के अनुसार देश के 33 प्रतिशत भू-भाग को वनों के अंतर्गत लाना था। संसार के कुल भू-भाग का 27 प्रतिशत तथा भारत का लगभग 19 प्रतिशत भू-भाग वनों से ढका है। वन नीति में आगे कहा गया है कि पर्यावरण की स्थिरता कायम रखने का प्रयत्न किया जाएगा तथा जहां पारितंत्र का संतुलन विगड़ गया है, वहाँ पुनः वनारोपण किया

सामाजिक वानिकी

- 1976 के राष्ट्रीय कृषि आयोग ने पहले-पहल 'सामाजिक वानिकी' शब्दावली का प्रयोग किया था। इसका अर्थ है : ग्रामीण जनसंख्या के लिए जलावन, छोटी इमारती लकड़ी और छोटे-छोटे वन-उत्पादों की आपूर्ति करना।
- अनेक राज्य सरकारों ने सामाजिक वानिकी के महत्त्वाकांक्षी कार्यक्रम शुरू किए हैं। अधिकतर राज्यों में वन विभागों के अंतर्गत सामाजिक वानिकी के अलग से प्रकोष्ठ बनाए गए हैं।
- सामाजिक वानिकी के मुख्य रूप से तीन अंग हैं : कृषि वानिकी किसानों को अपनी भूमि पर वृक्षारोपण के लिए प्रोत्साहित करना; वन-भूखंड (वुडलाट्स) वन विभागों द्वारा लोगों की जरूरतों को पूरा करने के लिए, सड़कों के किनारे, नहर के तटों, तथा ऐसी अन्य सार्वजनिक भूमि पर वृक्षारोपण; सामुदायिक वन-भूखंड लोगों द्वारा स्वयं बराबरी की हिस्सेदारी के आधार पर भूमि पर वृक्षारोपण।
- सामाजिक वानिकी योजनाएँ असफल हो गई, क्योंकि इसमें उन निर्धन महिलाओं को शामिल नहीं किया गया, जिन्हें इससे अधिकतर फायदा होना था। यह योजना पुरुषोन्मुख हो गई। यही नहीं, यह कार्यक्रम लोगों की आधारभूत आवश्यकताओं को पूरा करने वाले कार्यक्रम के स्थान पर किसानों का धनोपार्जन कार्यक्रम बन गया।
- सामाजिक वानिकी कार्यक्रम के द्वारा उत्पादित लकड़ी ग्रामीण भारत के गरीबों को न मिलकर, नगरों और कारखानों में पहुँचने लगी है। इससे गाँवों में रोजगार के अवसर घटे हैं और अन्न-उत्पादन करने वाली भूमि पर पेड़ लग गए हैं। इससे अनिवासी भू-स्वामित्व को बढ़ावा मिला है।

जाएगा। आनुवांशिक संसाधनों की जैव विविधता को देश की प्राकृतिक विरासत कहा जाता है। इस विरासत का संरक्षण, वन नीति का अन्य उद्देश्य है। इस नीति में मृदा-अपरदन, मरुभूमि के विस्तार तथा सूखे पर नियंत्रण का लक्ष्य भी निर्धारित किया गया है। इस नीति में जलाशयों में गाद के जमाव को रोकने के लिए बाढ़ नियंत्रण का भी प्रावधान है। नीति के और भी उद्देश्य हैं जैसे : अपरदित और अनुत्पादक भूमि पर सामाजिक वानिकी और वनरोपण द्वारा वनावरण में अभिवृद्धि, वनों की उत्पादकता बढ़ाना, ग्रामीण और जन-जातीय जनसंख्या के लिए इमारती लकड़ी, जलावन, चारा और भोजन जुटाना। यही नहीं इस नीति में महिलाओं को शामिल करके, व्यापक जनान्दोलन द्वारा वर्तमान वनों पर दबाव कम करने के लिए भी बल दिया गया है।

विगत वर्षों में संसद और राज्य विधानसभाओं में पारित अनेक कानूनों ने वनों के नियमित उपयोग, पेड़ काटने पर पाबंदी, तथा वन-भूमि के अतिक्रमण को रोकने पर बल दिया है। सन् 1980 में सुरक्षित वन क्षेत्रों के लिए एक 'वन संरक्षण अधिनियम' पारित किया गया था। सन् 1986 के पर्यावरण सुरक्षा अधिनियम के अंतर्गत केंद्र सरकार को पर्यावरण की गुणवत्ता में वृद्धि और प्रदूषण रोकने के लिए अधिकृत किया गया है। इन अधिनियमों से उत्पादक, सुरक्षित और सौंदर्यपूर्ण वनों की स्थापना में सहायता मिली है। यही नहीं, ये अधिनियम वनों की उत्तमता सुनिश्चित करने तथा औषधीय, औद्योगिक और स्थानीय उपयोग के लिए लकड़ी और वनोत्पादों की आपूर्ति बनाए रखने में भी सहायक हुए हैं।

भारत में वनावरण

राज्यों के रिकार्ड के अनुसार देश में कुलभूमि के 23.28 प्रतिशत भाग पर वन हैं। इसमें से 11.48 प्रतिशत भाग पर सघन वन और 7.76 प्रतिशत भाग पर खुले वन हैं। वन क्षेत्र और वास्तविक वनावरण में भी अंतर हैं। वनक्षेत्र वह क्षेत्र है, जिसे वन के रूप में अधिसूचित और अभिलिखित किया गया है। इसके विपरीत वास्तविक वनक्षेत्र वह क्षेत्र है, जिस पर सचमुच वन हैं। पहला अनुमान राजस्व बोर्ड के दस्तावेजों के अभिलेखों पर आधारित है। दूसरे अनुमान का आधार वायुफोटो और उपग्रह-चित्र हैं। 1999 में कुल वनक्षेत्र 23.28 प्रतिशत था, जबकि वास्तविक वनावरण केवल 19.39 प्रतिशत ही था। वनावरण में से 54.53 प्रतिशत सुरक्षित वन है तथा 29.18 प्रतिशत पर संरक्षित वन हैं।

विभिन्न राज्यों में वनक्षेत्र का प्रतिशत और वनावरण अलग-अलग हैं। लक्षद्वीप में किसी भी प्रकार का वन नहीं है, जबकि अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में वन क्षेत्र, कुल भूक्षेत्र का 86.93 प्रतिशत हैं। 10 प्रतिशत से कम वन क्षेत्र वाले राज्य देश के उत्तर-पश्चिम भाग में स्थित हैं। ये राज्य हैं : राजस्थान, गुजरात, पंजाब, हरियाणा और दिल्ली। गुजरात, राजस्थान और हरियाणा अर्ध-मरुस्थली क्षेत्र हैं। पंजाब और हरियाणा की अधिकतर भूमि पर खेती होती हैं। यहाँ के अधिकतर वन खेती के लिए साफ कर लिए गए हैं। 10 से लेकर 20 प्रतिशत वनावरण वाले राज्य हैं : उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, बिहार, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल। इन राज्यों की अधिकतर भूमि पर या तो खेती होती है या बस्तियाँ बसी हैं। तमिलनाडु को छोड़कर प्रायद्वीपीय भारत में वनावरण 30 से लेकर 40 प्रतिशत तक है। उत्तर पूर्वी भारत के राज्यों में कुल भूमि के 40 प्रतिशत से भी अधिक भाग में वन हैं। यहाँ पहाड़ी भूमि है तथा भारी वर्षा होती है, जो वनों की वृद्धि के लिए बहुत उपयुक्त हैं।

वनक्षेत्र की भाँति वनावरण में भी बहुत अंतर है। जम्मू और कश्मीर में वास्तविक वनावरण एक प्रतिशत है, जबकि अंडमान और निकोबार द्वीप समूह की 92 प्रतिशत भूमि पर वास्तविक वनावरण है। परिशिष्ट 1 में दी गई सारणी से स्पष्ट है कि 9 ऐसे राज्य हैं जहाँ कुल क्षेत्रफल के एक तिहाई भाग से अधिक पर वनावरण है। एक तिहाई वनावरण पारितंत्र का संतुलन बनाए रखने के लिए मानक आवश्यकता है। चार राज्य ऐसे हैं जहाँ वन का प्रतिशत आदर्श स्थिति जैसा ही है। अन्य राज्यों में वनों की स्थिति असंतोषजनक या संकटपूर्ण है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि तीन नवीन राज्यों, उत्तरांचल, झारखंड और छत्तीसगढ़ में प्रत्येक के कुल क्षेत्रफल के 40 प्रतिशत भाग पर वन हैं। इन राज्यों के पृथक आँकड़े न मिलने के कारण इन्हें इनके पूर्व राज्यों में ही सम्मिलित किया गया है।

वास्तविक वनावरण के प्रतिशत के आधार पर भारत के राज्यों को चार प्रदेशों में विभाजित किया गया है :

1. अधिक वनावरण वाले प्रदेश
2. मध्यम वनावरण वाले प्रदेश
3. कम वनावरण वाले प्रदेश
4. बहुत कम वनावरण वाले प्रदेश।

1. अधिक वनावरण वाले प्रदेश : इस प्रदेश में 40 प्रतिशत से अधिक वनावरण वाले राज्य सम्मिलित हैं। असम के अलावा सभी पूर्वी राज्य इस वर्ग में शामिल हैं। जलवायु की अनुकूल दशाएँ मुख्य रूप से वर्षा और तापमान अधिक वनावरण में होने का मुख्य कारण हैं। इस प्रदेश में भी वनावरण भिन्नताएँ पाई जाती हैं। अंडमान और निकोबार द्वीप समूह और मिजोरम, नागालैंड तथा अरुणाचल प्रदेश के राज्यों में कुल भौगोलिक क्षेत्र के 80 प्रतिशत भाग पर वन पाए जाते हैं। मणिपुर, मेघालय त्रिपुरा, सिक्किम और दादर और नागर हवेली में वनों का प्रतिशत 40 और 80 के बीच है।

2. मध्यम वनावरण वाले प्रदेश : इसमें मध्य प्रदेश, उड़ीसा, गोवा, केरल, असम और हिमाचल प्रदेश सम्मिलित हैं। गोवा में वास्तविक वन क्षेत्र 33.79 प्रतिशत है, जो कि इस प्रदेश में सबसे अधिक है। इसके बाद असम और उड़ीसा का स्थान है। अन्य राज्यों में कुल क्षेत्र के 30 प्रतिशत भाग पर वन हैं।

3. कम वनावरण वाले प्रदेश : यह प्रदेश लगातार नहीं है। इसमें दो उप-प्रदेश हैं : एक प्रायद्वीप भारत में स्थित है। इसमें महाराष्ट्र, कर्नाटक, आँध्र प्रदेश और तमिलनाडु शामिल हैं। दूसरा उप-प्रदेश उत्तरी भारत में है। इसमें उत्तर प्रदेश और बिहार राज्य शामिल हैं।

4. बहुत कम वनावरण वाले प्रदेश : भारत के उत्तर-पश्चिमी भाग को इस वर्ग में रखा जाता है। इस वर्ग में शामिल राज्य हैं : राजस्थान, पंजाब, हरियाणा और गुजरात। इसमें चंडीगढ़ और दिल्ली दो केंद्र शासित प्रदेश भी हैं। इनके अलावा पश्चिम बंगाल का राज्य भी इसी वर्ग में है। भौतिक और मानवीय कारणों से इस प्रदेश में बहुत कम वन हैं।

वन्य जीवन

भारत में विविध प्रकार की पारिस्थितिक और भौगोलिक दशाएँ पाई जाती हैं। इसीलिए यहाँ विविध प्रकार के पेड़-पौधे और जीव-जंतु पाए जाते हैं। संसार में पौधों की 2,50,000 ज्ञात प्रजातियाँ में से 15,000 प्रजातियाँ भारत में मिलती हैं। इसी प्रकार संसार के जीव-जंतुओं की कुल 15 लाख प्रजातियों में से 75,000 प्रजातियाँ भारत में पाई जाती हैं। अफ्रीकी, यूरोपीय और द. पू. एशियाई जैव तंत्रों के संगम पर स्थित होने के कारण भारत में इनमें से प्रत्येक जैव तंत्र के अद्‌भुत और रोचक जीव-जंतु तथा पेड़-पौधे पाए जाते हैं। इनके अलावा अनेक प्रकार के देशी वनस्पति जात और प्राणिजात भी पाए जाते हैं। लकड़बग्घा और चिंकारा अफ्रीकी मूल के हैं। भेड़िया, जंगली बकरी और हंगल यूरोपीय मूल के हैं। हूलक गिबन तथा हाथी,

भारत के विचित्र प्राणी

गांगेय सूंस (डाल्फिन) : यह गंगा नदी में रहता है। यह जन्मांध होता है तथा पूरा जीवन अंधा रहकर ही गुजारता है।
मुश्क बिलाव (सिवेट) : यह एक बिल्ली जैसा प्राणी है और एकाकी रहता है। शिकार के लिए रात को निकलता है। छोटे पक्षी, स्तनपायी और सरीसृप इसका भोजन है। दिन के समय यह छिपा रहता है।

भारतीय साल या वज्रशल्क (पैंगोलिन) : इसका शरीर शल्की होता है। परभक्षियों से अपनी रक्षा के लिए यह अपने शरीर को गेंद की तरह बना कर लुढ़कता रहता है तथा अपने तीखे शल्कों को खड़ा कर लेता है।

भारतीय बड़ी धनचिड़ी या धनेश (हार्नबिल) : यह एक बड़ा पक्षी है। इसका घोंसला बनाने का तरीका अनूठा है। इसकी मादा अपने आपको किसी पेड़ की खोखर में बंद कर लेती है। अंडे सेने की पूरी अवधि में नर पूरी कर्त्तव्यनिष्ठा से मादा के लिए भोजन जुटाता है।

भारतीय बड़ी गिलहरी : यह एक बड़ी रात्रिचर, कृन्तक है, जो पेड़ के ऊपरी भाग में पत्तों से बनी छतरी में रहती है। इसके शरीर के मुख्य भाग और बाहरी अंगों के बीच खाल जैसी पत्ती होती है। यह पैराशूट की तरह फैल और सिकुड़ सकती है। इसी की मदद से यह बड़ा स्तनपायी जीव एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर फिसलता रहता है।

मूषक मृग : इस मृग की ऊँचाई 30 से.मी. होती है । परभक्षियों से बचने के लिए यह छोटी झाड़ियों और वनस्पति में छिप जाता है।

उड़न-लोमड़ी : सारे भारत में पाए जाने वाली यह संसार की सबसे बड़ी चमगादड़ है। इसके पंखों का विस्तार 1.5 मी. का होता है। यह 220 कि.मी. तक उड़ान भर सकती है।

दक्षिण-पूर्व एशियाई प्राणिजात का प्रतिनिधित्व करते हैं। भारत के देशी प्राणिजात में रीछ, कृष्णसार (काला मृग) तथा चौसिंगा प्रमुख हैं।

भारत में पक्षियों की 1,200 प्रजातियाँ और 900 उप-प्रजातियाँ पाई जाती हैं। लैटिन अमेरीका को छोड़कर भारत के पक्षियों की विविधता सारे संसार में बेजोड़ है। भारत के सुविख्यात पक्षियों में बहुरंगी राष्ट्रीय पक्षी मोर उल्लेखनीय है। पाँच फुट की ऊँचाई वाला भव्य सारस तथा संसार का दूसरा सबसे भारी पक्षी हुकना (सोहनचिड़िया) महत्त्वपूर्ण पक्षी हैं। 5 लाख हंसावर पक्षी कच्छ के रण में घोंसले बनाकर अंडे देते हैं। संसार प्रसिद्ध केवलादेव (भरतपुर) के राष्ट्रीय उद्यान में ढाई लाख पक्षियों का घर है। ये पक्षी जहाँ रहते हैं, वहाँ के पारितंत्र में ये अहम् भूमिका निभाते हैं।

वन्य जीवों का संरक्षण

भारतीय इतिहास में वन्य जीवों की सुरक्षा एक दीर्घकालिक परंपरा रही है। ईसा से 6000 वर्ष पूर्व आखेट-संग्राहक समाज में प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग पर विशेष ध्यान दिया जाता था। मानव समाज की प्रारंभिक अवस्थाओं में लोग कुछ जीवों को विनाश से बचाने का प्रयास करते रहे हैं। हिन्दू महाकाव्यों, बौद्ध जातकों, पंचतंत्र और जैन धर्मशास्त्रों सहित प्राचीन भारतीय साहित्य में छोटे-छोटे जीवों के प्रति हिंसा के लिए दंड का प्रावधान था। यह इस बात का पुष्ट प्रमाण है कि भारत की प्राचीन संस्कृति में वन्य जीवों को कितना सम्मान दिया जाता था। आज भी कुछ समुदाय वन्य जीवों के संरक्षण के लिए पूरी तरह समर्पित हैं। राजस्थान के बिश्नोई पेड़-पौधों और जीव-जंतुओं के संरक्षण के लिए 19 सिद्धांतों का पालन करते हैं। महाराष्ट्र का मोरे समुदाय मोरों (मयूरों) और चूहों की सुरक्षा में अब भी विश्वास करता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कुछ पक्षियों की हत्या पर महाराज अशोक द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों का वर्णन मिलता है।

क्रीड़ा प्रेमियों और प्रकृति वैज्ञानिकों के प्रयासों से आधुनिक प्रकृति संरक्षण आंदोलन का प्रारंभ हुआ है। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान तथा उसके बाद जब शिकार योग्य जीवों की संख्या घटने लगी, तो अनेक संगठन वन्य जीवों के लंबी अवधि के संरक्षण में दिलचस्पी लेने लगे। उनके प्रयास वन्य जीव संरक्षण बोर्ड और अभयारण्यों तथा राष्ट्रीय उद्यानों के जाल के रूप में सामने हैं। विश्व वन्य जीव निधि की एक शाखा की स्थापना भारत में हुई है। भारतीय वन्य-जीव बोर्ड की सिफारिशों के आधार पर 1972 में भारत सरकार ने वन्य जीव सुरक्षा अधिनियम पारित किया था। जंगली बाघों की संख्या में तेजी से कमी आने से चिंतित होकर देश में सन् 1973 में बाघ विकास कार्यक्रम परियोजना शुरू की गई थी। संयुक्त राष्ट्र खाद्य और कृषि संगठन के सहयोग से 1975 में मगर प्रजनन और प्रबंधन परियोजना प्रारंभ की गई।

राष्ट्रीय उद्यान, एक या अनेक पारितंत्रों वाला बृहत् क्षेत्र होता है। यह क्षेत्र मानव के शोषण और अधिग्रहण के द्वारा परिवर्तित नहीं हुआ है। विशिष्ट वैज्ञानिक शिक्षा और मनोरंजन के लिए इसके पेड़-पौधों और जीव जंतुओं की प्रजातियों, भू-आकृतिक स्थलों और आवासों को संरक्षित किया गया है। राष्ट्रीय उद्यान के समान, वन्यजीव अभ्यारण्य भी वन्य जीवों की सुरक्षा के लिए स्थापित किए गए हैं।

राष्ट्रीय उद्यानों और अभ्यारण्यों में भ्रमण के समय कुछ करणीय और अकरणीय व्यवहार

- जहाँ तक संभव हो चुप रहें। ट्रांजिस्टर, संगीत और ऊँची आवाज में बातचीत का परित्याग कीजिए।
- भूदृश्यों के अनुरूप, खाकी, किशमिशी या जैतून-हरित रंग के कपड़े पहनिए।
- वायु, मृदा, और जल प्रदूषण मत फैलाइए। वनस्पतिजात और प्राणिजात को हानि मत पहुँचाइए।
- सदैव बड़े जंतुओं और बड़े पक्षियों को देखने की ही आशा मत कीजिए। छोटे जंतु और पक्षी भी रोचक और आकर्षक होते हैं ।
- सदैव एक अच्छे और अनुभवी गाइड की सेवाएँ लीजिए । वही आपको अच्छी तरह से घुमा सकता है।
- अपना कैमरा अपने साथ अवश्य रखिए। एक दूरबीन भी साथ रखिए।

वन्य जीवों के विलोपन की आशंका

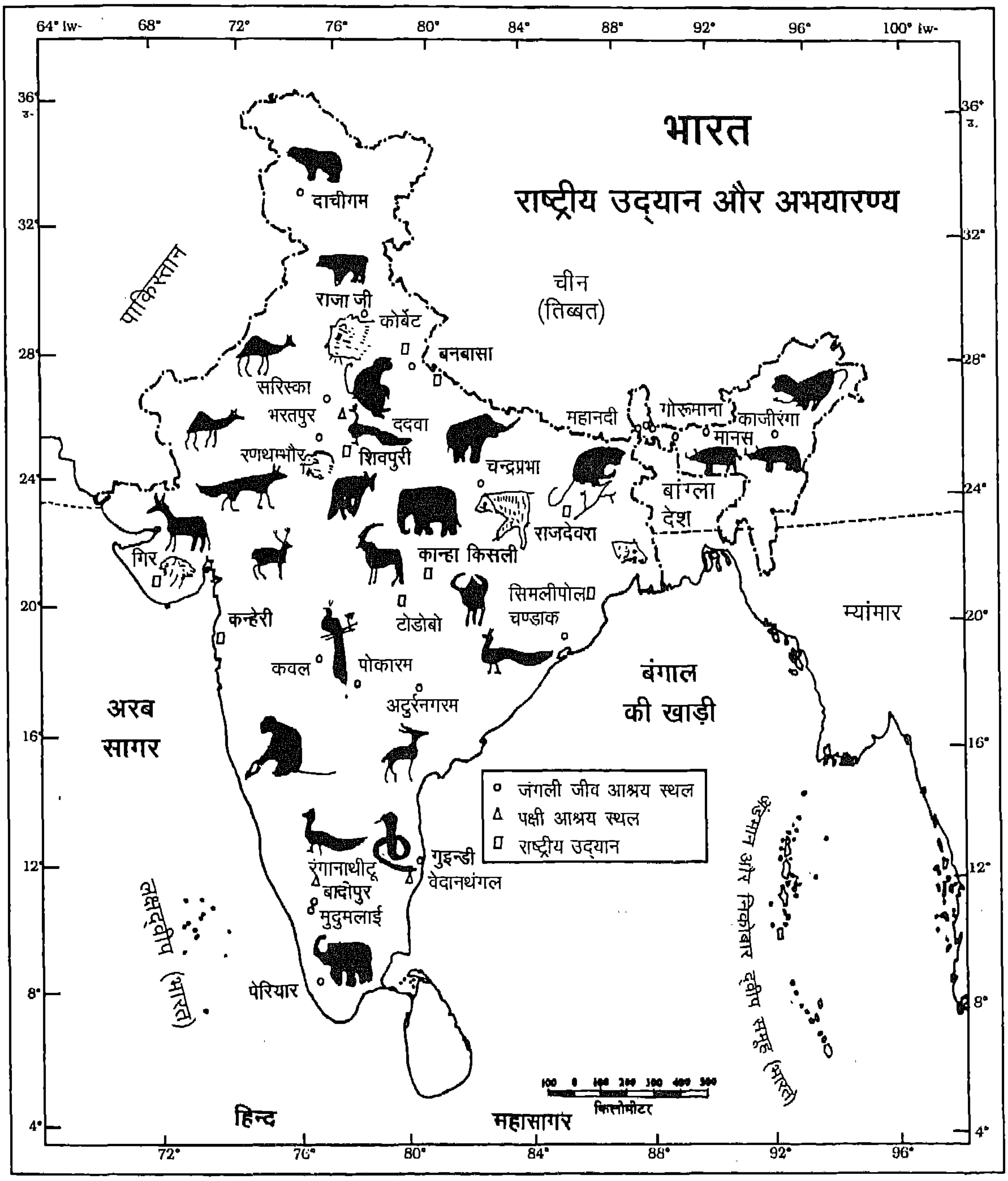
- भारत का भू-क्षेत्रफल संसार के कुल भू-क्षेत्र का केवल दो प्रतिशत ही है, किंतु यहाँ पृथ्वी के ज्ञात संपूर्ण जीवों में से लगभग 5 प्रतिशत का निवास है।
- भारत में पौधों की 15,000 प्रजातियाँ तथा जीवों की 75,000 प्रजातियाँ पाई जाती हैं। भूमि और वनों में मानवीय क्रियाकलापों के दबाव से इनमें से बहुत सी प्रजातियों के विलोपन की आशंका पैदा हो गई है।
- भारत के 10 प्रतिशत से कुछ अधिक ही प्राणिजात के विलोपन का खतरा मंडरा रहा है। जब तक समाज को उनकी सभावित उपयोगिता का ज्ञान होगा, उससे पहले ही अनेक प्रजातियाँ विलुप्त हो सकती हैं।
- पौधों की 134 प्रजातियों के विलोपन की प्रबल आशंका है। इनमें से 99 प्रजातियों का निवास हिमालय और उत्तर-पूर्वी भारत में है।
- हाथी कभी सारे भारत में पाए जाते थे, लेकिन अब वे महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, और आंध्र प्रदेश से विलुप्त हो चुके हैं।
- उत्तर-पूर्वी भारत में आर्किड की 600 विभिन्न प्रजातियाँ मिलती हैं। जो संसार की कुल प्रजातियों का 3 प्रतिशत है। इनमें से अधिकतर शीघ्र ही लुप्त हो जाएँगी।

अभयारण्य और राष्ट्रीय उद्यान में बहुत सूक्ष्म अंतर है। अभ्यारण्य में अनुमति के बिना शिकार करना मना है। लेकिन चराई और गो-पशुओं का आना-जाना नियमित होता है। राष्ट्रीय उद्यानों में शिकार और चराई पूर्णतया वर्जित होते हैं। अभयारणयों में मानवीय क्रियाकलापों की अनुमति होती है, लेकिन राष्ट्रीय उद्यानों में मानवीय हस्तक्षेप पूर्णतया वर्जित होता है।

जीव आरक्षित क्षेत्रों की स्थापना, जैव विविधता और पेड़-पौधों, जीव-जंतुओं तथा सूक्ष्म जीवों को समग्र रूप में सुरक्षित करने के लिए की जाती है। जीव आरक्षित क्षेत्र वैज्ञानिक अध्ययन के लिए मानव हस्तक्षेप विहीन प्राकृतिक क्षेत्र हैं।

आज भारत में 89 राष्ट्रीय उद्यान और 482 वन्य जीव अभयारण्य हैं, जिनका कुल क्षेत्रफल क्रमशः 40,60,000 हैक्टेयर तथा 1,15,40,000 हैक्टेयर है। दोनों का कुल क्षेत्रफल 1,56,00,000 हैक्टेयर होता है, जो देश के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 4.74 प्रतिशत है। भारत के प्रमुख राष्ट्रीय उद्यानों और अभयारण्यों का विवरण परिशिष्ट 2 में दिया गया है। सन् 1973 में संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को) ने कुछ देशों में मनुष्य और जैव मंडल पर एक कार्यक्रम शुरू किया था। इसी के परिणामस्वरूप इनके अतिरिक्त 12 जीव आरक्षित क्षेत्र भी बनाए गए हैं। इनका कुल भौगोलिक क्षेत्रफल लगभग 43 लाख हैक्टेयर है। इनका कुछ क्षेत्र सुरक्षित क्षेत्र में भी शामिल हो गया। कुछ आरक्षित क्षेत्र इस प्रकार हैं : नीलगिरि (तमिलनाडु), नोक्रेक (मेघालय), नामदफा (अरुणाचल प्रदेश), नंदा देवी (उत्तरांचल), ग्रेट निकोबार तथा मन्नार की खाड़ी (तमिलनाडु)।

राज्यों या केंद्र शासित प्रदेशों के वन विभागों के एक ही प्रशासनिक संगठन द्वारा वन्य जीवों और वनों के प्रबंध की परंपरा रही है। केंद्र सरकार इसमें सलाहकार की भूमिका निभाती रही है। अभी कुछ दिन पूर्व इस दिशा में कुछ और प्रगति हुई है। एक है वन्य जीव अधिनियम का पारित होना। इसके अंतर्गत प्रत्येक राज्य में एक मुख्य वन्य जीवरक्षक तथा वन्य जीवरक्षकों के पदों का प्रावधान किया गया है। इस अधिनियम से उन्हें कुछ कानूनी अधिकार मिले हैं। इस अधिनियम के अनुसार राज्यों के लिए वन्य जीव सलाहकार बोर्ड स्थापित करना अनिवार्य कर दिया गया है। दूसरे, वन्य जीव और पक्षियों की सुरक्षा को संविधान की समवर्ती सूची में शामिल कर लिया गया है। इसके अंतर्गत केंद्र सरकार को राज्यों द्वारा वन्य जीवों के संरक्षण से संबंधित कुछ विधायी अधिकार मिल गए हैं। समवर्ती सूची में केंद्र सरकार और राज्य सरकारों को कानून बनाने तथा उसका अनुपालन कराने का अधिकार



भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र में भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
आन्तरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 5.2 *भारत : राष्ट्रीय उद्यान और अभयारण्य*

है। इस प्रकार के कानूनों में केंद्र सरकार को महत्ता दी गई है। इसके बाद से स्थिति में कुछ सुधार हुआ है। राष्ट्रीय उद्यान या अभयारण्य वाले सभी राज्यों या केंद्र शासित प्रदेशों में वन्य जीव खंड स्थापित किए गए हैं।

विगत कुछ वर्षों में सुरक्षित क्षेत्र में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। सन् 1990 में भारत ने 1977 विश्व दाय (हैरिटेज) समझौते का अनुसमर्थन कर दिया है। इस समझौते के अनुसार श्रेष्ठ सार्वभौम महत्त्व के चार प्राकृतिक स्थलों को चिन्हित किया गया है।

1. काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान : यह असम के नागाँव और गोलाघाट जिलों में मिकिर पहाड़ियों की तलहटी में ब्रह्मपुत्र नदी के दक्षिणी तट के साथ विस्तृत है। काजीरंगा ब्रह्मपुत्र नदी के बाढ़ क्षेत्र के मैदानों में स्थित है। इस नदीय आवास में ऊँची व सघन घास वाली घास भूमियाँ हैं। इनके बीच-बीच में खुले वन है। यहाँ एक-दूसरे से जुड़ी नदियाँ तथा छोटी-छोटी अनेक झीले हैं। इसका तीन चौथाई या इससे भी अधिक क्षेत्र प्रतिवर्ष ब्रह्मपुत्र नदी के बाढ़ के पानी में डूब जाता है। लैंडसैट के 1986 के आंकड़ों के अनुसार इस के 41 प्रतिशत भाग में ऊँची घास, 11 प्रतिशत में छोटी घास, 29 प्रतिशत में खुले वन, 4 प्रतिशत में दल-दल, 8 प्रतिशत में नदियाँ और जलाशय तथा शेष 7 प्रतिशत में अन्य लक्षण हैं। इस राष्ट्रीय उद्यान के मुख्य जन्तु एक सींग वाला गैंडा तथा हाथी हैं।

2. केवला देव राष्ट्रीय उद्यान : यह राष्ट्रीय उद्यान राजस्थान के भरतपुर में अलवणजल की दल-दल है, जो सिंधु गंगा के मैदान का भाग है। जुलाई से लेकर सितंबर के मानसूनी वर्षा के महीनों में यह क्षेत्र एक से लेकर 2 मीटर की गहराई तक पानी से भर जाता है। अक्तूबर से जनवरी तक यहाँ जलस्तर धीरे-धीरे घटने लगता है तथा फरवरी के महीने में भूमि सूखने लगती है। जून के महीनों में कुछ गड्ढों में ही पानी रह जाता है। यहाँ का पर्यावरण अंशतः मानव-निर्मित है। छोटे-छोटे बांधों से पूरे क्षेत्र को 10 भागों में विभाजित कर लिया गया है। जल स्तर के नियंत्रण के लिए प्रत्येक भाग में जल कपाटों की व्यवस्था है।

3. सुंदर बन जीव आरक्षित क्षेत्र : यह पश्चिम बंगाल में भारत की दो बड़ी नदियाँ गंगा और ब्रह्मपुत्र के दलदली डेल्टाई क्षेत्र में स्थित है। यह मैंग्रोव वनों, दल-दलों और वनाच्छादित द्वीपों के एक विशाल क्षेत्र में फैला है। इसका कुल क्षेत्रफल 1,300 वर्ग कि.मी. है। यहाँ लगभग 200 रॉयल बंगाल टाइगर (बाघ) निवास करते हैं। इस वन का कुछ भाग बांग्लादेश में है। ऐसा अनुमान है कि इस प्रदेश के बाघों की संयुक्त संख्या लगभग 400 हो सकती है। बाघों ने अपने आप को खारी और अलवणजल के अनुकूल बना लिया है। इस जीव आरक्षित क्षेत्र के बाघ अच्छे तैराक हैं।

4. नंदा देवी जीव आरक्षित क्षेत्र : यह जीव आरक्षित क्षेत्र ऋषि गंगा के जल-ग्रहण क्षेत्र में स्थित है। यह धौलीगंगा की पूर्वी सहायक है। धौलीगंगा जोशी मठ के पास अलकनंदा में मिल जाती है। यह हिमनदीय द्रोणी का विस्तृत क्षेत्र है। उत्तर-दक्षिण दिशा में फैली पहाड़ियों की समान्तर शृंखलाओं द्वारा यह क्षेत्र विभाजित है। यहाँ 6,400 मी. से ऊँची लगभग एक दर्जन चोटियाँ हैं। इनमें दूनागिरि (7,066 मी.), चंगबंग (6,864 मी.) तथा नंदा देवी पूर्व (7,434 मी.) उल्लेखनीय हैं। हिमालय की आंतरिक घाटी होने के कारण नंदा देवी द्रोणी में सामान्य शुष्क दशाएँ पाई जाती हैं। मानसून की अवधि को छोड़कर वार्षिक वर्षण का औसत कम रहता है। चारों ओर छाई धुंध और मानसून की ऋतु में कम ऊँचाई वाले बादलों के कारण मृदा आर्द्र बनी रहती है। वर्ष के 6 महीनों तक यह द्रोणी हिम से ढकी रहती है।

अभ्यास

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित के उत्तर संक्षेप में दीजिए :
   - (i) प्राकृतिक वनस्पति किसे कहते हैं ?
   - (ii) प्राकृतिक वनस्पति कहाँ पाई जा सकती है ?

(iii) हिमालयी वनस्पति को कितने प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है ? इनके नाम बताइए।

(iv) प्रायद्वीपीय भारत में पर्वतीय वनस्पति कहाँ पाई जाती है ?

(v) भारत में राष्ट्रीय वन नीति कब बनाई गई थी ?

(vi) 1977 के विश्व दाय समझौते के द्वारा चिह्नित भारत के चार प्राकृतिक स्थलों के नाम बताइए।

(vii) उन चार राज्यों के नाम बताइए, जिनके दो-तिहाई भौगोलिक क्षेत्र वनों से ढके हैं।

(viii) भारत के उन 4 राज्यों के नाम बताइए, जिनके भौगोलिक क्षेत्र के 10 प्रतिशत से कम भाग पर वन हैं।

(ix) मध्य प्रदेश के दो राष्ट्रीय उद्यानों के नाम बताइए।

2. अंतर बताइए :

(i) वनस्पति जात और वन

(ii) राष्ट्रीय उद्यान और अभयारण्य

(iii) सदाहरित और पर्णपाती वन।

3. प्राचीन काल में जीवों को विनाश से बचाने के लिए अपनाए गए उपायों का वर्णन कीजिए।

4. भारत में सामाजिक वानिकी के महत्त्व का वर्णन कीजिए।

5. राष्ट्रीय उद्यान और अभयारण्यों में विचरण करते हुए करणीय और अकरणीय व्यवहारों का उल्लेख कीजिए।

6. भारत में प्राकृतिक वनस्पति किस प्रकार वर्षा के वार्षिक वितरण पर आश्रित है। अपने उत्तर को उचित उदाहरणों से पुष्ट कीजिए।

परियोजना कार्य

7. भारत के रेखा मानचित्र पर निम्नलिखित की स्थिति दिखाइए:

(i) काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान

(ii) कान्हा राष्ट्रीय उद्यान

(iii) मैंग्रोव वन का एक क्षेत्र

(iv) अर्ध-मरुस्थली तथा मरुस्थली वनस्पति।

8. अपने राज्य या केंद्र शासित प्रदेश के राष्ट्रीय उद्यानों और अभयारण्यों की सूची बनाइए। यदि आपके राज्य या केंद्र शासित प्रदेश में कोई राष्ट्रीय उद्यान और अभयारण्य नहीं है, तो अपने पड़ौसी राज्य के ऐसे ही स्थानों की सूची बनाइए।

6
अध्याय

मिट्टियाँ

मिट्टी एक बहुत ही महत्वपूर्ण संसाधन है। यह पौधों, जीव-जंतुओं और मानव के जीवन को पोषण देती है। इसीलिए मृदा का प्रकार इसकी उर्वरता, अपक्षरण और संरक्षण हम सभी के लिए महत्त्वपूर्ण है। गहरी और अंततोगत्वा उर्वर मृदा का आवरण संपन्न और समृद्धि कृषि अर्थ-व्यवस्था का आधार है। ऐसी मृदा ही विशाल जनसंख्या का भरण-पोषण करने में समर्थ होगी। इसके विपरीत कम गहरी और अनुर्वर मृदा कमजोर और निराशाजनक कृषि अर्थव्यवस्था को जन्म देगी। इसके परिणामस्वरूप जनसंख्या का घनत्व विरल और जीवन स्तर नीचा रहेगा।

पृथ्वी के धरातल पर मृदा असंघटित पदार्थों की एक परत है, जो अपक्षय और विघटन के कारकों के माध्यम से चट्टानों और जैव पदार्थों से बनी है। मृदाओं के निर्माण में प्रकृति को हजारों वर्ष लगते हैं तथा पर्यावरण के अनेक कारक इसके निर्माण में सहयोग देते हैं। मिट्टियाँ नदियों द्वारा लाए गए अवसादों के निक्षेपण से विकसित होती हैं या चट्टानों के अपक्षय और बृहत क्षरण की प्रक्रियाओं द्वारा बनती हैं। मूल जनक सामग्री, उच्चावच, जलवायु, वनस्पति और अपवाह, मृदा निर्माण के कुछ आधारभूत कारक हैं। इनके अतिरिक्त मानव का भी इस पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है।

निर्मित मृदाओं के मामले में मूल पदार्थों की निश्चित भूमिका होती है। प्रायद्वीपीय मृदाओं में मूल चट्टानों का बहुत अधिक प्रतिबिंब दिखाई पड़ता है। उदाहरण के लिए लावा से बनी मृदाएँ काले रंग की होती हैं। इसी प्रकार बलुई मृदा बलुआ पत्थर से, और मृत्तिका वाली मृदा नीस से बनती हैं। लेकिन प्रवाहित जल के कार्य द्वारा निक्षेपित मृदा का किसी स्थान पर स्थित शैल पदार्थों से बहुत कम संबंध होता है। गंगा के मैदान की मृदाओं को नदियों ने लाकर जमा किया है। नदियाँ इन्हें हिमालयी और प्रायद्वीपीय चट्टानों से लाई हैं। उच्चावच के लक्षण मृदा निर्माण की प्रक्रिया को कई तरह से प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए ढाल, जल के प्रवाह और बृहत क्षरण (mass wasting) को निर्धारित करता है। अतः मंद ढाल वाले क्षेत्रों में मृदा का अच्छा विकास होता है। यही नहीं, मृदा की उर्वरता मुख्यतः ढाल पर निर्भर करती है, क्योंकि ढाल की तीव्रता मृदा अपरदन को बढ़ावा देती है। जलवायु विशेषरूप से वर्षा, मृदा निर्माण की प्रक्रिया में प्रबल भूमिका निभाती है। यह अपक्षय की प्रक्रिया के प्रकार और प्रभाव, जल के रिसाव की मात्रा, ह्यूमस के अंश, तथा सूक्ष्म-जीवों के स्वरूप को नियंत्रित करती है।

वनस्पति की वृद्धि, प्रकार और सघनता मृदा को उर्वर बनाती है और इसमें ह्यूमस के अंश को बढ़ाती है। जहाँ उत्पादक पदार्थ प्रबलता से नीचे जाते हैं वहाँ मृदा ऊर्ध्वाधर परिच्छेदिका में तीन संस्तर स्पष्ट पहचाने जाते हैं। वे हैं: सबसे ऊपर का जलोढ़ (alluvial) 'क' संस्तर - अत्यधिक निक्षालित स्तर, अनूढ़ (elluvial) 'ख' संस्तर - अपेक्षाकृत कम निक्षालित तथा समपोढ़ (illuvial) 'ग' संस्तर जहाँ उपरी निक्षालित संस्तरों के पदार्थ जमा होते हैं। समपोढ़ स्तर के नीचे मूल चट्टान होती है, जो मृदा निर्माण की प्रक्रिया से अप्रभावित रहती है।

मृदाओं के गुण और उर्वरता

मृदा की उत्पादकता अनेक भौतिक गुणों पर निर्भर करती है। ये गुण हैं : कणों का आकार, आकृति और विन्यास, इसके छिद्रों का परिमाण और रूप तथा मृदा की प्रभावी गहराई। जल का प्रवाह और भंडारण, वायु का संचलन तथा पौधों को पोषक तत्त्व देने की मृदा की क्षमता, इसके भौतिक गुणों पर निर्भर करती है।

मृदा के प्रबंधन की दृष्टि से गठन, रंग, प्रभावी गहराई, संरचना, पारगम्यता, नमीधारण की क्षमता, धरातली अपवाह, ढाल और अपरदन, मृदा के सामान्य भौतिक गुण हैं। बालू, गाद, और मृत्तिका के सापेक्षिक अनुपात का अध्ययन मृदा के गठन के अंतर्गत किया जाता है। हल्की मृदा में बड़ी

मात्रा में बालू होता है। गाद की बड़ी मात्रा वाली मृदा को मध्यम रूप से गठित मृदा कहते हैं। मृत्तिका की बड़ी मात्रा वाली मृदा को भारी मृदा कहते हैं।

ऊपरी मृदा का रंग इसके अपवाह से निर्धारित होता है। सुअपवाहित मृदाएँ सामान्यतः किशमिशी रंग की होती हैं। इसके विपरीत कुअपवाहित मृदाएँ सलेटी होती हैं। काला रंग मृदा में प्रचुर जैव पदार्थ की उपस्थिति का संकेतक है। यदि मृदा 90 से.मी. से अधिक गहरी है, तो यह फसलों के लिए बहुत उपयोगी होती है। 50 से.मी. गहराई वाली मृदा को उथली (shallow) मृदा कहते हैं।

मृदा की संरचना से तात्पर्य है कि प्रत्येक कण मृदा में किस तरह से विद्यमान है। मृदा की मुख्य संरचनाएँ हैं : दानेदार (granular), खंडी (blocky) और चपटी (platy)। मृदा की पारगम्यता इसकी संरचना पर निर्भर करती है। बलुई मृदा में तीव्र पारगम्यता होती है, जबकि मृत्तिका और गाद की पारगम्यता धीमी होती है। स्थूल मृदा की जल-धारण क्षमता कम होती है, जबकि काली मृदा में यह क्षमता अधिक होती है। सुअपवाहित मृदा कुअपवाहित मृदा की तुलना में अधिक उत्पादक होती है। भूमि का 5 प्रतिशत का ढाल मंद कहा जाता है। 5 और 10 प्रतिशत के बीच का ढाल मध्यम तथा 10 प्रतिशत से अधिक का ढाल तीव्र कहलाता है। मंद ढालों की तुलना में तीव्र ढालों पर अपरदन क्रिया का प्रभाव अधिक तेजी से होता है। अपरदन एक व्यापक परिघटना है। यदि अपरदन धरातलीय मृदा का 25 प्रतिशत से कम है, तो इसे सामान्य माना जाता है, 25 से 75 प्रतिशत के बीच के अपरदन को मध्यम तथा 75 प्रतिशत से अधिक को प्रबल माना जाता है।

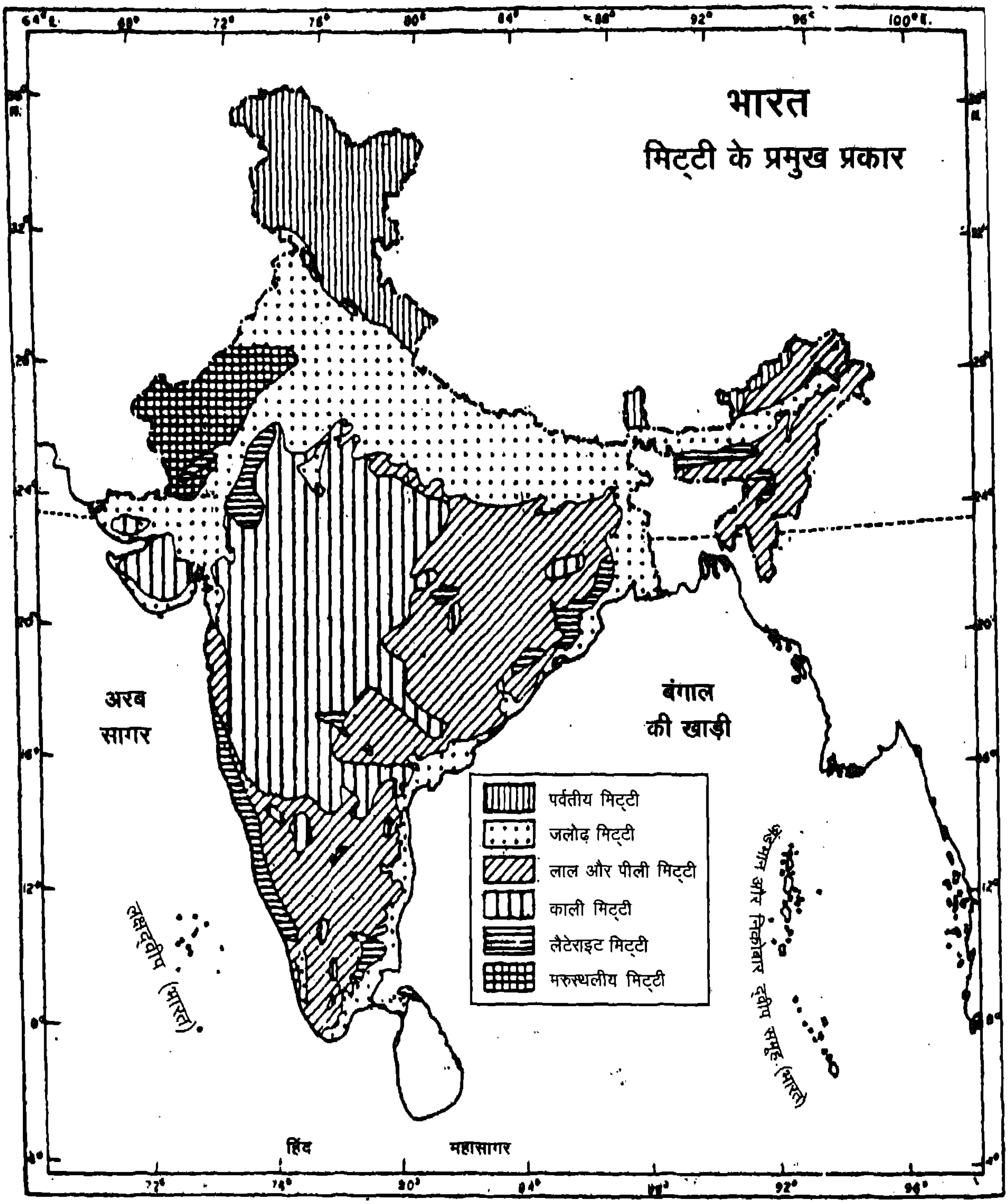
मृदा की उर्वरता पोषक तत्त्वों की विद्यमानता पर निर्भर करती है। पौधे को अनेक तत्त्वों को आवश्यकता होती है। ये तत्त्व हैं : कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैशियम, गंधक, मैग्नीशियम, चूना, लोहा, मैंगनीज, जस्ता, ताँबा, बोरान और मौलिब्डिनम। प्रथम तीन की आपूर्ति पौधे को वायु और जल से होती है, तथा अंतिम नौ की अल्प मात्रा में आवश्यकता होती है। ये नौ सामान्यतः मृदा में ही विद्यमान होते हैं। नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटैशियम की मात्रा और इनका अनुपात प्रत्येक मृदा में भिन्न-भिन्न होता है। प्रचुर उत्पादन के लिए मृदा में काफी मात्रा में इन तत्त्वों को उर्वरकों के रूप में दी जाती है। इनके अलावा मृदा के जीव, मृदा की उर्वरता में प्रभावी भूमिका निभाते हैं। मृदा के जीव ये हैं : जीवाणु, कवक, केंचुए, चींटियाँ तथा अन्य कीट और जीव-जंतु। अनुकूल दशाओं में ये बड़ी तेजी से बढ़ते हैं तथा मृदा के पोषक तत्त्वों में वृद्धि करते हैं।

भारत में उच्चावच के विविध और जटिल लक्षण, भू-आकृतियाँ, जलवायु विविध प्रकार की और वनस्पति के प्रकार पाए जाते हैं। जलवायु, वनस्पति, ढाल और आवरण-प्रस्तर की प्रादेशिक जटिलताएँ मृदा के प्रकार और इसकी प्रादेशिक विशेषताओं को प्रभावित करती हैं। गरम, शुष्क और आर्द्र जलवायु में भारत की मृदाओं का जटिल चट्टानों पर विकास हुआ है। यही नहीं, भारत की सभ्यता का इतिहास भी बड़ा लंबा है। भारतीय किसान के खेती के तरीके भी भारत की मृदाओं की वर्तमान दशा से संबधित हैं।

मृदाओं का वर्गीकरण

प्राचीन काल में मृदाओं को दो वर्गों में विभाजित किया जाता था : उर्वर जो उपजाऊ थीं तथा ऊसर, जो अनुपजाऊ या बंजर थीं। उगाई गई फसलों के आधार पर उर्वर मृदाओं को विभिन्न प्रकारों में विभाजित किया जाता था, जैसे जौ वाली मृदा, धानभूमि आदि। इसी प्रकार ऊसर मिट्टियों को लवणीय भूमि, मरुस्थली भूमि आदि में बाँटा जाता था। 16वीं शताब्दी में मृदाएँ अपनी अंतर्निहित विशेषताओं और बाह्य लक्षणों जैसे : गठन और मृदाओं के रंग, भूमि के ढाल तथा पानी की सुलभता के आधार पर वर्गीकृत की गई थीं। सबसे अधिक उपजाऊ मिट्टियों को 16 आने वाली मिट्टी कहा जाता था (उस समय एक रुपए में 16 आने या 64 पैसे होते थे। आज एक रुपए में सौ पैसे होते हैं)। जिन मिट्टियों की उत्पादकता 50 प्रतिशत होती थी, उन्हें अठन्नी वाली मिट्टी कहते थे। दुअन्नी वाली मिट्टी बहुत कम उपजाऊ होती थी, जबकि बारह आने वाली मिट्टी बहुत उपजाऊ होती थी। गठन के आधार पर मृदाओं के मुख्य प्रकार थे : बलुई, चिकनी, बलुई-दोमट आदि तथा रंग पर आधारित मृदाओं के प्रकार थे : लाल, पीली, काली आदि। वर्षा के जल पर निर्भर मृदाओं को *बारानी*, कूप सिंचित को *चारी*, नहर-सिंचित को *नहरी* तथा नदी के रिसाव वाली को *सैलाबी* कहा जाता था।

स्वतंत्रता के बाद विभिन्न संस्थाओं के द्वारा मृदाओं के वैज्ञानिक सर्वेक्षण किए गए। 1956 में स्थापित भारत



भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र में भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
आन्तरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 6.1 : मिट्टी के प्रमुख प्रकार

सारणी 6.1 : भारतीय मृदाएँ और उनका कुल क्षेत्रफल (प्रतिशत में)

मृदा के प्रकार	*कुल क्षेत्रफल (प्रतिशत में)*
जलोढ़ मृदाएँ	22.16
काली मृदाएँ	29.69
लाल और पीली मृदाएँ	28.00
लैटराइट मृदाएँ	2.62
मरुस्थलीय मृदाएँ	6.13
क्षारीय मृदाएँ	1.29
पीटमय और जैव मृदाएँ	2.17
वन-मृदाएँ	7.94

के मृदा सर्वेक्षण विभाग ने कुछ चुने हुए क्षेत्रों जैसे दामोदर घाटी में मृदाओं के व्यापक अध्ययन किए। सन् 1957 में राष्ट्रीय एटलस संगठन ने भारत की मृदाओं का विस्तृत मानचित्र प्रकाशित किया। वर्गीकरण की अंतर्राष्ट्रीय क्रियाविधि पर आधारित देश के अधिकतर भागों के तालुका स्तर के मृदा मानचित्र अब उपलब्ध हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के मृदा सर्वेक्षण तथा भूमि उपयोग नियोजन विभाग ने भारतीय मृदाओं का विस्तृत अध्ययन किया है। स्वरूप और विशेषताओं के आधार पर भारत की मृदाओं को कई तरीकों से वर्गीकृत किया गया है। उत्पत्ति, रंग, संघटन और स्थिति के आधार पर भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् ने भारतीय मृदाओं को निम्नलिखित आठ वर्गों में विभाजित किया है :

1. जलोढ़ मृदाएँ
2. काली मृदाएँ
3. लाल और पीली मृदाएँ
4. लैटराइट मृदाएँ
5. मरूस्थलीय मृदाएँ
6. क्षारीय मृदाएँ
7. पीटमय और जैव मृदाएँ
8. वन मृदाएँ

1. जलोढ़ मृदाएँ : जलोढ़ मृदाएँ, कुल मिलाकर सबसे अधिक उत्पादक हैं। ये पर्याप्त उर्वर हैं। इनमें अनेक फसलें उगाई जा सकती हैं, जिनसे अच्छी उपज भी मिलती है। ये नदियों और पवनों द्वारा लाई गई निक्षेपित मृदाएँ हैं। गठन में ये अधिकतर बलुई दोमट हैं तथा कुछ क्षेत्रों में ये गाद और मृत्तिका के साथ मिली हुई भी पाई जाती हैं। चौरस भूमि के धरातल पर मृदा परिच्छेदिका काफी विकसित है। जलोढ़ मृदाओं का रंग हल्के धूसर से लेकर राख जैसा होता है। इसकी आभाएँ, निक्षेपण की गहराई, पदार्थों के गठन और निर्माण में लगने वाली समयावधि पर निर्भर करती हैं।

जलोढ़ मृदाएँ गंगा के संपूर्ण मैदान में पाई जाती हैं। प्रायद्वीपीय भारत में ये पूर्वी तट की नदियों के डेल्टाओं और कुछ नदियों की घाटियों में पाई जाती हैं। जलोढ़ मृदाएँ भारत के 22 प्रतिशत क्षेत्रफल पर पाई जाती हैं। गंगा के पश्चिमी मैदान की ये मृदाएँ अपेक्षाकृत अधिक दोमटी और मटियार हैं। मैदान के मध्य भाग में बालू की मात्रा कम होती जाती है। यहाँ निचले संस्तरों में चूनेदार कंकड़ों के निक्षेप मिलते हैं। इनके कारण अत्यधिक सिंचाई होने पर जल भराव और नमक की समस्या पैदा हो जाती है। गंगा के ऊपरी और मध्य मैदान में 'खादर' और 'बांगर' नाम की दो भिन्न मृदाएँ विकसित हो गई हैं। गंगा के मैदान के इस भाग में बहने वाली अनेक सरिताओं के प्राकृतिक तटबंधों के मध्य नई जलोढ़ खादर (मिट्टी) विकसित हो गई है। इसमें बालू की मात्रा अधिक है। यहाँ वार्षिक बाढ़ की अधिक संभावना रहती है। प्रति वर्ष बाढ़ों के द्वारा महीन गाद के जमा होने से इसकी उर्वरता बढ़ जाती है।

बांगर पुरानी जलोढ़ है। यह नदियों के दोनों ओर अपेक्षाकृत ऊँचे भागों तथा सामान्यतः बाढ़ से अप्रभावित क्षेत्रों पर पाई जाती है। परिणामस्वरूप ये शुष्क होती हैं। खादर और बांगर, दोनों ही प्रकार की मृदाओं में चूनेदार कंकड़ मिलते हैं। मैदानी गाँवों के घरों में इनका उपयोग पुताई (सफेदी) करने में होता रहा है। आजकल ये सीमेंट के कारखानों के लिए कच्चे-माल का अच्छा स्रोत बन गई हैं। जलोढ़ मृदाओं में गहन कृषि होती है। ये अनेक प्रकार की फसलों, विशेषरूप से अनाज और दालों की खेती के लिए उपयुक्त हैं। इनके अलावा कपास, गन्ना और जूट जैसी व्यापारिक फसलें भी उगाई जाती हैं।

2. काली मृदाएँ : इनका लोकप्रिय नाम कपास वाली काली मिट्टी भी है। अर्ध-मरुस्थलीय जलवायु की दशाओं वाले दक्कन के पठार की बसाल्ट की चट्टानों पर विकसित ये विशिष्ट मृदाएँ हैं। ये मृदाएँ देश के कुल क्षेत्रफल के लगभग 30 प्रतिशत भाग पर पाई जाती हैं। इन्हें 'रेगड़' भी कहते हैं। इनका निर्माण चट्टानों के दो वर्गों से हुआ है। ये वर्ग हैं : दक्कन ट्रैप तथा लौहमय नीस और शिस्ट चट्टानें। तमिलनाडु की काली मृदाएँ अधिकतर लौहमय चट्टानों से बनी हैं। मृदा का रंग गाढ़े काले और सलेटी रंग के बीच की विभिन्न आभाओं का होता है। मृदा में काले रंग के मृत्तिका खनिज होते हैं। गीले होने पर ये फूल जाते हैं तथा सूखने पर सिकुड़ जाते हैं। इस प्रकार शुष्क ऋतु में मृदा में चौड़ी दरारें पड़ जाती हैं। इनमें मृदा के कण इकट्ठे हो सकते हैं। इस समय लगता है कि वहाँ एक प्रकार की 'स्वतः जुताई' हो गई है।

नमी के धीमे अवशोषण और धीमे ह्रास की इस विशेषता के कारण काली मृदा में एक लंबी अवधि तक नमी बनी रहती है। इस विशेषता के कारण फसलों को, विशेषरूप से वर्षाधीन फसलों को शुष्क ऋतु में भी नमी मिलती रहती है और वे फलती-फूलती रहती हैं। काली मृदाओं में लोहे, चूने और अल्यूमिनियम के तत्त्व काफी मात्रा में पाए जाते हैं। इन तत्त्वों से युक्त तथा नमी धारण करने की उच्च क्षमता के कारण ये बहुत उपजाऊ हैं और इनमें फसलों की बहुत अच्छी वृद्धि होती है, लेकिन इनमें जैव पदार्थों की कमी होती है। काली मृदाओं में अधिकतर कपास की खेती होती है। इसीलिए इनका नाम कपास वाली काली मिट्टी पड़ गया है। दक्कन का पठार और कोयम्बतूर उच्च भूमि कपास की खेती के लिए विख्यात हैं। काली मृदाएँ, महाराष्ट्र, पश्चिमी मध्य प्रदेश, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, गुजरात और तमिलनाडु में सुविकसित है। नर्मदा और तापी नदियों के निचले भागों में, गोदावरी और कृष्णा के ऊपरी भागों में तथा दक्कन के पठार के उत्तरी भाग में काली मृदाएँ काफी गहरी हैं।

3. लाल और पीली मृदाएँ : ये मृदाएँ अपेक्षाकृत बलुई और लाल-पीले रंग की हैं। लोहे के ऑक्साइड के मिले होने के कारण ही इनका रंग लाल होता है, लेकिन जल-योजित रूप में ये पीली दिखाई पड़ती हैं। प्रायः इनकी ऊपरी सतह लाल और निचला संस्तर पीला होता है। इनका गठन बलुई से लेकर मटियार तक होता है, लेकिन प्रायः दोमट गठन पाया जाता है। इनका निर्माण पुरानी रवेदार और कायांतरित चट्टानों पर अपक्षय की प्रक्रियाओं के द्वारा हुआ है। लाल और काली मृदाएँ प्रायः साथ-साथ पाई जाती हैं। लाल मृदाएँ प्रायः उच्च भूमियों पर, जबकि काली मृदाएँ निम्न भूमियों पर पाई जाती हैं। महीन कणों वाली लाल और पीली मृदाएँ सामान्यतः उपजाऊ होती हैं। इसके विपरीत मोटे कणों की उच्च भूमियों की मृदाएँ अनुपजाऊ होती हैं। इनमें नाइट्रोजन, फास्फोरस और ह्यूमस की कमी होती है। ये अधिकतर प्रायद्वीपीय भारत में पाई जाती हैं। तमिलनाडु, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और उड़ीसा की अधिकतर भूमि पर लाल बलुई मृदाएँ मिलती हैं। पश्चिम घाट के गिरिपद क्षेत्र की एक लंबी पट्टी में लाल दोमटी मृदाएँ पाई जाती हैं। उड़ीसा और छत्तीसगढ़ के भागों में तथा गंगा के मध्य मैदान के दक्षिण भाग में पीली और लाल मृदाएँ पाई जाती हैं। गेहूँ, ज्वार, बाजरा, कपास, आलू तथा अन्य मोटे अनाज इन मृदाओं में खूब पैदा किए जाते हैं। इनके अलावा मिर्च और मूंगफली की खेती इन मृदाओं में की जाती है।

4. लैटराइट मृदाएँ : लैटराइट मृदाएँ विशेषरूप से उन उष्ण कटिबंधीय प्रदेशों में पाई जाती है, जहाँ ऋतुनिष्ठ भारी वर्षा होती है। भारी वर्षा के कारण मृदाओं में निक्षालन क्रिया तेज हो जाती है। वर्षा के जल के साथ चूना और सिलिका तो निक्षालित हो जाते हैं, तथा लोहे के ऑक्साइड और अल्यूमिनियम के यौगिक से भरपूर मृदाएँ शेष रह जाते हैं। उच्च तापमानों में आसानी से पनपने वाले जीवाणुओं के द्वारा मृदा का ह्यूमस तत्त्व तेजी से नष्ट कर दिया

जाता है। इन मृदाओं में नाइट्रोजन, फास्फेट और चूने की कमी होती है तथा लौह-ऑक्साइड और पोटाश की अधिकता होती है। परिणामस्वरूप लैटराइट मृदाएँ फसलों की कृषि के लिए पर्याप्त उपजाऊ नहीं हैं। फसलें पैदा करने के लिए इन मृदाओं में खाद और उर्वरकों की भारी मात्रा देनी पड़ती है। मकान बनाने के लिए लैटराइट मृदाओं को प्रायः ईंटों के रूप में काट लिया है। इन मृदाओं का विकास मुख्य रूप से प्रायद्वीपीय पठार के ऊँचे क्षेत्रों में हुआ है। लैटराइट मृदाएँ सामान्यतः कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, मध्य प्रदेश, उड़ीसा और असम के पहाड़ी क्षेत्रों में पाई जाती हैं। इन मृदाओं में कपास, चावल, गेहूँ, दाल, चाय और कहवे की खेती होती है। तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश और केरल में काजू जैसे वृक्षों वाली फसलों की खेती के लिए ये मृदाएँ अधिक उपयुक्त हैं।

5. मरूस्थलीय मृदाएँ : मरूस्थली मृदाओं का रंग लाल से लेकर किशमिशी तक होता है। ये सामान्यतः बलुई और क्षारीय होती हैं। कुछ क्षेत्रों की मृदाओं में नमक की मात्रा इतनी अधिक होती है, कि इनके पानी को वाष्पीकृत करके नमक प्राप्त किया जाता है। शुष्क जलवायु, उच्च तापमान और तीव्रगति से वाष्पीकरण के कारण इन मृदाओं में नमी और ह्यूमस कम होते हैं। नाइट्रोजन अपर्याप्त और फास्फेट सामान्य मात्रा में होती हैं। और नीचे की ओर चूने की मात्रा के बढ़ते जाने के कारण निचले संस्तरों मे बहुत कंकड़ पाए जाते हैं। मृदा की तली में कंकड़ों की परत के बनने के कारण पानी का रिसाव सीमित हो जाता है। इसीलिए सिंचाई किए जाने पर इन मृदाओं में पौधों की टिकाऊ वृद्धि के लिए नमी सदा सुलभ रहती है। विशिष्ट मरूस्थलीय स्थलाकृति वाले पश्चिमी राजस्थान में मरूस्थली मृदाएँ विशेषरूप से विकसित हुई हैं। ये मृदाएँ अनुर्वर हैं तथा इनमें ह्यूमस और जैव पदार्थ कम मात्रा में पाए जाते हैं। इन मृदाओं वाले क्षेत्र में सामान्यतः मोटे अनाज, जैसे ज्वार-बाजरा, रागी आदि तथा तिलहन पैदा किए जाते हैं।

6. क्षारीय मृदाएँ : ऐसी मृदाओं को ऊसर मृदाएँ भी कहते हैं। क्षारीय मृदाओं में सोडियम, पोटैशियम और मैग्नीशियम का अनुपात अधिक होता है। अतः ये अनुपजाऊ होती हैं। यहाँ तक कि इनमें किसी भी प्रकार की वनस्पति नहीं उगती। मुख्य रूप से शुष्क जलवायु और खराब अपवाह के कारण इनमें लवणों की मात्रा बढ़ती जाती है। ये शुष्क और अर्ध-शुष्क तथा जल भराव वाले क्षेत्रों और दल-दलों में पाई जाती है। इनकी संरचना बलुई से लेकर दुमटी तक होती है। इनमें नाइट्रोजन और चूने की कमी होती है। पश्चिमी-गुजरात, पूर्वी तट के डेल्टाओं और पश्चिम-बंगाल के सुंदरबन क्षेत्रों में क्षारीय मृदाओं का अधिकत्तर प्रसार है। कच्छ के रन में नमक के कण दक्षिण-पश्चिम मानसून के साथ आते हैं और एक पपड़ी के रूप में जमा हो जाते हैं। डेल्टा प्रदेश में समुद्री जल के भर जाने से क्षारीय मृदाओं के विकास को बढ़ावा मिलता है। अत्यधिक सिंचाई वाले गहन कृषि के क्षेत्रों में विशेषरूप से हरित क्रांति वाले क्षेत्रों में, उपजाऊ जलोढ़ मृदाएँ भी अनुपजाऊ होती जा रही हैं। शुष्क जलवायु की दशाओं वाले क्षेत्रों में केशिका-क्रिया को बढ़ावा मिलता है। इसके परिणामस्वरूप मृदा की सबसे ऊपरी परत पर नमक की परत जम जाती है। इस प्रकार के क्षेत्रों में, विशेषरूप से पंजाब और हरियाणा में, मृदा की क्षारीयता की समस्या से निबटने के लिए जिप्सम डालने की सलाह दी जाती है।

7. पीटमय तथा जैव मृदाएँ : वनस्पति की अच्छी बढ़वार वाले तथा भारी वर्षा और उच्च आर्द्रता से युक्त क्षेत्रों में ये मृदाएँ पाई जाती हैं। वनस्पति की तीव्र वृद्धि के कारण इन क्षेत्रों में जैव पदार्थ भारी मात्रा में इकठ्ठे हो जाते हैं। इससे मृदाओं में पर्याप्त मात्रा में जैव तत्त्व और ह्यूमस होता है। इसीलिए ये पीटमय और जैव मृदाएँ हैं। इन मृदाओं में जैव पदार्थों की मात्रा 40 से 50 प्रतिशत तक हो सकती है। ये मृदाएँ सामान्यतः भारी और काले रंग की होती हैं। अनेक स्थानों पर ये क्षारीय भी हैं। बिहार के उत्तरी भाग, उत्तरांचल के दक्षिणी भाग, बंगाल के तटीय क्षेत्रों, उड़ीसा और तमिलनाडु में ये मृदाएँ अधिकतर पाई जाती हैं। ये मृदाएँ हल्की और कम उर्वरता का उपभोग करने वाली फसलों की खेती के लिए उपयुक्त हैं।

8. वन मृदाएँ : नाम के अनुरूप ये मृदाएँ पर्याप्त वर्षा वाले वन-क्षेत्रों में ही बनती हैं। इन मृदाओं का निर्माण पर्वतीय पर्यावरण में होता है। इस पर्यावरण में परिवर्तन के अनुसार इन मृदाओं का गठन और संरचना बदलती रहती है। घाटियों में ये दुमटी और गादयुक्त होती है तथा ऊपरी ढालों पर ये मोटे कणों वाली होती है। हिमालय के हिम से

ढ़के क्षेत्रों में इन मृदाओं में अनाच्छादन होता रहता है तथा ये अम्लीय और कम ह्यूमस वाली होती हैं। निचली घाटियों में पाई जाने वाली मृदाएँ उपजाऊ होती हैं और इनमें चावल तथा गेहूँ की खेती की जाती है।

मृदा अपरदन

जब तक मृदा निर्माण की प्रक्रियाओं और मृदा अपरदन में संतुलन बना रहता है, तब तक कोई समस्या नहीं पैदा होती। इस संतुलन के बिगड़ते ही, मृदा अपरदन एक खतरा बन जाता है। वृक्षों की अंधाधुंध कटाई, चरागाहों में बेफिक्री से अति चराई, अवैज्ञानिक अपवाह प्रक्रियाएँ तथा भूमि का अनुचित उपयोग इस संतुलन को बिगाड़ने के महत्त्वपूर्ण कारणों में से कुछ हैं। पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, कर्नाटक, दिल्ली, राजस्थान और देश के अन्य अनेक भागों में मृदा अपरदन एक समस्या रही है। पहाड़ी ढालों पर गो-पशुओं द्वारा अति चराई से मृदा अपरदन की गति तेज हो जाती है। मेघालय ओर नीलगिरि की पहड़ियों पर आलू की खेती और हिमालय और पश्चिमी घाट पर वनों के विनाश तथा देश के विभिन्न भागों में जन-जातीय लोगों द्वारा की जाने वाली झूम कृषि के कारण मृदाओं का उल्लेखनीय क्षरण हुआ है।

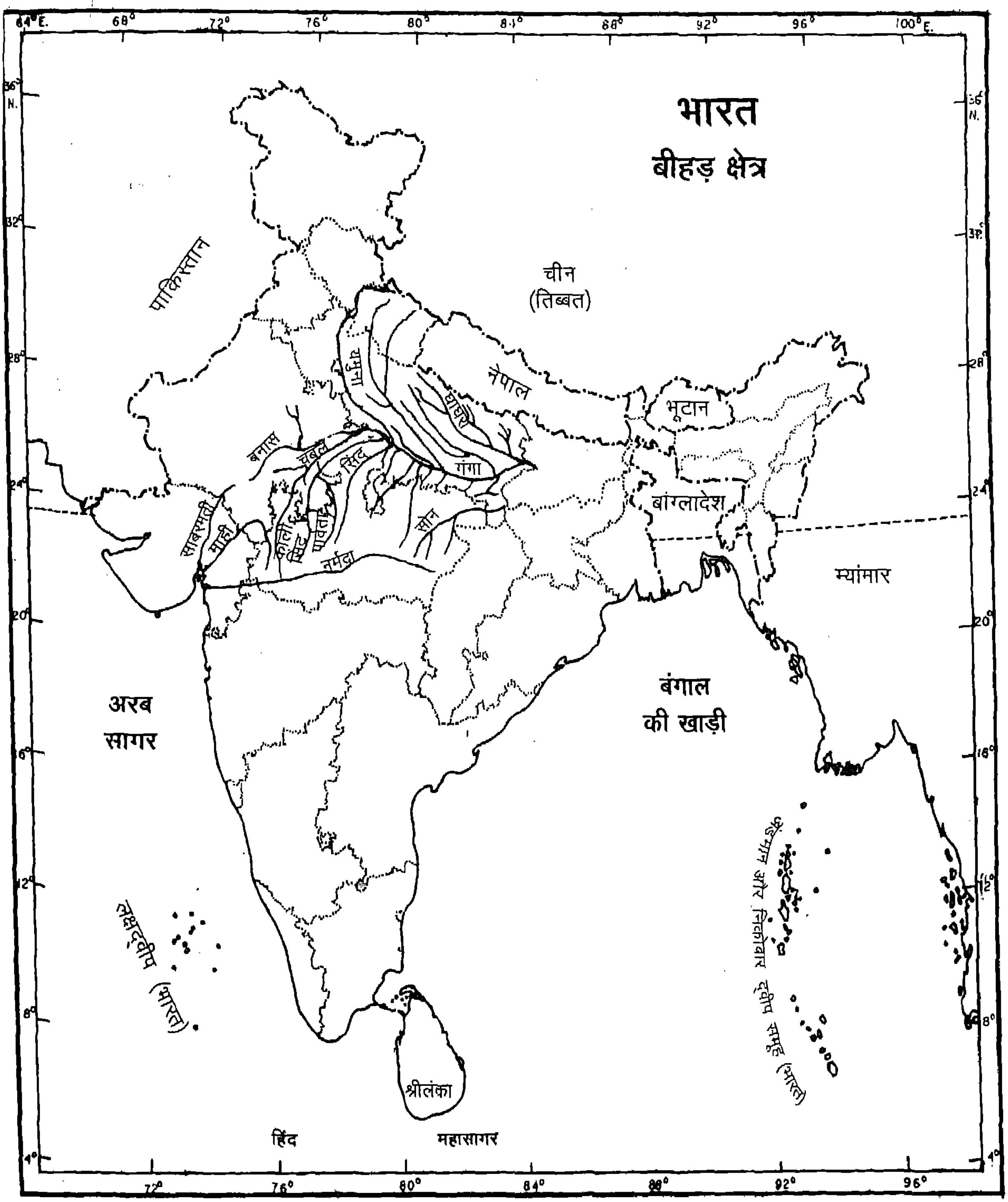
चंबल नदी की द्रोणी में बीहड़ (Ravines) बहुत विस्तृत हैं। मध्य प्रदेश के ग्वालियर, मोरैना और भिंड जिलों में तथा उत्तर प्रदेश के आगरा, इटावा और जालौन जिलों में बीहड़ 6 लाख हैक्टेयर भूमि में फैले हैं (चित्र 6.2)। तमिलनाडु के दक्षिणी व उत्तरी अर्काट, कन्याकुमारी, तिरूचिरापल्ली, चिंगलीपुत, सेलम और कोयंबतूर जिलों में भी बीहड़ खूब हैं। पश्चिमी बंगाल के पुरूलिया जिले की कंगसाबती नदी के ऊपरी जलग्रहण क्षेत्रों में अनेक अवनालिकाएँ (gullies) और बीहड़ हैं। देश की लगभग 8,000 हैक्टेयर भूमि प्रतिवर्ष बीहड़ बन जाती है।

भारत की कृषि भूमि में से 80,000 हैक्टेयर भूमि अब तक बेकार हो गई है तथा इससे भी बड़ा क्षेत्र प्रतिवर्ष मृदा अपरदन के कारण कम उत्पादक हो जाता है। मृदा अपरदन भारतीय कृषि के लिए एक राष्ट्रीय संकट बन गया है। इसके दुष्प्रभाव अन्य क्षेत्रों में भी दिखाई पड़ते हैं। नदी की घाटियों में अपरदित पदार्थों के जमा होने से उनकी जल-प्रवाह क्षमता घट जाती है, इससे प्रायः बाढ़ें आती हैं तथा कृषि-भूमि को क्षति पहुँचती है। उदाहरण के लिए तमिलनाडु के तिरूचिरापल्ली में कावेरी नदी का तल क्रमशः उपर उठ गया है। इसके परिणामस्वरूप सिंचाई के पुराने जल-कपाट और अपवाह धाराएँ अवरूद्ध हो गई हैं। बह्मपुत्र नदी के उथले होने से प्रतिवर्ष बाढ़ें आती हैं। तालाबों में गाद जमा होना, मृदा अपरदन का अन्य गंभीर परिणाम है। देश के विभिन्न भागों में अनेक तालाबों में प्रतिवर्ष गाद जमा हो जाती है।

चंबल घाटी के बीहड़ों का विस्तार तथा बीसवीं शती में उजड़े गाँवों की संख्या

जिले	*बीहड़ (हैक्टेयर)*	*कुल भूमि में बीहड़ों का प्रतिशत*	*गाँव*	*उजड़े गाँव*
भिंड	1,19,000	26	956	57
मोरैना	1,92,000	16	1,429	172
ग्वालियर	1,08,000	20	855	90
जालौन	79,000	17	1,155	201
इटावा	93,000	21	1,533	83
आगरा	1,06,000	22	1,230	53

भारत में मृदा अपरदन के दो सबसे अधिक सक्रिय कारक हैं : पवन और प्रवाहित जल। पवन द्वारा अपरदन : गुजरात, राजस्थान और हरियाणा के शुष्क और अर्धशुष्क क्षेत्रों में सामान्य रूप से होता है। भारी मृदाओं की तुलना में हल्की मृदाओं पर पवन-अपरदन का अधिक प्रभाव पड़ता है। पवन द्वारा उड़ाकर लाया गया बालू समीप की कृषि भूमि पर फैलकर जमा हो जाता है और उसकी



चित्र 6.2 भारत : बीहड़ क्षेत्र

उर्वरता को नष्ट कर देता है। जल-अपरदन अपेक्षाकृत अधिक गंभीर है। इससे भारत के विभिन्न भाग विस्तृत रूप से प्रभावित हैं। जल-अपरदन के मुख्यतः दो रूप हैं : परतदार अपरदन और अवनालिका अपरदन। समतल भूमि पर मूसलाधार वर्षा के बाद परतदार अपरदन होता है। इसमें मृदा के हटने का आसानी से पता ही नहीं चलता है। तीव्र ढालों पर सामान्यतः अवनालिका अपरदन होता है। वर्षा के द्वारा अवनालिकाएँ गहरी होती जाती हैं। ये कृषि भूमि को छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँट देती है। इससे भूमि खेती के लिए अनुपयुक्त हो जाती है।

मृदा के गुण ह्रास में अनेक कारकों का योगदान रहता है। उदाहरणार्थ, जब जंगल काट दिए जाते हैं, तब मृदा में ह्यूमस की आपूर्ति ठप्प हो जाती है। यही नहीं, मृदा की ऊपरी परत को हटाने में प्रवाहित जल की क्षमता बढ़ जाती है। यदि अपवाह तंत्र गड़बड़ा जाता है, तो जल भराव या मृदा की नमी का ह्रास होने लगता है। मृदा के अत्यधिक उपयोग से इसकी उर्वरता समाप्त हो जाती है। आर्द्र क्षेत्रों में प्रवाहित जल और शुष्क क्षेत्रों में पवन द्वारा मृदा के हटाए जाने को मृदा अपरदन कहते हैं। इसके विपरीत इसके जैव और खनिज तत्त्वों के हटाए जाने को मृदाक्षय कहते हैं। मृदा के दुरूपयोग से इसका अपक्षरण होता है।

मृदा अपरदन, क्षय और अपक्षरण में लिप्त कारक हैं : प्रवाहित जल, पवन, हिम, जीव-जंतु और मानव। मानव वनोन्मूलन अति चराई और कृषि के अवैज्ञानिक तरीकों से मृदा के पारितंत्र को अस्त-व्यस्त कर देता है। विरल वनस्पति वाले क्षेत्रों और तीव्र ढालों पर विशेषरूप से ऊबड़-खाबड़ भूमि पर तथा नदी भागों के साथ-साथ प्रायः बीहड़ दिखाई पड़ जाते हैं। कोसी नदी के द्वारा किया गया अपरदन कुख्यात हो गया है। राजस्थान के शुष्क प्रदेश पवन-अपरदन की चपेट में हैं। गहन कृषि और अतिचराई अपरदन और मरूस्थलीकरण की प्रक्रियाओं को तेज़ कर देते हैं।

वनोन्मूलन मृदा अपरदन के प्रमुख कारकों में से एक है। पौधों की जड़ें मृदा को बांधे रखकर अपरदन को रोकती है। पत्तियाँ और टहनियाँ गिरा कर वे मृदा में ह्यूमस की मात्रा में वृद्धि करते हैं। वास्तव में संपूर्ण भारत में वनों का विनाश हुआ है। लेकिन देश के पहाड़ी भागों, विशेषरूप से हिमाचल प्रदेश और पश्चिमी घाट पर मृदा अपरदन में इसका बड़ा हाथ है।

भारत के सिंचित क्षेत्रों में कृषि योग्य भूमि का काफी बड़ा भाग अति सिंचाई के प्रभाव से क्षारीय होता जा रहा है। मृदा के निचले संस्तरों में जमा हुआ नमक धरातल के ऊपर आकर उर्वरता को नष्ट कर देता है। रासायनिक उर्वरक भी मृदा के लिए हानिकारक है। जब तक मृदा को पर्याप्त ह्यूमस नहीं मिलता, रसायन इसे कठोर बना देते हैं तथा अंततोगत्वा इसकी उर्वरता घट जाती है। हरित-क्रांति के पहले लाभ भोगी, नदी घाटी योजनाओं के कमान के क्षेत्रों में यह समस्या बहुत अधिक है। कुछ अनुमानों के अनुसार भारत की कुल भूमि का लगभग आधा भाग एक सीमा तक अपक्षरण से प्रभावित है। राजस्थान और उसके आस-पास के क्षेत्रों में पवन-अपरदन और परिणामी मरूस्थलीकरण का विस्तृत प्रभाव है। हिमालयी क्षेत्र, पश्चिमी घाट, असम की पहाड़ियाँ और छोटा नागपुर के पठार पर प्रवाहित जल के द्वारा हुआ अपरदन अत्यधिक व्यापक है।

मृदा के अपरदन के अनेक दुष्प्रभाव हैं। इनमें से कुछ हैं : उर्वर मृदा का हटाया जाना, अचानक विनाशकारी बाढ़ों का आना, नदी के तलों में गाद भर जाना, मृदा की नमी में कमी आना।

भारत में बीहड़ों का क्षेत्रफल (लाख हैक्टेयर में)

राज्य	*क्षेत्रफल*	*राज्य*	*क्षेत्रफल*
उत्तर प्रदेश	12.30	पंजाब	1.20
मध्य प्रदेश	6.83	बिहार	6.00
राजस्थान	4.52	तमिलनाडु	0.60
गुजरात	4.00	पश्चिम बंगाल	1.04
महाराष्ट्र	0.20		

मृदा संरक्षण

यदि मृदा अपरदन और मृदाक्षय मानव द्वारा किया जाता है, तो स्पष्टतः मानवों द्वारा ही इसे रोका भी जा सकता है। संतुलन बनाए रखने के प्रकृति के अपने नियम हैं। मनुष्य इन नियमों का उल्लंघन करता है और मृदा अपरदन तथा क्षय जैसी समस्याओं को जन्म देता है। संतुलन बिना बिगाड़े भी प्रकृति मानवों को अपनी अर्थव्यवस्था का विकास करने के पर्याप्त अवसर प्रदान करती है। मृदा संरक्षण एक विधि है, जिसमें मिट्टी की उर्वरता बनाए रखी जाती है, मिट्टी के अपरदन और क्षय को रोका जाता है और मिट्टी की अपक्षरित दशाओं को सुधारा जाता है।

मृदा अपरदन वास्तव में मनुष्यकृत समस्या है। किसी भी तर्कसंगत समाधान में पहला काम ढालों की कृषि योग्य खुली भूमि पर खेती को रोकना है। 15 से 25 प्रतिशत ढाल वाली भूमि का उपयोग कृषि के लिए नहीं होना चाहिएं। यदि ऐसी भूमि पर खेती करना जरूरी हो जाए, तो इस पर सावधानी से सीढ़ीदार खेत बना लेने चाहिए। भारत के विभिन्न भागों में, अति चराई और झूम कृषि ने भूमि के प्राकृतिक आवरण को दुष्प्रभावित किया है। इसी कारण विस्तृत क्षेत्र अपरदन की चपेट में आ गए हैं। ग्रामवासियों को इनके दुष्परिणामों से अवगत करवा कर इन्हें (अति चराई और झूम कृषि) नियमित और नियंत्रित करना चाहिए। समोच्च रेखा के अनुसार मेड़बंदी, समोच्च रेखीय सीढ़ी दार खेती बनाना, नियमित वानिकी, नियंत्रित चराई, वरणात्मक खरपतवार नाशन, आवरण फसलें उगाना, मिश्रित खेती तथा शस्यावर्तन, उपचार के कुछ ऐसे तरीके हैं, जिनका उपयोग मृदा अपरदन को कम काने के लिए प्रायः किया जाता है।

अवनालिका अपरदन को रोकने तथा उनके बनने पर नियंत्रण के प्रयत्न किए जाने चाहिए। अंगुल्याकार अवनालिकाओं को सीढ़ीदार खेत बनाकर खत्म किया जा सकता है। अवनालिकाओं के शीर्ष की ओर के विकास को नियंत्रित करने पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। इस कार्य को अवनालिकाओं को बंद करके, सीढ़ीदार खेत बनाकर या आवरण वनस्पति का रोपण करके किया जा सकता है।

मरूस्थलीय और अर्ध-मरूस्थलीय क्षेत्रों में कृषि योग्य भूमि पर बालू के टीलों के प्रसार को वनों की रक्षक मेखला बनाकर रोकना चाहिए। कृषि के अयोग्य भूमि को चराई के लिए चरागाहों में बदल देना चाहिए। बालू के टीलों को स्थिर करने के उपाय भी अपनाए जाने चाहिए।

भारत सरकार द्वारा स्थापित केंद्रीय मृदा संरक्षण बोर्ड ने देश के विभिन्न भागों में मृदा संरक्षण के लिए अनेक योजनाएँ बनाई हैं। ये योजनाएँ जलवायु की दशाओं, उच्चावच के लक्षणों तथा लोगों के सामाजिक व्यवहार पर आधारित हैं। ये योजनाएँ भी एक दूसरी से तालमेल बिना बनाए ही चलाई गई हैं। अतः मृदा संरक्षण का सर्वोत्तम उपाय भूमि उपयोग की समन्वित योजनाएँ ही हो सकती हैं। भूमि का उनकी क्षमता के अनुसार वर्गीकरण होना चाहिए, भूमि उपयोग के मानचित्र बनाए जाने चाहिए और भूमि का सर्वथा सही उपयोग किया जाना चाहिए। मृदा संक्षरण का निर्णायक दायित्व उन लोगों पर है, जो उसका उपयोग करते हैं और उससे लाभ कमाते हैं। लेकिन किसानों को इस बात के लिए तैयार करना चाहिए कि वे अपने खेतों की सीमाएँ समोच्च रेखीय समतलन के अनुसार बना लें। देश के पहाड़ी क्षेत्रों में समोच्च रेखीय मेड़ बंदी तथा समोच्च रेखीय सीढ़ीदार खेत निर्माण के द्वारा खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि की बहुत बड़ी संभावना है।

मृदा संरक्षण के कुछ महत्त्वपूर्ण और सुविज्ञात उपाय नीचे दिए गए हैं :

- वैज्ञानिक भूमि उपयोग अर्थात् भूमि का केवल उसी उद्देश्य के लिए उपयोग, जिसके लिए यह सबसे अधिक उपयुक्त है।
- वैज्ञानिक शस्यावर्तन।
- समोच्चरेखीय जुताई और मेड़बंदी।
- वनरोपण, विशेषरूप से नदी द्रोणियों के ऊपरी भागों में।
- आर्द्र प्रदेशों में अवनालिका अपरदन और मरूस्थलीय और अर्ध-मरूस्थलीय प्रदेशों में पवन-अपरदन रोकने के लिए अवरोधों का निर्माण।
- जैव खादों का अधिकाधिक उपयोग।
- बाढ़ सिंचाई के स्थान पर सिंचाई की फुहारा और टपकन विधियों का उपयोग।

अभ्यास

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित के उत्तर संक्षेप में दीजिए :
   (i) मृदा किसे कहते हैं ?
   (ii) यह कैसे बनती है ?
   (iii) मृदा निर्माण के प्रमुख कारकों के नाम बताइए।
   (iv) मृदा के तीन संस्तरों के नामों का उल्लेख कीजिए।
   (v) मृदाओं के भौतिक गुणों के नाम बताइए।
   (vi) मृदा अपरदन किसे कहते हैं ?
   (vii) बीहड़ किसे कहते हैं ?
   (viii) मृदा संरक्षण के तीन उपाय बताइए।
2. अंतर बताइए:
   (i) हल्की और भारी मृदाएँ
   (ii) गहरी और उथली मृदाएँ
   (iii) मंद और तीव्र ढाल
   (iv) मृदा अपरदन और मृदा संरक्षण।
3. काली मृदाएँ किन्हें कहते हैं ? उनके निर्माण और विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
4. मृदा अपरदन से प्रभावित क्षेत्रों का वर्णन कीजिए। इसके लिए उत्तरदायी कारकों का उल्लेख करते हुए मृदाओं के संरक्षण के उपाय सुझाइए।
5. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए :
   (i) लैटराइट मृदाएँ
   (ii) काली मृदाएँ
   (iii) मरूस्थलीय मृदाएँ
   (iv) क्षारीय मृदाएँ।

परियोजना कार्य

6. भारत के रेखा मानचित्र पर निम्नलिखित की स्थिति दिखाइए:
   (i) लाल मृदाएँ
   (ii) पवन-अपरदन के क्षेत्र
   (iii) अवनालिका अपरदन का एक क्षेत्र
   (iv) झूम कृषि का एक क्षेत्र।

7 अध्याय

प्राकृतिक आपदाएँ और संकट

अपने निर्माण काल से ही पृथ्वी पर अनेक प्रकार के परिवर्तन होते रहे हैं। इनमें से कुछ धीमे तथा कुछ भयंकर और विध्वंसक होते हैं। मानव पर दुष्प्रभाव डालने वाले प्राकृतिक परिवर्तनों को प्राकृतिक आपदाएँ कहते हैं। इनमें से कुछ हैं: ज्वालामुखी विस्फोट, भूकंप, सागरकंप, सूखा, बाढ़, चक्रवात, मृदा अपरदन, अपवाहन (deflation), पंकप्रवाह, हिमधाव (snow avalanche) तथा ऐसी ही अन्य परिघटनाएँ। मानवीय क्रियाकलापों से निरपेक्ष, पर्यावरण में होने वाली प्राकृतिक प्रक्रियाएँ ही इनका मूल कारण हैं। यह सही है कि प्राकृतिक आपदाओं का मूल कारण प्राकृतिक प्रक्रियाओं से जुड़ा है, लेकिन आपदा की तीव्रता पर्यावरण में मानवकृत परिवर्तनों पर निर्भर करती है।

अंग्रेजी भाषा में प्राकृतिक आपदाओं (hazards) को प्राकृतिक संकट (disaster) भी कहा जाता है। फ्रैंच भाषा में डेस (des) का अर्थ बुरा (bad) तथा (aster) का अर्थ सितारे (stars) से है। प्राचीन काल में इन विनाशकारी और भयंकर प्राकृतिक परिवर्तनों को प्रकृति के साथ की गई छेड़-छाड़ के लिए प्रकृति द्वारा दिया गया दंड माना जाता था। आपदाओं और संकटों का एक-दूसरे के साथ निकट का संबंध है। कभी-कभी ये एक-दूसरे के पर्यायवाची के रूप में भी प्रयोग किए जाते हैं। आपदा एक आशंका है, तो संकट एक घटना है। संकट दुःखद घटना, त्रासदी या आपदा का परिणाम है। मानव जीवन और अर्थव्यवस्था को भारी हानि पहुँचाने वाली प्राकृतिक आपदाओं को संकट और महाविपत्ति (catastrophes) कहते हैं। विश्व बैंक ने संकट (disaster) को इस प्रकार परिभाषित किया हैं। संकट, अल्पावधि की एक असाधारण घटना है, जो देश की अर्थव्यवस्था को गंभीर रूप से बिगाड़ देती है। उत्पत्ति के आधार पर संकटों का वर्गीकरण किया जा सकता है, जैसे : मौसमी संकट (प्रभंजन, चक्रवात, बाढ़, सूखा); स्थलाकृतिक संकट (भू-स्खलन, हिमधाव); विवर्तनिक संकट (भूकंप, ज्वालामुखी); उत्पीड़क संकट (फसलों पर टिड्डी दल का आक्रमण, महामारियाँ) और मानवकृत संकट (औद्योगिक दुर्घटनाएँ, अणुबम)। कुछ संकट तीव्र होते हैं और बिना चेतावनी के आते हैं। ये थोड़े से ही समय में विनाशलीला के चिह्न छोड़ जाते हैं। ऐसे संकटों में जन-जीवन और संपात्ति के बचाव के बहुत कम पूर्वोपाय किए जा सकते हैं। कुछ संकट धीमी गति से आते हैं। ऐसे में जन-जीवन और संपात्ति को बचाने या हानि को कुछ कम करने के लिए कुछ पूर्वोपाय किए जा सकते हैं। प्राकृतिक आपदाओं के दो पक्षों पर ध्यान देना जरूरी है – इनके द्वारा संकट की संभावनाएँ तथा इनके वास्तविक विध्वंसात्मक परिणाम। सभी संभावित खतरनाक आपदाएँ संकटपूर्ण नहीं होती हैं।

संकटों की तीव्रता जिन कारकों से नियंत्रित होती हैं, वे हैं : (i) ऐतिहासिक और सामाजिक दशाएँ तथा किसी देश या प्रदेश के आर्थिक विकास का स्तर उनकी छेद्यता को प्रभावित करता है। विकासशील देशों में संभावित सामान्य-आपदा संकट पूर्ण हो सकती है। निर्धन देश की तुलना में अमीर देश सकंटों को आसानी से झेल जाते हैं। (ii) भूमि के उपयोग के प्रकार पर प्राकृतिक आपदाओं से हो सकने वाली हानि की मात्रा निर्भर करती है। 'क्या अरक्षित है, 'कैसे अरक्षित है', इनसे ही हानि की मात्रा निर्धारित होती है। सघन जनसंख्या वाले क्षेत्र की तुलना में मरूस्थल में भूकम्प द्वारा कम हानि होती है। (iii) किसी देश या प्रदेश की भौगोलिक स्थिति पर संकट के क्षेत्र का विस्तार निर्भर करता है। देश के मध्य भाग में स्थित मध्य प्रदेश की तुलना में आंध्र प्रदेश और उड़ीसा के तटवर्ती क्षेत्र में चक्रवातों के आने की अधिक आशंका रहती है। (iv) यदि अलग-अलग करके विचार किया जाए, तो प्राकृतिक आपदाएँ इतनी खतरनाक नहीं प्रतीत होती हैं। खाद्यानों, चारे, जल और परिवहन के साधनों की कमी से युक्त क्षेत्र का सूखा बहुत संकट वाला होता है। आधुनिक वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक प्रगति तथा पर्यावरण पर मानवीय क्रियाकलापों के बढ़ते प्रभाव को ध्यान में रखकर ही किसी भी प्राकृतिक आपदा की समस्या का अध्ययन करना उचित है। प्राचीन काल में प्राकृतिक आपदाओं के सामने मानव असहाय था।

आजकल इनमें से कुछ की भविष्यवाणी संभव है। इनके क्षण-क्षण बदलते रूप की जानकारी और उसका प्रसारण भी संभव है। उचित योजनाएँ बनाकर धन-जन की हानि को कम किया जा सकता है।

प्राकृतिक आपदा, महाविनाशकारी, अप्रत्याशित और अनियंत्रणीय परिघटना है। लोगों, भवनों और आर्थिक संपदाओं के आस-पास आने वाली आपदाएँ बहुत खतरनाक होती हैं। ये आपदाएँ जैव, भू-वैज्ञानिक, भूकंपीय, जलविज्ञान संबंधी या मौसमी दशाएँ या प्राकृतिक पर्यावरण की प्रक्रियाएँ होती हैं। ये आकस्मिक और शक्तिशाली होती हैं। भूकंप, चक्रवाती तूफान, आकस्मिक बाढ़, बादलों का फटना, सूखा आदि प्राकृतिक आपदाएँ हैं। नाभिकीय विस्फोट, आग, औद्योगिक या वाहनों से होने वाली दुर्घटनाएँ आदि, मानवीय क्रियाकलापों से उत्पन्न मानव प्रेरित आपदाएँ कही जाती हैं। इनसे भी धन-जन को भारी हानि होती है तथा मानवीय क्रियाकलाप गंभीर रूप से अस्त-व्यस्त हो जाते हैं।

भूकंप

भूकंप को महाविनाशकारी आपदा माना जाता है। इनसे प्रायः संकट की स्थिति पैदा होती है तथा इनके कारण अनेक लोग मौत के मुंह में चले जाते हैं और संपत्ति को व्यापक क्षति पहुँचती है। सबसे अधिक विनाशक भूकंप, विवर्तनिक हलचलों से पैदा होते हैं। इनका संबंध भूपर्पटी के बड़े पैमाने के तनावों से होता है। अविवर्तनिक उत्पत्ति के भी कुछ भूकंप हो सकते हैं। ज्वालामुखी विस्फोटों, चट्टानों के फटने, खानों के धंसने, जलाशय में जल के इकट्ठा होने से उत्पन्न भूकंप अविवर्तनिक भूकंपों के उदाहरण हैं। ऐसे भूकंपों से छोटे से क्षेत्र को ही हानि होती है।

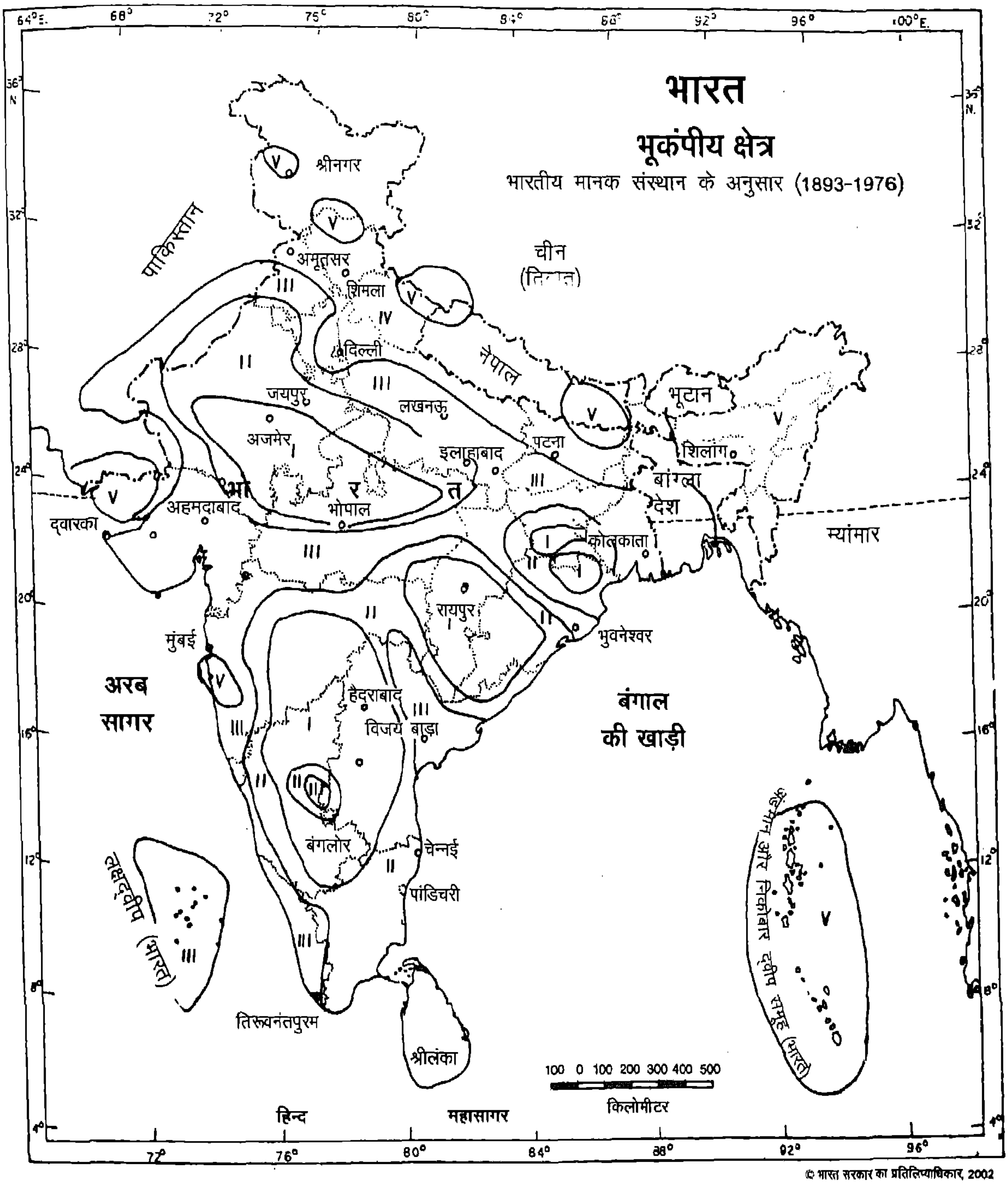
किसी भूकंप की शक्ति को मापने की दो विधियाँ हैं: परिमाण और तीव्रता। रिक्टर पैमाने पर मापा गया परिमाण, किसी भूकंप द्वारा विकसित भूकंपीय ऊर्जा की माप होती है। भूकंप द्वारा होने वाली हानि की माप को तीव्रता कहते हैं। विभिन्न वर्षो में आए भारत के लगभग 1,200 भूकंपों के अध्ययन के आधार पर भारतीय मौसम विभाग ने देश को पाँच क्षेत्रों में विभाजित किया हैं – क्षेत्र I : खतरा-विहीन, क्षेत्र II कम खतरा, क्षेत्र III : मध्यम खतरा, क्षेत्र IV : अधिक खतरा और क्षेत्र V : अत्यधिक खतरा (चित्र 7.1)। देश के लगभग 55 प्रतिशत भाग में भूकंप के आने की आशंका रहती है। लेकिन देश के विभिन्न भागों में आने वाले भूकंपों की तीव्रता एक समान नहीं होती है। नवीन अनुभवों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारत का कोई भी भाग भूकंप से अप्रभावित नहीं है।

भूकंप की दृष्टि से भारत के अत्यधिक खतरे वाले क्षेत्र हैं : हिमालय पर्वत, उत्तर-पूर्वी भारत, कच्छ, रत्नागिरि के आस-पास का पश्चिमी तटीय तथा अंडमान और निकोबार द्वीप समूह। अधिक खतरे वाले क्षेत्र हैं : गंगा का मैदान और पश्चिमी राजस्थान। यह सही है कि भूकंपों को न तो रोका जा सकता है और न ही उनकी सही-सही भविष्यवाणी की जा सकती है,लेकिन भवनों को भूकंप रोधी बनाकर भूकंप द्वारा धरातल में होने वाली हलचलों का मुकाबला किया जा सकता है। भूकंपरोधी भवनों का अध्ययन अब अभियांत्रिकी (इंजीनियरी) का बहु-विषयी क्षेत्र बन गया है।

भूकंप के परिणाम : केवल बसे हुए क्षेत्रों में आने वाला भूकंप ही आपदा या संकट बनता है। भूकंप का प्रभाव सदैव विध्वंसक होता है। भूकंप के कारण प्राकृतिक पर्यावरण में कई तरह से परिवर्तन हो जाते हैं। भूकंपीय तरंगों से धरातल में दरारें पड़ जाती हैं, जिनसे कभी-कभी पानी के फव्वारे छूटने लगते हैं। इसके साथ बड़ी भारी मात्रा में रेत बाहर आ जाता है तथा इससे रेत के बांध बन जाते हैं। क्षेत्र के अपवाह तंत्र में उल्लेखनीय परिवर्तन भी देखे जा सकते हैं। नदियों के मार्ग बदल जाने से बाढ़ आ जाती है। पहाड़ी क्षेत्रों में भू-स्खलन हो जाते हैं तथा इनके साथ भारी मात्रा में चट्टानी मलबा नीचे आ जाता है। इससे बृहतक्षरण होता है। हिमानियाँ फट जाती हैं तथा इनके हिमधाव सुदूर स्थित स्थानों पर बिखर जाते हैं।

नए जलप्रपातों और सरिताओं की उत्पत्ति भी हो जाती है। भूकंपीय आपदाओं से मनुष्य निर्मित भवन बच नहीं पाते हैं। सड़कें, रेलमार्ग, पुल और टेलीफोन की लाइनें टूट जाती हैं। गगनचुंबी भवनों और सघन जनसंख्या वाले कस्बों और नगरों पर भूकंपों का सबसे बुरा असर होता है।

भूकंप के प्रभाव को कम करना : भूकंप के प्रभाव को कम करने का सबसे अच्छा तरीका हैः इसकी निरंतर खोज-खबर रखना तथा लोगों को इसके आने की संभावना की सूचना देना। इससे आशंकित क्षेत्रों से लोगों को



भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र में भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।
इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शायी गयी अन्तर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।
इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य, और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई है।
आन्तरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।
इस मानचित्र में दर्शित अक्षरविन्यास विभिन्न सूत्रों द्वारा प्राप्त किए हैं।

चित्र 7.1 भारत : भूकंपीय क्षेत्र

हटाया जा सकता है। भूकंप से अत्यधिक खतरे वाले क्षेत्र में भूकंप रोधी भवन बनाने की आवश्यकता है। भूकंप की आशंका वाले क्षेत्रों में लोगों को भूकंप रोधी भवन और मकान बनाने की सलाह दी जा सकती है।

चक्रवात

600 कि.मी. या इससे अधिक व्यास वाले चक्रवात, पृथ्वी के वायुमंडलीय तूफानों में सबसे अधिक विनाशक और भयंकर होते हैं। भारतीय उपमहाद्वीप, संसार में चक्रवातों द्वारा सबसे अधिक दुष्प्रभावित क्षेत्र हैं। संसार में आने वाले चक्रवातों में से 6 प्रतिशत यहीं आते हैं।

आज तक भी उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों की उत्पात्ति के विषय में कोई भी सर्वमान्य सिद्धांत नहीं बना है। जब कमजोर रूप से विकसित कम दबाव के क्षेत्र के चारों ओर तापमान की क्षैतिज प्रवणता बहुत अधिक होती है, तब उष्ण कटिबंधीय चक्रवात बन सकता है। चक्रवात ऊष्मा का इंजिन है तथा इसे सागरीय तल से ऊष्मा मिलती है। संघनन के बाद मुक्त ऊष्मा, चक्रवात के लिए गतिज ऊर्जा (kinetic energy) में बदल जाती है।

चक्रवात की उत्पात्ति की निम्नलिखित अवस्थाएँ हैं :

1. महासागरीय तल का तापमान 26^0 से. से अधिक।
2. बंद समदाब रेखाओं का आविर्भाव।
3. निम्न वायु दाब, 1,000 मि.बा. से कम होना।
4. चक्रीय गति के क्षेत्र, प्रारंभ में इनके अर्धव्यास 30 से 50 कि.मी.,फिर क्रमशः 100-200 कि.मी. और 1,000 कि.मी. तक भी बढ जाते हैं ।
5. ऊर्ध्वाधर रूप में पवन की गति का प्रारंभ में 6 कि.मी. की ऊँचाई तक बढ़ना तथा इसके बाद और भी ऊँचा उठना।

उष्ण कटिबंधीय चक्रवात की संरचना : उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों में बहुत अधिक दाब प्रवणता (14-17 मि.बा./100 कि.मी.) होती है। कुछ चक्रवातों में यह इससे भी अधिक ऊँची अर्थात् 60 मि.बा./100 कि.मी. होती है। पवन पट्टी केंद्र से 10 से 150 कि.मी. या कभी-कभी इससे भी अधिक दूरी में फैली होती है। धरातल पर पवन का चक्रवातीय परिसंचरण होता है तथा ऊँचाई पर यह प्रति चक्रवातीय बन जाता है। उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों की क्रोड कोष्ण होती है। चक्रवात का केंद्र सामान्यतः मेघ विहीन होता है। इसे चक्रवात की आँख कहते हैं। चक्रवात की आँख बहुत ऊँचाई तक फैले ऊर्ध्वाधर बादलों से घिरी होती है। उष्ण कटिबंधीय चक्रवात से सामान्यतः 50 से.मी. से अधिक वर्षा होती है। कभी-कभी वर्षा 100 से.मी. से भी अधिक हो जाती है।

चक्रवात अपने पूरे तंत्र के साथ लगभग 20 कि.मी. प्रति घंटा औसत गति से आगे बढ़ता है। जैसे-जैसे चक्रवात स्थल पर बढ़ता जाता है, समुद्री जल के अभाव में इसकी ऊर्जा घटती जाती है। इससे चक्रवात समाप्त हो जाता है। चक्रवात की जीवन अवधि 5 से 7 दिनों की होती है।

प्रभंजन की गतिवाली पवनों, प्रभंजन की लहरों तथा मूसलाधार वर्षा से उत्पन्न बाढ़ों के कारण उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों का विनाशकारी प्रभाव पड़ता है। अधिकतर तूफान अत्यंत तेज पवनों और तूफानी लहरों के द्वारा भारी क्षति पहुँचाते हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में ढाल पर अत्यंततीव्रता से बहने वाला वर्षाजल अपने सामने आने वाली हर वस्तु को अपनी चपेट में लेकर भारी नुकसान करता है। तूफानी लहरों की तीव्रता, पवन की गति, दाब प्रवणता, समुद्र की तली की स्थलाकृतियों तथा तटरेखा की बनावट पर निर्भर करती है। अनेक क्षेत्रों में चक्रवातों की चेतावनी व्यवस्था के बावजूद, उष्ण कटिबंधीय चक्रवात धन-जन को अपार क्षति पहुँचाते हैं।

सारणी 7.1 बंगाल की खाड़ी और अरब सागर की चक्रवातीय तूफानों की आवृत्ति को प्रकट करती है। सारणी से पता चलता है कि अरब सागर की तुलना में बंगाल की खाड़ी में तूफानों की संख्या कहीं अधिक है। बगांल की खाड़ी और अरब सागर में अधिकतर तूफान अक्तूबर और नवंबर के महीनों में आते हैं। मानसून ऋतु का प्रारंभिक भाग भी बंगाल की खाड़ी और अरब सागर में उष्ण कटिबंधीय तूफानों की उत्पत्ति के अनुकूल है। मानसून-ऋतु में अधिकतर चक्रवात 10^0 उ. तथा 15^0 उ. अक्षांशों के मध्य ही उत्पन्न होते हैं। जून में बंगाल की खाड़ी के लगभग सभी तूफान 92^0 पू. देशांतर के पश्चिम में 16^0 उ. और 21^0 उ. अक्षांश के मध्य जन्म लेते हैं। जुलाई में खाड़ी के तूफानों का जन्म 18^0 उ. अक्षांश के उत्तर में तथा 90^0 पू. देशांतर के पश्चिम में होता है। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि जुलाई के सभी तूफान पश्चिमी पथ का अनुसरण करते हैं। ये सामान्यत 20^0 उ. तथा 25^0 उ. अक्षांशों के मध्य तक ही सीमित रहते हैं तथा हिमालय की

सारणी 7.1 : भारत में चक्रवातीय तूफानों की आवृत्ति

महीना	*बंगाल की खाड़ी*	*अरब सागर*
जनवरी	4 (1.3)	2 (2)
फरवरी	1 (0.3)	0 (0.0)
मार्च	4 (1.3)	0 (0.0)
अप्रैल	18 (5.7)	5 (6.1)
मई	28 (8.9)	13 (15.9)
जून	34 (10.8)	13 (15.9)
जुलाई	38 (12.1)	3 (3.7)
अगस्त	25 (8.0)	1 (1.2)
सितंबर	27 (8.6)	4 (4.8)
अक्तूबर	53 (16.9)	17 (20.7)
नवबंर	56 (17.8)	21 (25.6)
दिसबंर	26 (8.3)	3 (3.7)
योग	**314 (100.0)**	**82 (100.0)**

विशेष : कोष्ठकों में दी गई संख्याएँ तूफानों की आवृत्ति को प्रतिशत में व्यक्त करती हैं।

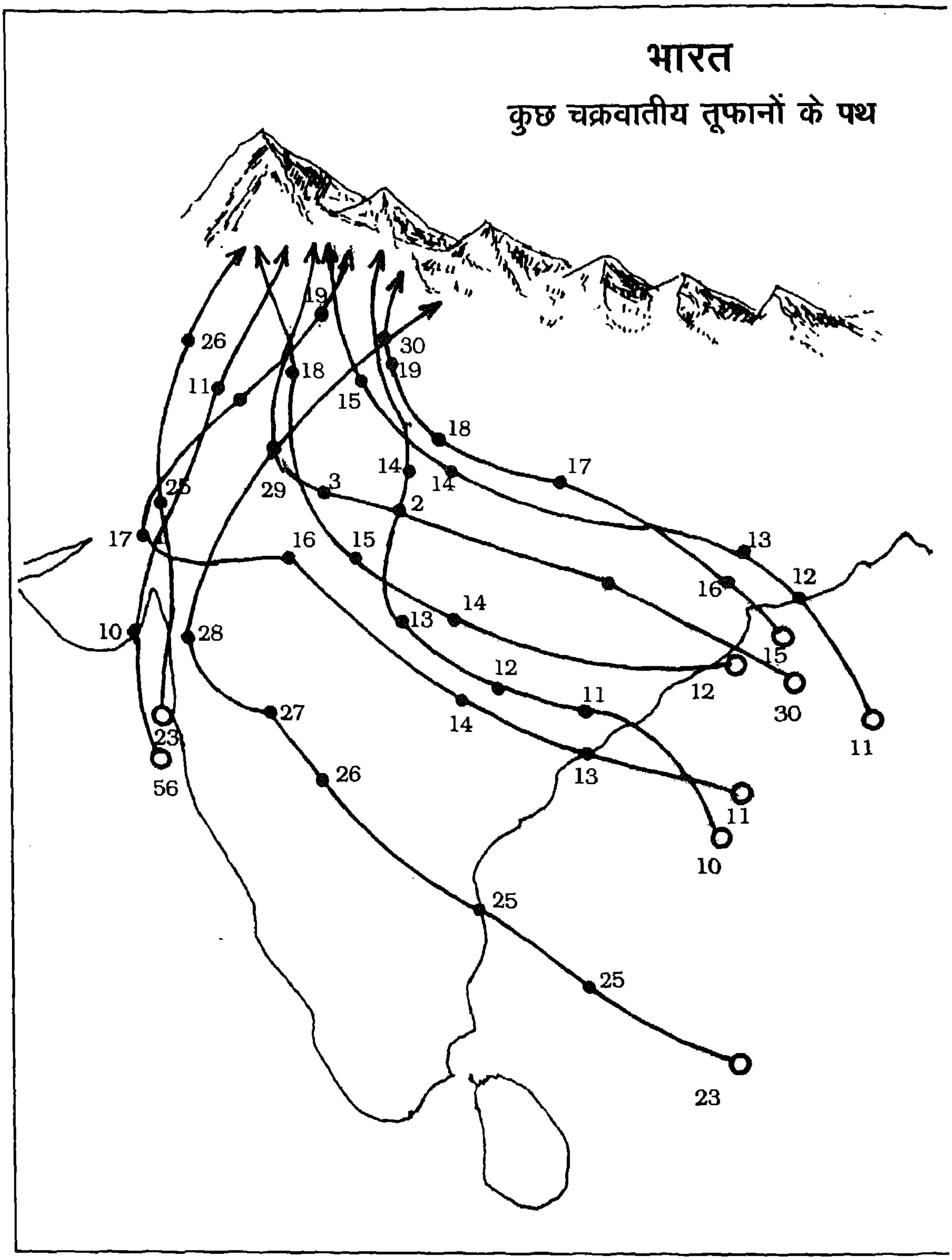
गिरिपद पहाड़ियों की ओर अपेक्षाकृत बहुत कम मुड़ते हैं (चित्र 7.2)।

क्षति का प्रभाव कम करना : अधिकतर चक्रवातीय क्षति, तेज पवनों, मूसलाधार वर्षा और समुद्र में उठने वाली ऊँची तूफानी, ज्वारीय लहरों के द्वारा होती है। पवनों की तुलना में चक्रवातीय वर्षा के कारण आई बाढ़ अधिक विनाशकारी होती है। आज चक्रवातों की चेतावनी व्यवस्था में उल्लेखनीय सुधार होने से तथा पर्याप्त और सामायिक कार्यवाही से चक्रवात से मरने वालों की संख्या में कमी आई है। अन्य उपाय जैसे : चक्रवातों के आने के समय सुरक्षा के लिए आश्रय स्थलों के तटबंधों, बांधों, जलाशयों के निर्माण से और तट पर वन रोपण से भी बहुत सहायता मिलती है। फसलों और गो-पशुओं के बीमे से भी लोगों को क्षति पूर्ति में काफी मदद मिलती है। उपग्रहों से प्राप्त चित्रों के द्वारा चक्रवात के पथ के बारे में चेतावनी देना अब संभव हो गया है। कम्प्यूटर द्वारा बनाए गए मॉडलों की सहायता से चक्रवात की पवनों की दिशा और तीव्रता तथा इसके पथ की दिशा की काफी हद तक सही भविष्यवाणी की जा सकती है।

बाढ़

भारत में प्रति वर्ष आने वाली बाढ़ें मानवीय दुर्दशा का मुख्य कारण है। जिन कई प्राकृतिक संकटों का देश अनुभव करता है, बाढ़ उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण है। बांग्लादेश के बाद संसार में बाढ़ प्रकोप से पीड़ित देशों में भारत का दूसरा स्थान है। सारे संसार में बाढ़ से होने वाली मौतों में से, 20 प्रतिशत मौतें भारत में तथा 50 प्रतिशत मौतें बांग्लादेश में होती हैं। इस तथ्य के बावजूद कि बाढ़ें प्राकृतिक संकट हैं, ये एक सामाजिक संकट बन जाती हैं, क्योंकि बाढ़ की भीषणता के प्रकोप को झेलने वाले लोग गरीब होते हैं। गरीब लोग ही प्रायः मानव बस्तियों की बाह्य सीमाओं पर बाढ़ प्रवण क्षेत्रों में रहते हैं। भारत की जनसंख्या की वृद्धि की तुलना में प्रतिवर्ष बाढ़ से पीड़ित होने वाले लोगों की संख्या अधिक तेजी से बढ़ी है। विगत कुछ वर्षों में बाढ़ ग्रस्त क्षेत्रों और क्षति में भी वृद्धि हुई है। लोगों द्वारा बाढ़ के मैदानों में अनधिकृत कब्जा ही इस वृद्धि का कारण है।

उत्तर प्रदेश, बिहार, और पश्चिम बंगाल में गंगा की द्रोणी, असम में ब्रह्मपुत्र की द्रोणी, तथा उड़ीसा में बैतरणी,



चित्र 7.2 भारत : कुछ चक्रवातीय तूफानों के पथ

उष्ण कटिबंधीय सागरों के अनियंत्रित हत्यारे : चक्रवात

सन् 1971 में 29-30 अक्तूबर की रात में उड़ीसा के उत्तरी तट पर एक भीषण चक्रवात आया था। इसने उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों के द्वारा पूर्वी तट पर होने वाली क्षति की ओर ध्यान आकर्षित किया था। इस चक्रवात के प्रभाव से 10,000 लोग मर गए थे। फसलों और संपत्ति को अपार क्षति पहुँची थी।

इसी तरह सन् 1977 में 19 नवंबर को एक भीषण चक्रवात आंध्र प्रदेश के तट पर आया था। इसके द्वारा रचे गए मौत के तांडव में 30,000 से अधिक लोग काल-कवलित हो गए थे। तेज गति वाले इस उष्ण कटिबंधीय चक्रवात से इतनी ऊर्जा मुक्त हुई थी, जितनी ऊर्जा 200 हाइड्रोजन बमों के विस्फोट से मुक्त होती है। पेड़ों की पत्तियाँ और शाखाएँ चाकलेटी या काले रंग की हो गई थीं। तटीय क्षेत्रों में 10 मी. ऊँची समुद्री लहरें उठ रही थीं। इन्होंने हजारों वर्ग कि.मी. कृषि-भूमि को खारे पानी में डुबो दिया था।

29 अक्तूबर 1999 को उड़ीसा तट पर आया चक्रवात, बंगाल की खाड़ी के मध्य 25 अक्तूबर को जन्मा था। इसके प्रभाव से तट पर स्थित पारादृवीप बंदरगाह से 15 कि.मी.दूर तक की भूमि 1.5 मी. गहरे पानी में डूब गई थी। समुद्र में ज्वारीय लहरें 4.5 मी. की ऊँचाई तक उठ रही थीं। चक्रवात ने पेड़ उखाड़ दिए, बिजली, टेलीफोन आदि के खंभे गिरा दिए तथा तट के बहुत बड़े क्षेत्र में बाढ़ का पानी भर दिया। यह 30,000 लोगो को निगल गया। इससे लाखों परिवार और बच्चे बेघर और बेसहारा हो गए। यह एक महा (सुपर) चक्रवात था।

ब्राह्मणी और सुवर्ण रेखा नदियों की द्रोणियाँ भारत में सबसे अधिक बाढ़ प्रवण द्रोणियाँ हैं। कभी-कभी आंध्र प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा और गुजरात में भी बाढ़ें आती हैं।

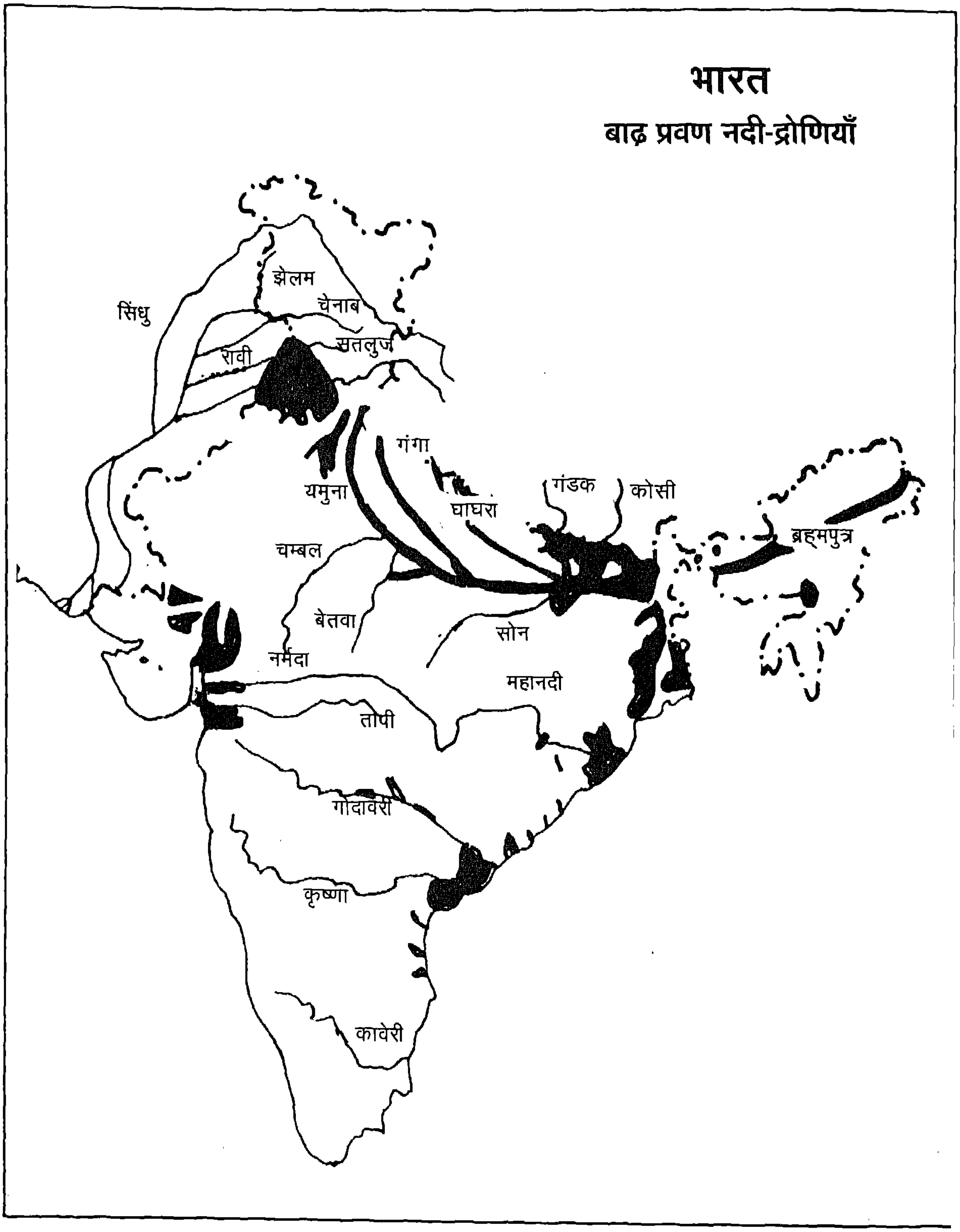
बाढ़ तब आती है जब नदी का पानी तटों के बाहर बहने लगता है और नदी के साथ-साथ फैले बाढ़ के मैदानों में फैल जाता है। भारत में ऐसी नदियों की बहुत बड़ी संख्या है, जो वर्षा ऋतु में उफन जाती है अन्य ऋतुओं में सूख जाती हैं। मानसून की ऋतु में उत्तर भारत और मध्य भारत की नदियों में प्रायः बाढ़ आ जाती है। अधिक धरातलीय जल-प्रवाह, भू-स्खलनों द्वारा जल-प्रवाह के अवरूद्ध होने से तथा नदियों के तल में अत्यधिक गाद के जमा हो जाने पर ही बाढ़ें आती हैं। शुष्क क्षेत्रों में आकस्मिक बाढ़ों का संबंध चक्रवाती तूफानों से है। चक्रवातों के आने से भारत का तटीय क्षेत्र बाढ़ग्रस्त हो जाता है। समुद्र के तल के ऊँचा उठने से या नदियों में ज्वारभित्ति के प्रवेश कर जाने से ज्वार नदमुख बाढ़ग्रस्त हो जाते हैं। नगरीय क्षेत्र के वर्षाजल को बहाकर ले जाने वाली नदियों में अत्यधिक जल-प्रवाह के कारण निम्न क्षेत्रों में बाढ़ आ जाती है।

1976 में स्थापित राष्ट्रीय बाढ़ आयोग के विचार से विगत कुछ वर्षो में बाढ़ों में वृद्धि हुई है। बाढ़ों में वृद्धि के मानवीय कारक ये हैं: वननाशन, अपवाह में अवरोध (पुलों, सड़कों, रेलमार्गों तथा विकास कार्यक्रमों की गलत योजनाओं से उत्पन्न), रिसाव में कमी (बहुत अधिक भूमि पर उद्योगों की स्थापना, तथा बड़े पैमाने पर गंदगी) और नदियों पर तटबंधों का निर्माण। देश का 4 करोड़ हैक्टेयर क्षेत्र बाढ़ प्रवण है। यह भारत के कुल क्षेत्रफल का आठवाँ भाग है (चित्र 7.3 और 7.4)।

बाढ़ नियंत्रण : बाढ़ें भारत के लिए कोई नई घटना नहीं हैं। प्राचीन काल से ही बाढ़ नियंत्रण के लिए नदियों



चित्र 7.3 भारत : बाढ़ प्रवण क्षेत्र



चित्र 7.4 भारत : बाढ़ प्रवण नदी-द्रोणियाँ

भारत में बाढ़ों से होने वाली क्षति : औसत वार्षिक आंकड़े

मानव मृत्यु	:	1,500
बाढ़ग्रस्त क्षेत्र	:	76.6 लाख हेक्टेयर
क्षतिग्रस्त फसलें	:	35.1 लाख हैक्टेयर
बाढ़ प्रभावित लोग	:	3.184 करोड़
क्षतिग्रस्त मकान	:	12 लाख
मृत गो-पशु	:	2 लाख
क्षतिग्रस्त संपात्ति	:	768 करोड़ रूपए

पर तटबंधों के निर्माण की परंपरा चली आ रही है। गोदावरी, कृष्णा और कावेरी नदियों के डेल्टाओं तथा सिंधु-गंगा के मैदान में बाढ़ो को रोकने के लिए तटबंध बनाए गए थे। लेकिन बाढ़ से सुरक्षा के राष्ट्र्व्यापी कार्यक्रम स्वतंत्रता के बाद ही प्रारंभ हुए हैं। 1947 में आजादी के समय भारत की विभिन्न नदियों पर 5,280 कि.मी. लंबे तटबंध थे। इनमें 3,500 कि.मी. लंबे तटबंध पश्चिम बंगाल के सुंदरबन में तथा 1,209 कि.मी.उड़ीसा में महानदी पर थे। इनसे 30 लाख हैक्टेयर भूमि को बाढ़ों से सुरक्षा मिलती थी।

सन 1954 में बाढ़ों का भीषण प्रकोप हुआ। इनसे उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल और असम में भारी विनाश हुआ। बाढ़ों से सुरक्षा के लिए बाँध और तटबंधों के निर्माण के दीर्घकालीन कार्यक्रम बनाए गए। केंद्र और राज्य स्तर पर बाढ़ नियंत्रण बोर्ड स्थापित किए गए। बाढ़ के प्रकोप को कम करने के लिए विविध उपायों के बावजूद, गंगा और ब्रह्मपुत्र की द्रोणियों में नियमित रूप से हर साल बाढ़ें आती हैं।

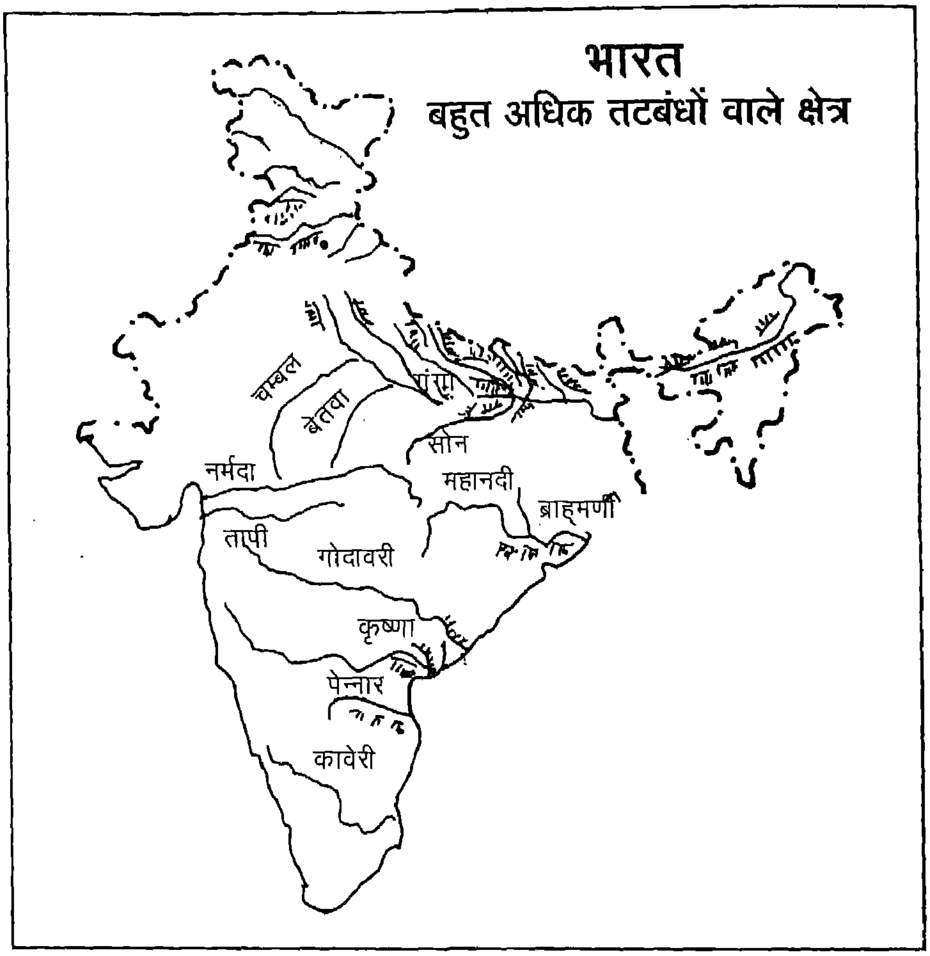
बाढ़ों का प्रभाव कम करना : उन्नीसवीं सदी के चौथे दशक में बाढ़ नियंत्रण का एकमात्र उपाय तटबंधों का निर्माण ही था (चित्र 7.5 और 7.6)। बांधों और जलाशयों को जल-प्रवाह के नियंत्रण और बाढ़ों को घटाने के लिए उपयोगी समझा जाता था। अब बाढ़ की भीषणता को कम करने के लिए अन्य अनेक उपाय हैं। नदियों के जलग्रहण क्षेत्रों और पहाड़ी ढालों पर वृक्षों की कटाई और वननाशन को रोकना जरूरी है। मौसम के पूर्वानुमानों का प्रसारण और बाढ़ चेतावनी व्यवस्था को नियमित किया जाना चाहिए।

सूखा

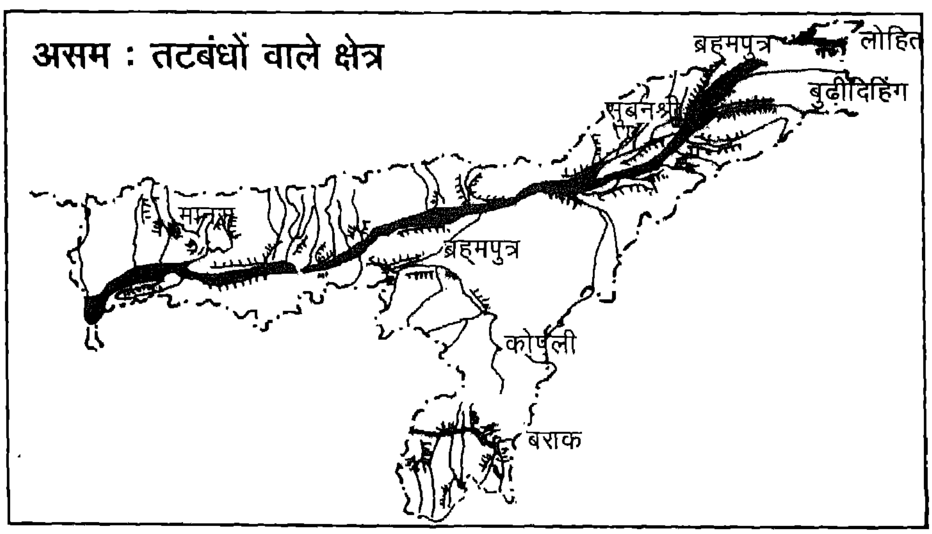
किसी क्षेत्र में होने वाली वर्षा की मात्रा तथा उस क्षेत्र की वैज्ञानिक और सामाजिक प्रगति के बावजूद उस क्षेत्र में सूखा पड़ सकता है। यह छोटे-छोटे क्षेत्रों या किसी बड़े क्षेत्र में भी पड़ सकता है। सूखा किसी भी समय पड़ सकता है, जिसके परिणामस्वरूप पीने के लिए, सिंचाई के लिए, उद्योगों और शहरी आवश्यकताओं के लिए जल का अभाव हो सकता है। सूखे के कारण मृदा में नमी की कमी हो जाती है तथा भूमि अनुत्पादक बन जाती है। इससे फसलें भी क्षतिग्रस्त हो जाती हैं। मानसून की विफलता या इसके निर्धारित समय पर न आने से या जल्दी आने से या

ब्रह्मपुत्र नदी में बाढ़

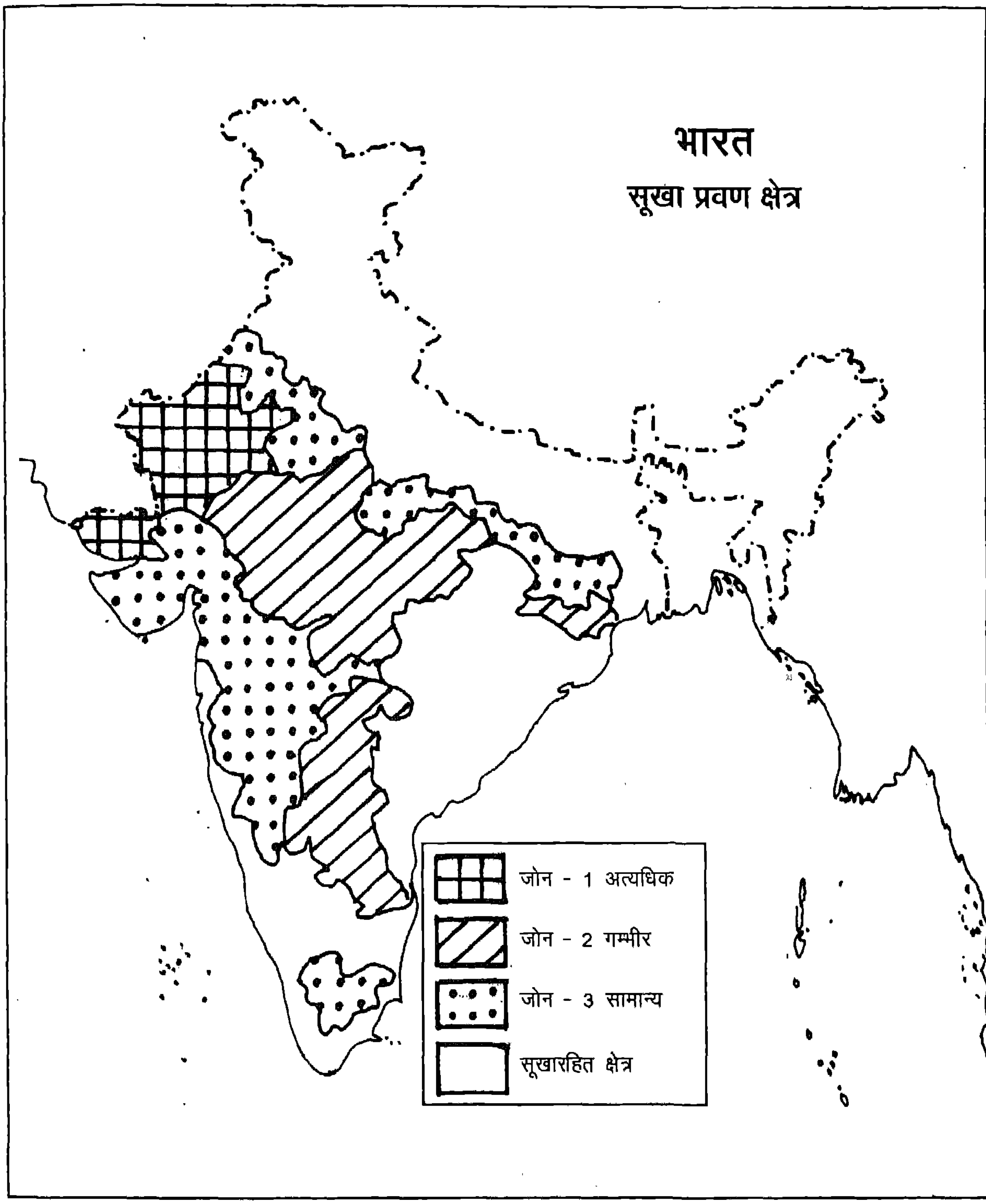
संसार की सबसे अधिक अवसादों को ढोने वाली नदियों में ब्रह्मपुत्र का पहला स्थान है । मानसून ऋतु में नदी प्रतिदिन औसतन 21.2 लाख टन अवसाद बहा कर ले जाती है । अनेक विशेषज्ञों ने आरोप लगाया है कि नदी में गाद की भारी मात्रा के लिए आस-पास की पहाड़ियों पर वननाशन और स्थानान्तरी कृषि जिम्मेदार है । ब्रह्मपुत्र की दक्षिण तट की सहायक नदियों की अपेक्षा उत्तरी तट की सहायक नदियों के ढाल तीव्र तथा धाराएँ उथली और गुंणित है, इनके तल में मोटा रेत भरा है । ये भारी मात्रा में गाद बहा कर ले जाती है तथा इनमें आकस्मिक बाढ़ आने की प्रवृत्ति है। दक्षिण तट की सहायक नदियों में ढाल की प्रवणता कम है। गिरिपद पहाड़ियों से लेकर ब्रह्मपुत्र में मिलने तक ये धाराएँ गहरी हैं। *इनके तल में चाक मिट्टी है। इसीलिए इनके तट और तल अधिक स्थिर हैं।*



चित्र 7.5 भारत : बहुत अधिक तटबंधों वाले क्षेत्र



चित्र 7.6 असम : तटबंधों वाले क्षेत्र



चित्र 7.7 भारत : सूखा प्रवण क्षेत्र

तटबंधों के दोष

तटबंधों के निर्माण से समय के साथ बाढ़ों की समस्या और अधिक भीषण होती जा रही है। सामान्य बुरे प्रभाव ये हैं :

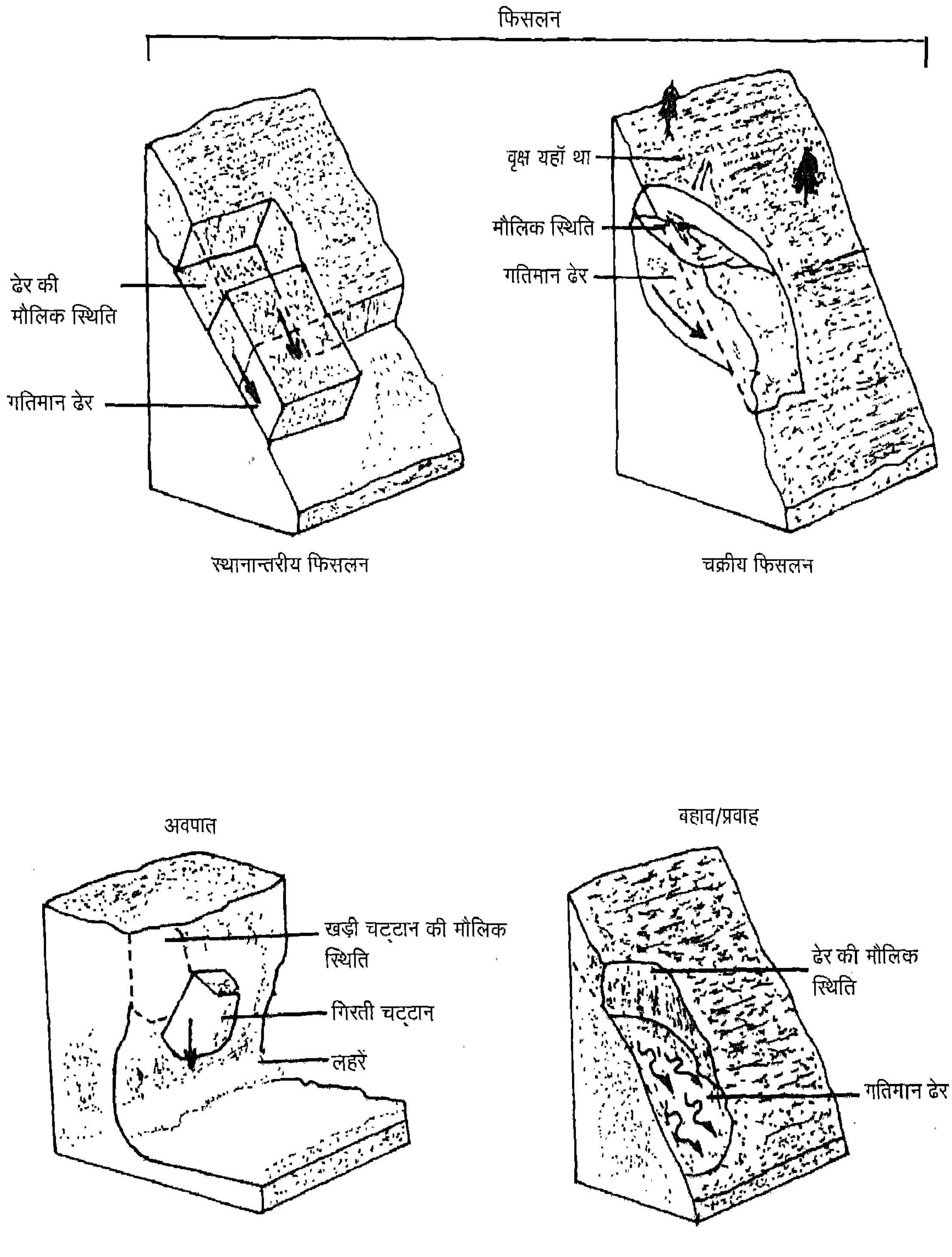
- प्रवाह मार्ग में कमी से बाढ़ के मैदान में भारी मात्रा में गाद और अवसाद भर जाते हैं। अंततोगत्वा तटबंध टूट जाते हैं।
- उपजाऊ गाद के निक्षेपों में कमी से प्राकृतिक उर्वरता घट जाती है। बाढ़ के पानी के एकत्र होने से आस-पास के बाढ़ के मैदानों में सुरक्षा की झूठी भावना पैदा हो जाती है।
- तटबंधों के निर्माण से अपवाह की संकुलता बढ़ जाती है। घोर बाढ़ के समय तटबंध के पीछे रहने वाले लोगों के लिए भयावह स्थिति पैदा हो जाती है।
- आस-पास के क्षेत्र में जल भराव एक आम लक्षण है।
- मार्ग में परिवर्तन से नदियाँ तटबंधों को तोड़ देती हैं।

बिना वर्षा किए वापस लौट जाने से सूखा पड़ता है। इन परिस्थितियों ने भारत के सूखा प्रवण क्षेत्रों का निरंतर विस्तार किया है। सूखा अब एक प्राकृतिक आपदा नहीं रह गई है, यह प्रत्यक्ष रूप से मानवीय क्रियाकलापों का प्रतिफल है। इससे उत्पन्न मानवीय पीड़ा की मात्रा बहुत अधिक है और निरंतर बढ़ रही है।

सूखे और शुष्कता में निकट का संबंध है और दोनों ही पानी की कमी का संकेत करते हैं। शुष्कता एक स्थायी दशा है, जबकि सूखा एक अस्थायी स्थिति है। शुष्क और अर्ध-शुष्क क्षेत्र सूखा प्रवण होते हैं। कारण, स्वरूप और विशेषता के आधार पर सूखे चार प्रकार के होते हैं : मौसमविज्ञान सूखा, जलविज्ञान सूखा, कृषीय सूखा और पारिस्थितिकीय सूखा। मौसम विज्ञान संबंधी सूखा तब पड़ता है जब वार्षिक वर्षा अपने सामान्य औसत से 25 प्रतिशत से कम होती है। जल विज्ञान संबंधी सूखा वह है जब पृष्ठीय जल तथा भूमिगत जल का स्तर गिर जाता है। कृषीय सूखा तब पड़ता है, जब पौधों की टिकाऊ वृद्धि के लिए आवश्यक मृदा के नमी के स्तर में कमी हो जाती है। पारिस्थितिकीय सूखा तब पड़ता है, जब प्राकृतिक पारितंत्र की उत्पादकता घट जाती है तथा प्राकृतिक पर्यावरण क्षतिग्रस्त हो जाता है। पर्यावरण की क्षति, बड़ी संख्या में गोपशुओं और वन्य जीवों की मृत्यु तथा वन के वृक्षों के सूखने में दिखाई पड़ती है।

सूखे का मुख्य कारण अपर्याप्त वर्षा तथा इसका असमान वितरण है। पश्चिमी और मध्य भारत को मानसून की ऋतु में होने वाली वर्षा की अनिश्चितता का सामना करना पड़ता है। यही नहीं, यहाँ वर्षा न केवल अनिश्चित बल्कि अपर्याप्त भी है। वर्षा की कमी जल विज्ञान संबंधी और कृषीय सूखे को प्रेरित करती है। भारत के कुल क्षेत्रफल के 19 प्रतिशत भाग को सूखे की मार झेलनी पड़ती है। इस क्षेत्र में देश की 12 प्रतिशत जनसंख्या रहती है। भारत के कुछ राज्यों में सूखा एक स्थायी लक्षण है। देश का लगभग 30 प्रतिशत क्षेत्र सूखाप्रवण है। इससे प्रतिवर्ष 5 करोड़ लोग पीड़ित होते हैं तथा कुल बोए गए क्षेत्र का 68 प्रतिशत भाग प्रभावित होता है (चित्र 7.7)। चित्र में तीन प्रकार के सूखा प्रवण क्षेत्र प्रदर्शित हैं : अत्यधिक, गंभीर और सामान्य।

सूखे के कारण खाद्यानों, जल और चारे की कमी हो जाती है, इन्हें क्रमशः अकाल, जलकाल और तिनकाल कहते हैं। कमी-कमी तीनों की कमी एक साथ हो जाती है और तब इसे त्रिकाल कहते हैं। सूखे के बाद होने वाले अकाल के कारण मानवों और पशु-धन का बड़े पैमाने पर पलायन शुरू हो जाता है। 1868-69 के अकाल के दौरान थार मरूस्थल में जोधपुर और पाली (एक नगर) के बीच 65 वर्ग कि.मी.भूमि के सभी गाँव उजड़ गए थे। 1812 और 1940 के अकाल के वर्षों में 30 से लेकर 80 प्रतिशत पशु मरे थे। सन् 1987 में निम्नलिखित 13 राज्यों में भयंकर सूखा पड़ा था। ये राज्य हैं : आंध्र प्रदेश, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, नागालैंड, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान,



चित्र 7.8 भू-स्खलन के विभिन्न प्रकार

तमिलनाडु और उत्तर प्रदेश। अंडमान और निकोबार द्वीप समूह तथा दिल्ली के केंद्रशासित प्रदेश भी इस भयंकर सूखे की चपेट में थे। इस सूखे से 2.6 लाख गाँव पीड़ित हुए थे, 4.54 करोड़ हैक्टेयर भूमि की फसलें नष्ट हो गई थीं तथा 28.5 करोड़ लोगों पर दुष्प्रभाव पड़ा था। सन् 2002 में मानसूनी वर्षा के न होने से भारत के मध्यवर्ती, पश्चिमी और दक्षिणी राज्यों में भयंकर सूखा पड़ा।

सूखे का प्रभाव कम करना : सूखे से राहत के लिए युद्ध स्तर पर योजनाएँ चलाई जानी चाहिए। भू-जल के भंडारों की खोज के लिए सुदूर संवेदन, उपग्रह मानचित्रण तथा भौगोलिक सूचना तंत्र (G.I.S.) जैसी विविध युक्तियों का उपयोग किया जाना चाहिए। लोगों के सक्रिय सहयोग से वर्षा के जल संग्रहण के समन्वित कार्यक्रम भी उपयोगी रहते हैं। अधिशेष से कमी वाले क्षेत्रों के लिए नदी जल का अंतर्द्रोणी स्थानान्तरण भी एक हद तक जल संकट को कम कर सकता है। कुछ अन्य उपाय ये हो सकते हैं : जल संग्रह के लिए छोटे बांधों का निर्माण, वनरोपण तथा सूखा रोधी फसलें उगाना। महाराष्ट्र की 'पानी पंचायत' और हरियाणा में सुखोमाजरी प्रयोग सूखे का मुकाबला करने के लिए लोगों द्वारा किए गए सुविज्ञात प्रयत्न हैं।

भू-स्खलन

आधार शैलों या आवरण प्रस्तर (regolith) का भारी मात्रा में तेजी से खिसकना ही भू-स्खलन है। जब पर्वतीय ढाल तीव्र होते हैं, तब बड़े अनर्थकारी भू-स्खलन की संभावना होती है। भू-स्खलन भूकंपों या अचानक शैलों के खिसकने के कारण होते हैं। खुदाई या नदी-अपरदन के परिणामस्वरूप ढाल के आधार के और अधिक तेज हो जाने पर भी भू-स्खलन हो जाते हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में आने वाले घोर-भूकंप, भू-स्खलनों का प्रमुख करण है। चित्र 7.8 में भू-स्खलन के विभिन्न प्रकार प्रदर्शित हैं।

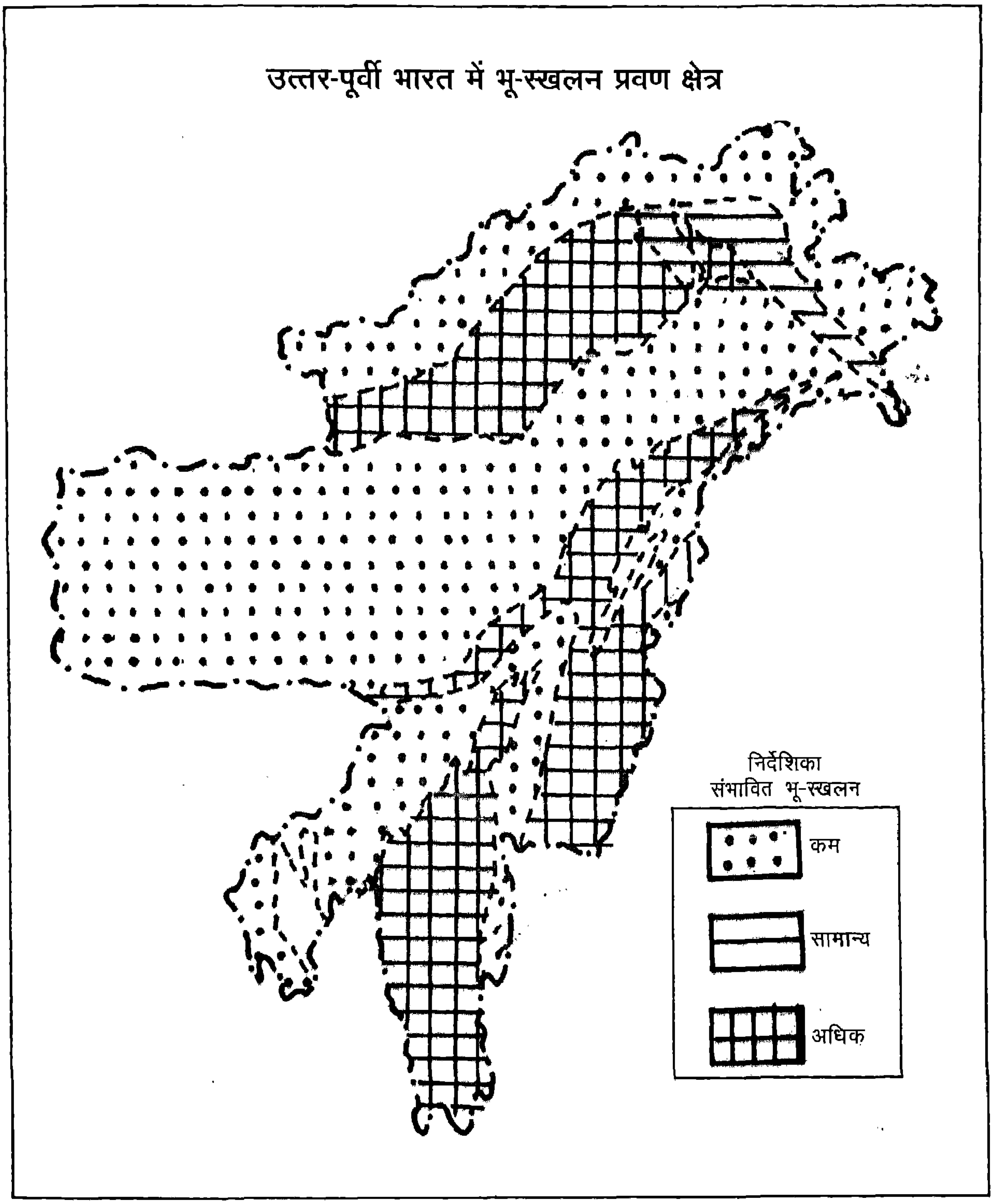
हिमालय, पश्चिमी घाट और नदी-घाटियों में प्रायः भू-स्खलन होते रहते हैं। चित्र 7.9 में उत्तर-पूर्व भारत के भू-स्खलन क्षेत्र प्रदर्शित हैं। ढालों पर से मृदा और चट्टानों का प्राकृतिक रूप से हट जाना बृहत् क्षरण कहलाता है। पर्वतवासी प्राचीन काल से ही भू-स्खलन को आपदा के रूप में जानते-पहचानते रहे हैं। भारी वर्षा या हिमपात के दौरान तीव्र पर्वतीय ढालों पर चट्टानों का खिसकना या टूटना विशेष रूप से खतरनाक हो जाता है।

भू-स्खलन का परिमाण, ढाल की तीव्रता, चट्टानों के संस्तरण तल, वनस्पति आवरण की मात्रा तथा चट्टानों में वलन और भ्रंशन के परिमाण पर निर्भर करता है। भू-स्खलन के दौरान चट्टानें ही टूट कर अपने साथ मृदा और मलबे को ले जाती हैं। भू-स्खलन को प्रेरित करने का मुख्य कारण ढाल के ऊपर स्थित 'बोझ' तथा जल जैसे स्नेहक की उपस्थिति ही है। इसे 'मृदा सर्पण' कहते हैं। पर्वतीय ढालों पर चट्टानों के बीच में भरे जल के जमने और पिघलने से चट्टानें टूट जाती हैं और ढालों पर नीचे की ओर खिसक जाती हैं। मुलायम पारगम्य, चट्टानों में रिसकर जमा हुए हिम या बर्फ या जल का बोझ भी पर्वतीय ढालों पर चट्टानों के टूटने और खिसकने का कारण है।

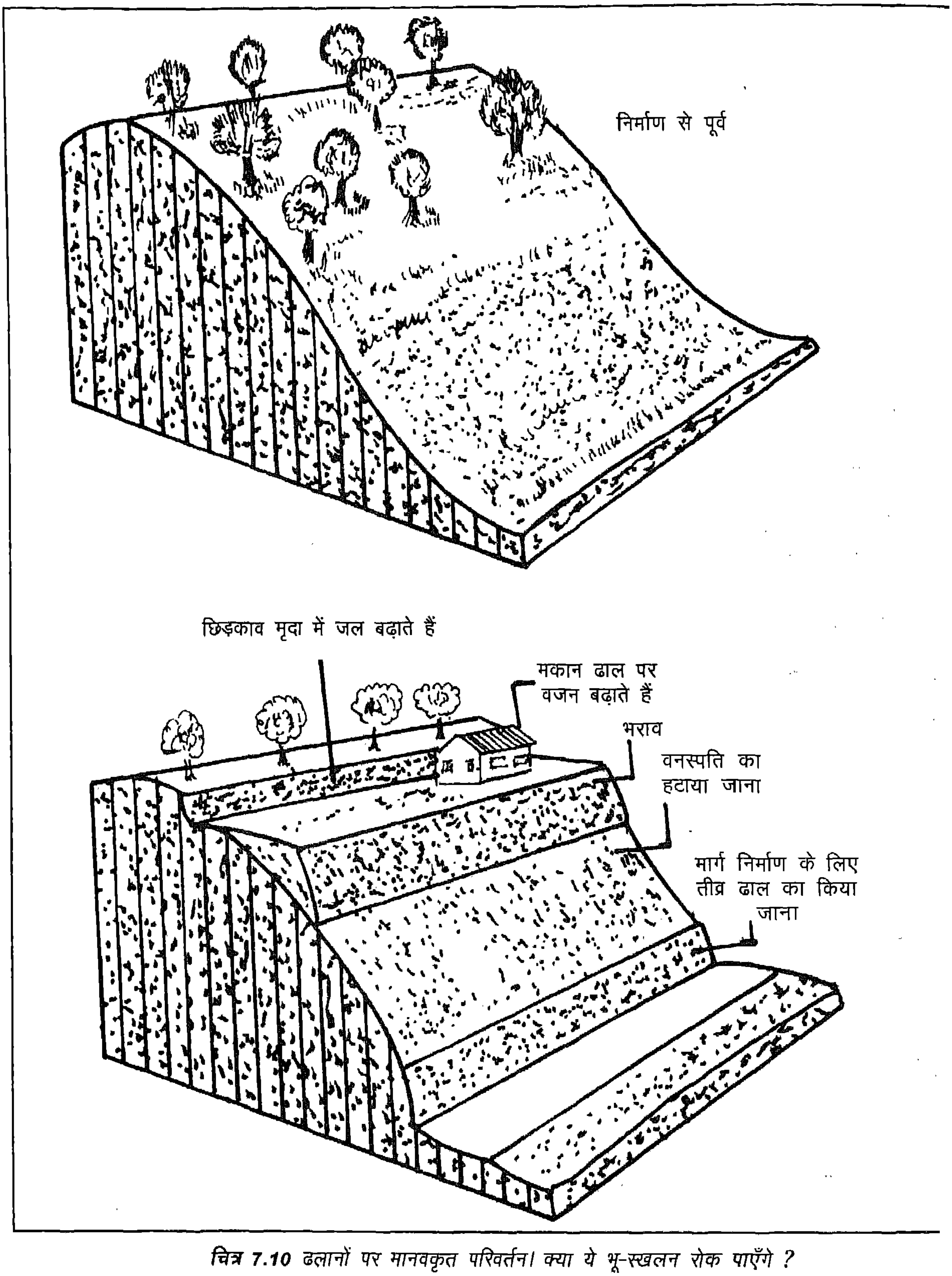
भू-स्खलन के अन्य कारक हैं : ज्वालामुखी और भूकंप। अवसादी चट्टानों तथा तीव्र ढाल वाले क्षेत्रों में भूकंप के झटके, शैल संरचनाओं को विस्थापित करके गिरा देते हैं। समुद्र तट के निकट प्रायः समुद्री लहरें भृगुओं के आधार को काट देती हैं। इस प्रकार आधार पर कटे भृगु आगे की ओर निकले हुए झूलते रहते हैं और एक दिन टूटकर गिर जाते हैं। कन्नड़ तट पर ऐसे उदाहरण खूब देखे जा सकते हैं। भू-स्खलन वर्षा के दौरान अक्सर होते ही रहते हैं। इमारती लकड़ी के लिए वृक्षों को काटने से वन नष्ट हो जाते हैं तथा विकास कार्यों के लिए वनस्पति का आवरण हटा दिया जाता है। परिणामस्वरूप मृदा अपरदन होता है और ढाल अस्थिर हो जाते हैं। ऐसा अनुमान है कि पर्वतीय क्षेत्रों में एक कि.मी. लंबी सड़क बनाने के लिए 40 से लेकर 80 हजार घन मी. मलबा हटाना पड़ता है। यही मलबा ढालों पर खिसककर कर नीचे चला जाता है, वनस्पति नष्ट हो जाती है तथा पर्वतीय सरिताओं के मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं।

सड़कें और भवन बनाने के लिए लोग प्राकृतिक ढलानों को सपाट स्थिति में परिवर्तित कर देते हैं। इस प्रकार के परिवर्तनों के परिणामस्वरूप पहाड़ी ढालों पर बृहतक्षरण और भू-स्खलन होने लगते हैं (चित्र 7.10)।

भू-स्खलनों का प्रभाव : भू-स्खलन मानव पर कहर ढा देते हैं, लेकिन वृक्षों और घास की जड़ों के जमने में बाधक मलबे से छुटकारा पाने का प्रकृति का तरीका भू-स्खलन



चित्र 7.9 उत्तर-पूर्वी भारत में भू-स्खलन प्रवण क्षेत्र



चित्र 7.10 ढलानों पर मानवकृत परिवर्तन। क्या ये भू-स्खलन रोक पाएँगे ?

हिमालय में भू-स्खलन से बने बाँधों का फटना

- 1893 में घोना भू-स्खलन बांध
  1968 में रेनी भू-स्खलन बांध
  1970 में बेलाकुची भू-स्खलन बांध
  1975 में पराचु भू-स्खलन बांध
  1978 में उत्तरकाशी भू-स्खलन बांध
  1993 में झाकड़ी भू-स्खलन बांध
  1998 में गोविंदघाट भू-स्खलन बांध
- गढ़वाल हिमालय की अलकनंदा की घाटी में स्थित ताँगरी सर्पण, पातालगंगा सर्पण और हेलौंग सर्पण, 1970 में मिट्टी के बांध के फटने से आई बाढ़ के कारण पुनः सक्रिय हो गए हैं।

ही है। भू-स्खलन और बृहत क्षरण के परिणामस्वरूप ही प्रायः नए ढालों का निर्माण होता है। भू-स्खलनों द्वारा गिराए गए मलबे से नदियों के मार्ग प्रायः अवरुद्ध हो जाते हैं। सन् 1893 में गढ़वाल में 500 करोड़ टन चूर्णित पाइराइट युक्त शेल चट्टानें तथा डोलोमाइट वाला चूनापत्थर 45^0 के ढाल पर से सरकता हुआ बिरहीगंगा में जा गिरा। इस मलबे से एक अस्थायी बांध बन गया, नदी का मार्ग रूक गया तथा बांध के पीछे एक झील बन गई बिरही ताल। कुछ समय पश्चात ऐसे बांध टूट जाते हैं और झील का पानी बह जाता है। सारणी 7.3 में विगत 30 वर्षों के दौरान महाविनाशक भू-स्खलनों का ब्यौरा दिया गया है।

आपदा प्रबंधन

आपदा प्रबंधन में निवारक और संरक्षी उपाय, तैयारी तथा मानवों पर आपदा के प्रभाव को कम करने के लिए राहत कार्यों की व्यवस्था, तथा आपदा प्रवण क्षेत्रों के सामाजिक आर्थिक पक्ष शामिल किए जाते हैं। आपदा प्रबंधन की संपूर्ण प्रक्रिया को तीन चरणों में विभाजित किया जा सकता हैः प्रभाव चरण, पुनर्वास और पुनर्निर्माण चरण तथा समन्वित दीर्घकालीन विकास और तैयारी चरण।

प्रभाव चरण के तीन अंग हैं : आपदा की भविष्यवाणी करना, आपदा के प्रेरक कारकों की बारीकी से खोजबीन, तथा आपदा आने के बाद प्रबंधन के कार्य। जलग्रहण क्षेत्र में हुई वर्षा का अध्ययन करके बाढ़ की भविष्यवाणी की जा सकती है। उपग्रहों के द्वारा चक्रवातों के मार्ग, गति आदि की खोज-खबर ली जा सकती है। इस प्रकार प्राप्त सूचनाओं के आधार पर पूर्व चेतावनी तथा लोगों को सुरक्षित स्थान पर पहुँचाने के प्रयत्न शुरू किए जा सकते हैं। आपदा के लिए जिम्मेदार कारकों की बारीकी से की गई खोजबीन

सारणी 7.3 : विशाल भू-स्खलन

वर्ष	*स्थिति*	*प्रभाव*
1971	अलकनंदा (उत्तरांचल)	भारी वर्षा और ढालों पर अपरदन से नदी के आस-पार अस्थायी बांध बन गया। पानी नदी के किनारे तोड़ फूट पड़ा। इससे धन-जन की अपार क्षति हुई। संचार के मार्ग अवरुद्ध हो गए। बेलाकुची गाँव पूरा का पूरा पानी में बह गया। इसे अलकनंदा त्रासदी के नाम से जाना जाता है।
1993	रतिघाट (उत्तरांचल)	नैनीताल के पर्वतीय क्षेत्र लगभग एक सप्ताह तक बाहरी दुनिया से कटे रहे थे। मलबा हटाने के काम में पाँच बुलडोजर रात-दिन जुटे रहे। मूसलाधार वर्षा के बाद भू-स्खलन हुआ था।
1993	नीलगिरी की पहाड़ियाँ (तमिलनाडु)	भू-स्खलनों में 40 लोग मर गए। 600 परिवारों को हटा कर सुरक्षित स्थानों पर भेजना पड़ा। सड़कें टूट गईं और मकान ढह गए। मूसलाधार वर्षा के बाद भू-स्खलन हुआ।

उत्तरांचल में फूलों की घाटी के मार्ग का यात्रा वृत्तांत

पहला भू-स्खलन देखते ही हमारे सारे अक्खड़पन का भुरता बन गया। ऐसा लगता था मानों पूरा पहाड़ ही प्रतिशोध के लिए पुकारता हुआ नीचे आ गिरा है। मानव द्वारा मार्ग पर जो कुछ भी बनाया या खड़ा किया गया था, उस सबको यह भू-स्खलन निगल गया है। डरते-सहमते रास्ता पार किया। निरंतर ऊपर देखते रहे, कहीं और चट्टानें तो नीचे नहीं आ रहीं। यह 9 कि.मी. लंबा रास्ता था, जिस पर भू-स्खलन का मलबा छोटी-बड़ी चट्टानों, कंकड़ों, पत्थरों के रूप में बिखरा पड़ा था। इसे पार करके ही अपने गंतव्य हेलौंग तक पहुँच पाए।

लोगों को सुरक्षित स्थानों पर पहुँचाने, भोजन, वस्त्र और पेय जल की आपूर्ति के लिए कार्यदल नियुक्त किए जा सकते हैं। आपदाएँ मृत्यु और विनाश के चिह्न छोड़ जाती हैं। प्रभावित लोगों को चिकित्सा सुविधा और अन्य विभिन्न प्रकार की सहायता की जरूरत होती है। दीर्घकालीन विकास के चरण के अंतर्गत विविध प्रकार के निवारक और सुरक्षात्मक उपायों की योजना बना लेनी चाहिए।

संसार के लोगों का ध्यान आकर्षित करने के लिए यूनेस्को ने 1990-2000 के दौरान प्राकृतिक आपदा राहत दशक मनाया था। संसार के अन्य देशों के साथ भारत ने भी दशक के दौरान अक्तूबर में विश्व आपदा राहत दिवस मनाया था। इस अवसर पर भूकंप, बाढ़ और चक्रवात प्रवण क्षेत्रों के लोगों के लिए भारत सरकार ने जो करणीय और अकरणीय कर्म प्रचारित किए थे, वे बहुत उपयोगी हैं।

भूकंप

तत्काल कार्यवाही

घर के अंदर

- बाहर मत भागिए, अपने परिवार को दरवाजों और मेजों के नीचे, पलंगों पर लेटे व्यक्ति को पलंगों के नीचे ले आइए, खिड़कियों और चिमनियों से दूर रहिए।

घर के बाहर

- भवनों, ऊँची दीवारों, बिजली के झूलते तारों से दूर रहिए। क्षतिग्रस्त भवनों में दुबारा मत जाइए।

वाहन-चलाते समय

- अगर कार या बस में यात्रा करते समय भूकंप के झटके महसूस होने लगें तो, ड्राइवर को वाहन के रोकने के लिए कहिए। वाहन में ही बैठे रहिए।

तत्काल करने योग्य कार्य

- घर की सभी आग बुझा दीजिए तथा हीटर बंद कर दीजिए।
- यदि घर क्षतिग्रस्त हो गया है, तो बिजली, गैस और पानी बंद कर दीजिए।
- यदि घर में लगी आग को तत्काल न बुझाया जा सके, तो तुरंत घर छोड़ दीजिए।
- गैस जलाने के बाद यदि गैस के रिसाव का पता चले तो घर से निकल जाइए।
- पानी बचाइए तथा सभी आपात्कालीन बरतन भर लीजिए।
- पालतू और घरेलू जीव-जंतुओं (कुत्ता,बिल्ली और गोपशु) को बंधन मुक्त कर दीजिए।

बाढ़

- अग्रिम सूचना और सलाह के लिए रेडियो सुनिए।
- बिजली के सभी उपकरण बंद कर दीजिए। घर के सभी कीमती सामान और कपड़े बाढ़ के पानी की पहुँच से दूर रखिए। ऐसा तभी कीजिए जब बाढ़ की चेतावनी मिली हो या आपको आशंका हो कि बाढ़ का पानी आपके घर में घुस जाएगा।
- वाहनों, फार्म के पशुओं तथा आसानी से उठाई जा सकने वाली वस्तुओं को निकट की ऊँची भूमि पर पहुँचा दीजिए।
- खतरनाक प्रदूषण को रोकिए।
- सभी कीटनाशकों को पानी की पहुँच से दूर रखिए।
- यदि आपको घर छोड़ना पड़े, तो बिजली और गैस बंद कर दीजिए।
- घर छोड़ने की मजबूरी में सभी बाहरी खिड़कियों और दरवाजों पर ताले लगा दीजिए।

- यदि आप बच सकते हैं, तो बाढ़ के पानी में पैदल या कार में बैठकर प्रवेश मत कीजिए।
- अपने आप बाढ़ ग्रस्त क्षेत्र में इधर-उधर मत घूमिए।

चक्रवात

- अग्रिम सूचना और सलाह के लिए रेडियो सुनते रहिए। बचाव के लिए पर्याप्त समय दीजिए। चक्रवात कुछ घंटों में मार्ग की दिशा, गति तथा तीव्रता बदल सकता है। अतः नवीनतम सूचना के लिए रेडियो को निरंतर चलाए रखिए।

  यदि आपके क्षेत्र के लिए तूफानी पवनों या प्रबल झंझा की भविष्यवाणी की गई हो तो :

- खुले तख्ते, नालीदार टीन, खाली डिब्बे या ऐसी ही अन्य वस्तुएँ, जो पवन के साथ उड़कर खतरा बन सके, बांध दीजिए या स्टोर में रख दीजिए।
- खिड़कियों को टूटने से बचाने के लिए उन्हें बंद रखिए।
- निकट के सुरक्षित स्थान में चले जाइए या किसी अधिकार प्राप्त सरकारी संस्था के आदेश पर क्षेत्र को छोड़ दीजिए।
- जब तूफान आ ही जाए, तो घर के अंदर रहिए। अपने घर के सबसे मजबूत भाग में शरण लीजिए।
- रेडियो सुनिए और निर्देशों का पालन कीजिए।
- यदि छत उड़ने लगे, तो मकान के सुरक्षित भाग की खिड़की को खोल दीजिए।
- यदि आप खुले में फंस गए हैं, तो शरण खोजिए।
- तूफान के दौरान पवनों के शांत होने पर घर से बाहर या पुलिन (beach) पर मत जाइए। चक्रवातों के साथ प्रायः समुद्र या झील में ऊँची-ऊँची लहरें उठती हैं।

अभ्यास

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित के उत्तर संक्षेप में दीजिए :

   (i) प्राकृतिक आपदाएँ किसे कहते हैं ?
   (ii) कुछ सामान्य आपदाओं के नाम बताइए।
   (iii) संकट किसे कहते हैं ?
   (iv) भूकंप का परिमाण क्या होता है ?
   (v) भूकंप की तीव्रता किसे कहते हैं ?
   (vi) भारत के अधिक और अत्यधिक भूकंपीय खतरे वाले क्षेत्रों के नाम बताइए।
   (vii) चक्रवात की उत्पत्ति के लिए आधारभूत आवश्यकताएँ कौनसी हैं ?
   (viii) चक्रवात की गति और सामान्य अवधि कितनी होती है ?
   (ix) भारत के बाढ़ प्रवण क्षेत्रों के नाम बताइए।
   (x) उन दो मानवीय कारकों के नाम बताइए जिनके कारण भारत में बाढ़ के प्रकोप में वृद्धि हुई है।
   (xi) तटबंधों ने बाढ़ की समस्या को और अधिक भीषण कैसे बना दिया है?
   (xii) भू-स्खलन किसे कहते हैं ?
   (xiii) भू-स्खलन के मानव पर पड़ने वाले प्रभावों का उल्लेख कीजिए।
   (xiv) आपदा प्रबंधन किसे कहते हैं ?

2. निम्नलिखित में अंतर बताइएः

   (i) आपदाएँ और संकट
   (ii) शुष्कता और सूखा
   (iii) प्राकृतिक नदी तटबंध और तटबंध

(iv) भू-स्खलन और बृहत क्षरण
(v) भूकंप का परिमाण और तीव्रता।

3. उन कारकों का वर्णन कीजिए जो कि किसी देश में आपदा (संकट) की तीव्रता को प्रभावित करते हैं।
4. बाढ़ से प्रभावित क्षेत्र में लोगों के लिए क्या करणीय और क्या अकरणीय है ?
5. मानव भूकंपों के साथ कैसे रह सकता है ? कुछ उपाय सुझाइए।
6. भू-स्खलनों की आवृत्ति कम करने के लिए कुछ उपाय सुझाइए।

परियोजना कार्य

भारत के रेखा मानचित्र पर निम्नलिखित की स्थिति दिखाइए :

(i) अधिक खतरे वाले भूकंपीय क्षेत्र
(ii) उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों से पीड़ित क्षेत्र
(iii) ऐसे क्षेत्र जहाँ प्रायः भू-स्खलन आते हैं
(iv) उत्तर प्रदेश के बाढ़ प्रवण क्षेत्र
(v) एक सूखा प्रवण क्षेत्र।

8. आपने जितनी आपदाओं के विषय में पढ़ा है, उनमें से किसी एक पर स्क्रेप बुक (कतरन पुस्तिका) बनाइए।

परिशिष्ट 1 : भारत में वन क्षेत्रों का वितरण

(सभी क्षेत्रफल वर्ग कि.मी. में दिए गए हैं)

राज्य/केंद्र शासित प्रदेश	*भौगोलिक क्षेत्रफल*	*आरक्षित वन*	*सुरक्षित वन*	*कुल वन क्षेत्र*	*भौगोलिक क्षेत्रफल का प्रतिशत*	*वास्तविक वन*	*भौगोलिक क्षेत्रफल का प्रतिशत*
आंध्र प्रदेश	275,045	50,479	12,365	63,814	23.20	44,229	16.07
अरुणाचल प्रदेश	83,743	15,321	8	51,540	61.54	68,847	82.21
असम	78,438	18,242	3,934	30,708	39.15	23,668	30.17
बिहार व झारखंड	173,877	5,051	24,168	29,226	16.81	26,474	15.22
दिल्ली	1,483	78	7	85	2.83	88	5.93
गोआ	3,702	165	0	1,424	38.46	1,251	33.79
गुजरात	196,024	13,819	997	19,393	9.89	12,965	6.61
हरियाणा	44,212	247	1,104	1,673	3.78	964	2.18
हिमाचल प्रदेश	55,673	1,896	31,473	35,407	63.6	13,082	23.49
जम्मू और कश्मीर	222,236	20,182	0	20,182	9.08	2,441	1.09
कर्नाटक	191,791	28,611	3,932	38,724	20.19	32,467	16.92
केरल	38,863	11,038	183	11,221	28.87	10,323	26.56
मध्य प्रदेश व छत्तीसगढ़	443,446	82,700	66,678	154,497	34.84	1,31,830	29.72
महाराष्ट्र	307,713	48,373	9,350	63,842	20.75	46,672	15.16
मणिपुर	22,327	1,463	4,171	15,154	67.87	17,384	77.86
मेघालय	22,429	981	12	9,496	42.34	15,633	69.69
मिजोरम	21,081	7,127	3,568	15,935	75.59	18,336	86.97
नागालैंड	16,579	86	507	8,629	52.04	14,164	85.43
उड़ीसा	155,707	27,087	30,080	57,184	36.73	47,023	30.19
पंजाब	50,362	44	1,107	2,901	5.76	1,412	2.80
राजस्थान	342,239	11,585	16,837	31,700	9.26	13,871	4.05
सिक्किम	7,096	2,261	285	2,650	37.34	3,118	43.94
तमिलनाडु	130,058	19,486	2,528	22,628	17.4	1,76,078	13.13
त्रिपुरा	10,486	3,588	509	6,293	60.01	5,745	54.78
उत्तर प्रदेश व उत्तरांचल	294,411	36,425	1,499	51,663	17.54	34,016	11.55
पश्चिम बंगाल	88,752	7,054	3,772	11,879	13.38	8,362	9.42
अंडमान और निकोबार द्वीप समूह	8,249	2,929	4,242	7,171	86.93	7,605	92.19
चंडीगढ़	114	31	0	31	27.19	7	6.14
दादरा और नगर हवेली	491	198	5	203	41.34	202	41.14
दमण और दीव	112	0	0.7	0.7	0.62	3	2.67
लक्षद्वीप	32	0	0	0	0	0	0
पांडिचेरी	492	0	0	0	0	0	0
योग	**3,287,263**	**4,16,547**	**2,23,321**	**7,65,253**	**23.28**	**6,19,260**	**18.84**

स्रोत : राज्य और केंद्रशासित प्रदेश के वन विभागः वन की दशाओं की एक रिपोर्ट (1999)

परिशिष्ट 2 : भारत के राष्ट्रीय उद्यान

अंडमान और निकोबार द्वीप समूह

1. कैम्पबेल खाड़ी
2. गलाथिया
3. महात्मा गांधी मेरीन
4. मिडल बटन द्वीप
5. माउंट हैरियेट
6. नॉर्थ बटन द्वीप
7. रानी झाँसी मेरीन
8. सैडल पीक
9. साउथ बटन द्वीप

अरुणाचल प्रदेश

1. मावलिंग
2. नामदफा

असम

1.. डिब्रू-सैखोवा
2. काजीरंगा
3. मानस
4. नमेरी
5. औरांग

आंध्र प्रदेश

2. कासु ब्रह्मानन्द रेड्डी
3. महावर हरीना वनस्थली
4. मरुगवाणी
5. श्री वेंकटेश्वर

उड़ीसा

1. भीतरकणिका
2. सिमलीपाल

उत्तर प्रदेश

1. दुधवा

उत्तरांचल

1. कॉरबेट
2. गंगोत्री
3. गोविन्द
4. नन्दा देवी
5. राजाजी
6. वैली ऑफ फ्लावर्स (फूलों की घाटी)

कर्नाटक

1. अंशी
2. बांदीपुर
3. बनेरघट्टा
4. कुद्रेमुख
5. नागरहोल

केरल

1. एराविकुलम्
2. पेरियार
3. साइलेंट वैली

गोआ

1. मोल्लेम

गुजरात

1. बांसदा
2. गिर
3. मेरीन (कच्छ की खाड़ी)
4. ब्लैकबक

छत्तीसगढ़

1. इन्द्रावती
2. कंगेर घाटी
3. संजय

जम्मू और कश्मीर

1. सिटी फारेस्ट (सलीम अली)
2. डचीगाम
3. हेमिस
4. किस्तवार

झारखंड

1. बेतला

तमिलनाडु

1. गुइन्डी
2. गल्फ ऑफ मन्नार मैरीन (मन्नार की खाड़ी)
3. इन्दिरा गाँधी (अनैमलाई)
4. मुदुमलाई
5. मुकुर्थी

नागालैंड

1. इंटांकी

पश्चिम बंगाल

1. बुक्सा
2. गोरू मारा
3. नेवरा वैली
4. सिंहलीला
5. सुंदरबन

बिहार

1. वाल्मीकि

मध्य प्रदेश

1. बांधवगढ़
2. फॉसिल
3. कान्हा
4. माधव
5. पन्ना
6. पेंच (प्रियदर्शिनी)
7. संजय
8. सतपुर
9. वन विहार

मणिपुर

1. कैबुल-लामजाओ

महाराष्ट्र

1. गूगामल
2. नवेगाँव
3. पेंच
4. संजय गांधी (बोरिविली)
5. तदोबा

मिजोरम

1. मुरलेन
2. फदंगपुई ब्लू माउंटेन

मेघालय

1. वालफक्रम
2. नोक्रेक रिज

राजस्थान

1. डैजर्ट
2. केवलादेव घाना
3. रणथम्भौर
4. सरिस्का

सिक्किम

1. कांचनजुंगा

हरियाणा

1. सुल्तानपुर

हिमाचल प्रदेश

1. ग्रेट हिमालयन
2. पिन वैली

परिशिष्ट 3 : भारत की प्रमुख भूकंपीय आपदाएँ

तिथि और समय	*स्थिति*	*रिक्टर पैमाने पर परिमाण*	*अधिकेंद्र*	**मरने वालों की संख्या**	*क्षति*
15 जुलाई 1720, 06:20 घंटे	दिल्ली	6.5	लाल किले के निकट, दिल्ली	12	भवनों को क्षति
1 सितबंर 1803, 00:30 घंटे	कुमाऊँ प्रदेश, उत्तरांचल	7.5	कुमाऊँ प्रदेश	200	अधिकतर गाँव नष्ट हो गए
16 जून 1819, 19:00 घंटे	अहमदाबाद (गुजरात)	8.0	निरूजा से 9.5 कि.मी. पूर्व-दक्षिण पूर्व दिशा में	1,500-3,000	उपलब्ध नहीं
10 जनवरी 1869, 17:15 घंटे	कछार (असम)	7.5	कुंभीर से 9.4 कि.मी.	5	सिल्चर, सिलहट, चेरापूंजी और शिलांग नगरों में भारी क्षति
12 जून 1897, 17:00 घंटे	शिलांग (मेघालय)	8.7	शिलांग के निकट	1,600	शिलांग, गोलपाड़ा, गुवाहाटी और नौगाँव में भवन नष्ट
4 अप्रैल 1905, 6:20 घंटे	कांगड़ा (हिमाचल प्रदेश)	8.0	कांगड़ा	19,000	1,600 गाँव धूल में मिल गए
2 जुलाई 1930, 3:23 घंटे	धुबरी (असम)	7.1	मेघालय के रागरांग से 1.43 कि. मी.	उपलब्ध नहीं	धुबरी के अधिकतर भवन नष्ट हो गए
15 जनवरी 1934, 14:21 घंटे	बिहार-नेपाल	8.3	बिहार के कुरसा से 7.7 कि.मी. दक्षिण-दक्षिण पश्चिम दिशा में	10,000	बिहार में मुंगेर और काठमांडू घाटी में भटगाँव में भारी विनाश
15 अगस्त 1950, 19:39 घंटे	भारत-चीन सीमा	8.6	रीमा-भारत-चीन-सीमा	1,538	25 गाँवों में 3,000 मकान ढह गए
20 अक्तूबर 1991	उत्तरकाशी (उत्तरांचल)	6.6	गढ़वाल	1,000	1,000 गाँवों में संपत्ति का बड़े पैमाने पर विनाश
30 सितम्बर 1993, 3:36 घंटे	लाटूर, उस्मानाबाद (महाराष्ट्र)	6.3	मटोला बुजुर्ग के पूर्व-दक्षिण पूर्व दिशा में	10,000	30,000 मकान ढह गए
22 मई 1997, 4:22 घंटे	जबलपुर (मध्य प्रदेश)	6.3	बरेला के दक्षिण, दक्षिण-पश्चिम दिशा में	39	8,267 मकान या तो ढह गए या उनमें दरारें पड़ गईं
29 मार्च 1999, 00.35 घंटे	चमोली (उत्तरांचल)	6.8	अल्मोड़ा, भटवाड़ी	87	भारी विनाश, 1,000 मकान ढह गए
26 जनवरी 2001 8:46 घंटे	भुज (गुजरात)	7.9	कच्छ में भचाऊ के उत्तर-पश्चिम में	1,00,000	भारी विनाश, 3,48,000 मकान ढह गए

...Chapter contd..

Section	Content	Source of data	Tools used
C	Supervision	ii) Student-teachers.	Question-nair 2. Section B.
D	Supervisors' remarks about students' teaching.	Lesson plan books/ criticism note-books.	Analysis Chart.
E	Cooperation of the practising schools.	Principals and teachers of the practising schools.	Question-naire 3.

A Note on the Analysis of Data:

Before the data are presented section-wise, a clarification of the scheme of analysis of data is in order. The responses to the items of the questionnaires 1 and 2 were not presented in comparable forms, because the forms of response are determined by the level of knowledge of the respondents. Demanding any sophistication in the responses of a respondent who is manifestly incapable of giving it is only encouraging guess-work. This increases the unreliability of the responses. Therefore, the response patterns to the questionnaires meant for the supervisors and students are presented separately at several places, although the items were the same. For example, at places the supervisors rated the practices on a five-point scale or a three-point scale, whereas the student-teachers only mentioned if the practices were followed or not i.e. their responses were either 'yes' or 'no'.

Another related point of clarification is the comparability of the two kinds of responses to the same item from two different groups of respondents. Here, it is assumed that if a supervisory practice is strongly followed in an institution, most of the student-teachers would be familiar with it and a high percentage of them would report its existence. On the other hand, if the practice were only nominal and peripheral, it is likely that most of the student-teachers are unaware of it and would report its non-existence. It is on this assumption that the responses of the supervisors and student-teachers were compared, although they were not identical in form.

SECTION - A.

ORGANIZATION AND ADMINISTRATION OF TEACHERS' TRAINING PROGRAMME.

The data presented in this section were collected from the principals of teachers' training colleges and heads of B.Ed. departments of the colleges affiliated to the Agra University, through Q.1, part I, Section A. Of 16 such colleges which had the B.Ed. class at the time of data collection 12 colleges alone cooperated in this project. It may be mentioned here that three of the colleges had the M.Ed. class in addition to the B.Ed.

Establishment of Teachers' Training Programmes:

The history of teachers' training programme in the affiliated colleges of the Agra University goes back only to

1947. The first college which started this programme was the Women's Training College, Dayalbagh[1], which was established in that year. Hindu College, Moradabad, R.E.I. Degree College, Dayalbagh and Almora College, Almora, started B.Ed. departments in 1951. Other colleges added the B.Ed. department sometime during the period 1958 to 1970. Thus, it is clear that the teachers' training programme is a post-independence feature of the colleges of Agra University.

Strength of the B.Ed. Department:

Agra University is the authority which sanctions the strength of the student-teachers for a college. The sanctioned strength of the B.Ed. student in different colleges varies from 84 to 227. But, sometimes, the institutions enrol student-teachers in excess of the sanctioned strength with the special permission of the University. These special permissions are purely temporary. The university demands the fulfilment of the minimum conditions regarding class-rooms, furniture, staff, library etc., before it accords permanent recognition for a new section in a college.

Staff:

At present, the University insists on maintaining the teacher-taught ratio at 1:12; sometime back it was 1:14. The number of teachers for the B.Ed. class santioned by the

---

1. Now the institution is a multi-discipline post-graduate college.

University and also approved by the Government for Grant-in-aid purposes varies from 8 to 13 per institution.[1]

The approved strength of the administrative staff for most of the B.Ed. departments varies from 1 to 3. In only one college the strength is 5.

Salary:

There are generally three grades of pay for the teachers of the secondary teachers' training colleges, a junior scale of Rs. 300-600, a senior scale of Rs. 400-800, and a reader's scale of Rs. 700-1100. In this survey it was found that out of 111 teachers in training colleges only 3 teachers (2.7%) were in the reader's grade, 15 (13.3%) in the senior scale and the remaining 93 (83.8%) in the junior scale. The administrative staff is in the subordinate services' grade prescribed for the ministerial staff of the private degree colleges.

Library:

All the colleges have a departmental library meant for the B.Ed. students. This library is under the control of a librarian or a clerk. The number of books in the library varies from 1000 to 8110. And the student-book ratio varies from 1:4 to 1:68. The median of the ratios is 1:22.

Most of the colleges subscribe to the Indian Journals. Their number ranges between 2 and 10. Three colleges which have the post-graduate class in education subscribe to

---

1. It may be mentioned here that when a section is opened or a new post is created, due to increase in enrolment, the government does not give grant for the additional staff for three years. Only after three years, the college receives a Government grant for the additional staff.

foreign journals in addition. The number of these journals varies from 6 to 21.

In 50% of the colleges there is provision for the open shelf system in the library. In other colleges books can be had on application. In 75% of the colleges, books on the content of the teaching subjects are also issued to the student-teachers. In most of the colleges two books are issued at a time for a period of 15 days. In one college 4 books are issued for a month. But, it seems that the general practice is to issue 2 books at a time for a period of two weeks. In eight colleges journals are also issued to the B.Ed. students.

Laboratory and Subject Rooms:

In 8 out of 12 colleges there is provision for laboratories and subject rooms where student-teachers may prepare their lesson-notes and material aids. This provision exists mostly for science in 8 colleges, for art in 4 colleges, for Hindi in 4 colleges, for English in 2 Colleges, for Civics in 3 colleges, for economics in 2 colleges, for geography in 3 colleges, for home science in 2 colleges, for history in 3 colleges, and for mathematics in 5 colleges. In 4 colleges no provision for subject-rooms or laboratories exists. In only four colleges there is provision for additional specialist staff for guiding student-teachers in the preparation of material aids. In other colleges the subject-teachers themselves give whatever guidance they can.

In some of the colleges there is a special period for educational hand-work, when the student-teachers prepare material aids in a group. Sometimes, student-teachers also get the material aids prepared by outsiders on payment.

Generally, in different colleges, the following types of educational hand-work is done by the B.Ed. students -

> Preparation of charts and models, albums, maps, photographic prints, specimens, graphs, pictures, science apparatus, slides and sections.

The colleges provide for the following co-curricular activities:-[1]

> Dramatics (8), debates (12), Games and sports (10), Scouting (9), First aid (11), and community service (6). Music is organised as a co-curricular activity only in one college. It is strange to find that no college arranges for literary activities such as paper reading, Kavi Sammelan, and Antyakshari.

Almost all the colleges (10 out of 12) organise educational excursions for the B.Ed. students, once or twice a year, according to the facilities available.

Practice Teaching:

No college in the sample owns all the practising schools in which its students do their practice-teaching. Most of the practice-teaching is done in the schools which agree to cooperate with the training college/B.Ed. department. The heads reported that their relationship with these schools was generally cordial, but sometimes formal. In one institution, the relation was found to be formal and unhelpful.

---

1. The numbers in the brackets denote the number of colleges having the co-curricular activities.

Generally, the following difficulties are faced by the training colleges in arranging the practice-teaching of the student-teachers. The practising schools are situated at long distnaces from the college and are scattered over a large area. The difficulty of communication is keenly felt. Shortage of rooms, furniture and equipment is also felt. Often, a whole section of the students (of a practising school) is divided into sub-sections to enable several student-teachers to teach simultaneously and the dearth of rooms and furniture is felt. Arrangement of time-table is another source of trouble. In most cases the training colleges have to follow the regular time-table of the school which does not suit them in practice. Another serious trouble which is experienced by most of the training colleges is lack of rooms for the supervisors. Sometimes, they share the staff-room with the regular teachers and sometimes with the science or su-subject teachers. Thus, they are unable to have proper contacts with their student-teachers. An incidental difficulty is the closure of the schools due to strikes. The heads of the B.Ed. departments and training colleges complained that many of the teachers of the practising schools did not take interest in the practice-teaching and sometimes they did not cooperate.

Types of Practice Teaching:

In 50% of the training colleges, the pattern of Block-Teaching was followed. Here the theory classes are suspended and the whole staff is engaged in the practice-

teaching programme. In one institution, Dispersed Teaching was done. Here, the practice teaching is done on half days, either morning or afternoon, on 3 to 5 days a week. One institution followed the pattern of Continuous teaching, that is, teaching was done through-out the session on one or two days a week. Two institutions followed a combination of Block and Dispersed teaching and one followed a combination of Block, Dispersed and Internship teaching. Thus it is seen that the most common practice is the Block teaching. The lessons are generally given in two blocks.

Work load on Supervisors:

Although the University has prescribed that the teacher-student ratio for the B.Ed. class should be 1:12, yet in most of the colleges supervisors are assigned 10 to 25 lessons per day for guidance and 10 to 20 lessons per day for supervision. The median number of lessons guided by a supervisor is 16 and that supervised by him is 15. It may be noted here that all supervisors were not assigned the same work-load for practical reasons. Sometimes, there was a great rush in some subjects, whereas there were very few student-teachers offering other subjects. Naturally the work load could not be equal in all cases.

In almost all colleges, guidance, supervision and evaluation are done by the subject specialists, supervision and evaluation are done by other supervisors in addition to the subject specialists.

Evaluation:

Evaluation of the efficiency of teaching of the student-teachers is done by the supervisors, because in the Agra University 50 (25%) marks are allotted to sessional work in practice-teaching. A certain percentage of these marks is assigned to the class teaching done by the student during the session. The internal assessment for this teaching is done on the basis of day to day teaching and on the basis of two criticism lessons, one in each teaching subject. On the basis of the internal assessment, student-teachers are recommended for the award of divisions[1] in practice-teaching at the University examination at the end of the session.

Internal assessment is done in most of the colleges on the basis of pooled recommendations of the subject specialists. In some colleges the recommendations of all the supervisors are averaged. In such colleges the supervision is also done by all the supervisors, irrespective of the fact whether they are subject specialists or not. The internal assessment is done terminally twice a year in most of the colleges, but some kind of evaluation is done daily. The supervisors observe daily the lessons of their student-teachers and evaluate them mentally. In the course of the session they recommend grades according to their evaluation of the student-teachers' achievement in practice-teaching.

In most of the colleges (10 out 12) no evaluation sheets

1. Agra University, in line with most of the Indian Universities, awards divisions at the B.Ed. examination for achievement in practice and theory separately.

were used for the daily evaluation. Evaluation sheets or forms were filled up by the supervisors only in the terminal assessment which is popularly known as the evaluation of the criticism lessons.

SECTION - B.

GUIDANCE.

Supervisors are called upon to guide the student-teachers throughout the practice-teaching programme. The items of the guidance programme surveyed in the study are presented in this section.

Preliminary Guidance.

Preliminary guidance in the selection of schools and classes, and in organising the content of the subject matter for teaching, is given to the student-teachers by the supervisors. The data about those items were collected from the supervisors and the student-teachers, the two partners in the programme. They are presented in Table B-1. The Table shows that 51.8% of the supervisors ascertained the preference of the student-teachers for practising schools. This means that the practice is only moderately obtaining in the training colleges or B.Ed. departments of the colleges. But 85% of the student-teachers reported that their preferences for the practising schools were ascertained. According to them, this guidance programme is largely followed in these institutions. Now, the facts about this practice as

reported by the two groups of respondents should be the same. Why then is there so much discrepancy in the responses of the two groups? Now, if it is assumed that the practice is followed to the extent that the student-teachers report, then, the low percentage of 'Yes' responses of the supervisors has to be accounted for. Perhaps, this is due to the fact that all the supervisors are, generally, speaking, not involved in the preparation of the practice-teaching programme. Only those who are concerned with it have given 'Yes' responses and the others have not. On the other hand, if it is assumed that the practice is only moderately followed as reported by the supervisors, then the students might have attempted consciously or unconsciously to present a 'glorified' image of their institutions as regards this practice. However, a third explanation may not be ruled out. It is probable that guidance is not given in an organised manner by the training colleges/departments of education. Student-teachers perhaps approach the supervisors individually and get themselves allotted to the schools of their choice for practice-teaching. A further probe to verify the tenability of this alternative revealed that in most of the institutions there was no agreement between the responses of the supervisors and student-teachers.

TABLE 8-1.

Frequency of the responses of the supervisors and student-teachers to a few guidance practices.

S.No. Guidance Practices	Response of Supervisors.			Response of student-teacher.		
	Item No.	Yes	No	Item No.	Yes	No
1. Ascertaining the preferences of student-teachers for particular practising schools in which he wishes to teach.	1	51.8%	48.2%	1	85%	15%
2. Assigning to S.Ts the schools for which he has expressed a preference.	2	53.1%	46.9%	2	84%	16%
3. Ascertaining the preference of student-teacher in respect of the class(es) he wishes to teach.	3	88.4%	11.6%	3	80%	20%
4. Assigning to the student-teacher the class he wishes to teach.	4	84.7%	15.3%	4	80%	20%
5. Leaving the arrangement of the class and section to the framer of the general time-table, ignoring the preferences of the student-teacher.	5	43.9%	56.1%	5	78%	22%
6. Helping the S.T. in securing from the practising school(s) that part of the syllabus he has to teach.	6	86.2%	13.8%	6	82%	18%
7. Helping the S.T. in analysing the syllabus into lesson units.	7	83.1%	16.9%	7	79%	21%
8. Helping the S.T. in determining the teaching points in a lesson.	8	92.1%	7.9%	~~8~~	~~85%~~	~~15%~~
9. Testing the knowledge of the S.T. in the subject matter.	9	70.8%	29.2%	9	85%	15%

TABLE B-2.

Responses of supervisors and student-teachers to the practice of ascertaining student-teachers preferences for the practising schools.

S.No.	Colleges	Supervisors 'Yes'	Supervisors 'No'	Student-teachers 'Yes'	Student-teachers 'No'
1.	A	11	6	30	5
2.	B	4	4	9	2
3.	C	7	0	6	0
4.	D	2	1	8	2
5.	E	6	4	25	1
6.	F	0	6	22	1
7.	G	0	4	9	7
8.	H	1	2	6	3
9.	I	3	1	9	0
10.	J	0	7	21	8
11.	K	2	2	1	0
12.	L	5	0	21	1
13.	M	2	4	-	-
	TOTAL:	43	41	167	30

From Table B-2, it is clear that institutions C and L followed invariably the practice of ascertaining the preferences of the student-teachers in respect of practising schools. Both supervisors and student-teachers of these institutions agreed that the preferences of the student-teachers for the practising schools were ascertained. But

there is disagreement in the reports of the two groups belonging to Colleges F, G and J. The supervisors of these institutions reported that they did not ascertain the preferences of the student-teachers for the practising schools, whereas most of the student-teachers reported that their preferences were ascertained. Therefore, it seems that there is no organised procedure for ascertaining preferences and this is why the supervisors have reported that the practice is non-existent. The student-teachers seem to report the existence of the practice, because they manage to get the school of their choice. In other institutions, there is no agreement among the supervisors and student-teachers regarding this practice. This may also be due to the fact that no organised guidance is given to the students in the choice of the schools. Therefore, it seems reasonable to conclude that in most of the training colleges, preferences of the student-teachers for practising-schools are not ascertained systematically and no organised guidance is given. Student-teachers make individual efforts to get themselves allotted to schools of their choice.

83.1% of the supervisors and 84% of the student-teachers reported that student-teachers were assigned to schools for which they expressed their preferences. These percentages are nearly the same as the corresponding percentages of Yes' responses given to item 1. This may mean that wherever the preferences of the student-teachers for practising schools are ascertained, they are also

assigned to their preferred institutions. But, this conclusion is valid only when the 'Yes' responses to items 1 and 2 are from the same supervisors and student-teachers. To verify this fact, their responses to the two items were compared and it was found that 91% of the supervisors and student-teachers gave identical responses ('yes' or 'no') to the two items. Therefore, it seems reasonable to conclude that wherever the preferences of the student-teachers for the practising schools are ascertained, they are assigned to those schools.

The supervisors generally ascertained the student-teachers' preferences for the classes they would like to teach. 88% of the supervisors reported that they did ascertain from the student-teachers their preferences for particular classes. Although only 80% of the students confirmed this fact, yet the difference between these two percentages is not high and it may be safely concluded that the supervisors mostly ascertain from student-teachers their preferences for the classes. In the interests of the children to be taught by S.Ts, it is necessary to ascertain the latters' preferences. It is satisfactory to find that this is being done.

Response to item 4 indicates that, by and large, the preferences of the student-teachers for the classes are kept in view while drawing up the practice-teaching programme.

Table 1 shows that 43.9% of the supervisors reported that the arrangement of the class and section to be assigned to the student-teachers was left to the care of the teacher-in-charge of the time-table, ignoring the student-teachers' preferences. This fact seems to contradict their earlier' response to item 4 where 84% of them report that student-teachers are allotted classes and sections according to their preferences. Ideally, the responses to item 4 and 5 should be complementary, and only 16% (100-84) of the supervisors should have responded to this question in the affirmative. The difference between the actual and the expected 'Yes' responses to this question may be due to the fact some respondents did not attend to the phrase "Ignoring the preferences of the student-teachers", which was a qualifying condition for the practice.

The responses of supervisors and student-teachers to items 6, 7 and 8 clearly show that most of the supervisors helped the student-teachers in securing from the practising schools that part of the syllabus which they had to teach and helped them in analysing the syllabus into lesson units and also in determining the teaching-points in a lesson.

Often it is said that student-teachers are deficient in the knowledge of the subject matter they intend to teach. Therefore, the supervisors were asked if they actually tested this knowledge (item 9). 70.8% of the supervisors reported that they did so and 85% of the student-teachers confirmed

this. A slightly higher percentage of 'yes' responses from student-teachers may be expected, because they may feel that the supervisor is testing their knowledge when he is actually asking only some exploratory questions. However, it seems to be a fact that supervisors were aware of the level of knowledge of the subject-matter of the student-teachers and assessed it in the course of guiding them.

The supervisors were further asked to mention the ways and means they employed to bring the knowledge of the student-teachers up to the mark if they found it deficient. The supervisors mentioned a number of ways and means which were employed by them for this purpose. The more important ones are given below:-

(a) by providing books and asking them to go through these books;

(b) by asking questions on the subject-matter and stimulating them to prepare the content;

(c) by asking them to read current books and journals;

(d) by suggesting reading materials and asking them to do experiments;

(e) by taking extra-classes in the subject matter, and

(f) by giving fresh and the latest data.

TABLE B-3.

Guidance practices regarding lesson planning.

S.No.	Item No.	Items	Supervisors' response	Student-teachers response.
1.	11	Which mode of lesson planning do you follow?		
		i) Herbertian approach	53.0%	75%
		ii) Evaluation approach	8.2%	16%
		iii) Combination of (i) and (ii)	30.6%	8%
		iv) Any other	8.2%	-
2.	12	If you discover that the draft lesson plan is not upto the mark what do you do?		
		a) correct the lesson plan	58.8%	62%
		b) Instruct the student-teacher orally and ask them to prepare a fresh plan.	39.2%	38%
		c) Any other (please specify).	2.0%	-
3.	13	If you discover that student-teacher has mis-stated the facts in the lesson notes what do you do?		
		a) correct the statements.	28.5%	23.1%
		b) ask the student-teacher to correct the statements.	22.1%	26.6%
		c) cross the statement with a remark thereon.	18.6%	34.8%
		d) suggest some book on the subject content and ask the S.T. to prepare the draft afresh.	29.6%	15.5%
		e) Any other measure adopted (please specify).	1.2%	-
4.	14	Do you lay emphasis on logical sequence of the questions to be asked by the S.T.?	'Yes' 96.6% 'No' 3.4%	83.5% 16.5%
5.	15	Do you emphasize on the correctness of the language and spelling of written language and pronunciation?	'Yes' 100% 'No' -	92.2% 7.8%
6.	16	Do you ask the student-teacher to rehearse the questions in order to correct the pronunciation (pitch, intonation, modulation) of the speech.	'Yes' 80.7% 'No' 19.3%	48.0% 52.0%

Mode of lesson planning:

From Table 5-3, it is clear that 53% of the supervisors reported that they followed the Herbartian steps in planning the lesson-notes and only 8.25% followed the evaluation approach. On the other hand, 75% of the student-teachers reported that they prepared their lesson-notes according to the principles of the Herbartian method and 16% reported that they followed the evaluation approach of preparing the lesson notes. There is a slight discrepancy in the reports of the supervisors and the student-teachers. The difference seems to be understandable when the percentage of the supervisors following the combination of Herbartian and evaluation approaches is considered. 30.6% of the supervisors reported that they followed a combination of the two approaches, whereas only 8% of the student-teachers reported in favour of the combined approach. It appears that the supervisors are more reliable, because the students may not be fully aware of the distinction between the combined and separate approaches. This is why most of them have either categorized their method of preparing the lesson-plans as the Herbartian or the evaluation approach. Hence, it may be inferred that the shift from the Herbartian to the evaluation approach is not complete. The combined type of methodology is considered next best to the Herbartian approach by the supervisors.

8.2% of the supervisors reported that they followed other methods of lesson planning, such as the structural approach, the Gurukul system, the demonstration method, the

analytic, the synthetic and the direct and the indirect method. But, it may be argued that these are the methods of teaching and not the methods of planning the lessons.

Correction of Lesson Plans:

As regards the actual correction of the lesson plans, 56.8% of the supervisors corrected them, if they found that they were not upto the mark and 39.2% instructed the student-teachers orally and asked them to prepare a fresh plan. It appears that a majority of the supervisors helped student-teachers and did not teach them to help themselves. The responses of the student-teachers were in agreement with those of the supervisors.

It seems that the supervisors adopted a number of devices to correct the plans, equally frequently, when they found that a student-teacher had made a mis-statement of fact in the lesson plan (item 13). 28.5% of the supervisors corrected the mis-statement, 22.1% of them asked the student-teacher to correct the statements themselves, 18.6% of them crossed out the statement and 29.6% of them advised the student-teachers to read a book on the subject-content and to prepare the draft afresh. The responses of the student-teachers in this context are comparable to those of the supervisors, except that 34.8% of the student-teachers (against 18.6% of the supervisors) crossed out the statements without correcting them. It is just possible that student-teachers exaggerate this behaviour of the supervisors and the latter try to under-rate it,

because of the nature of the item. If the student-teachers' responses indicated the upper limit of the incidence of the behaviour of the supervisors in this context, and that of the supervisors the lower limit, it may be safely estimated that about 25% of the supervisors crossed out the incorrect statements given in the lesson plan without correcting them.

Almost all the supervisors (96.6%) reported that they paid emphasis on the logical sequence of the questions to be asked by the student-teachers, and 83.6% of the student-teachers confirmed this report. Evidently the supervisors are very particular about this aspect of the guidance programme.

All the supervisors laid emphasis on the correctness of the language and pronunciation. 92% of the student-teachers also admitted that their supervisors were very particular about the correctness of their language and pronunciation. This seems to be a very significant aspect of the current supervisory practices.

A high percentage (80.7%) of the supervisors asked the student-teachers to rehearse the mode of questioning in order to correct their pronunciation. That this practice is greatly emphasized by supervisors is not supported by the responses of the student-teachers (Item 16). Only 48% of the student-teachers admitted that their supervisors asked them to rehearse the questions. It seems that the supervisors asked them to practice the art of questioning just in the routine manner and

did not emphasize the point seriously, and on their part the student-teachers conveniently evaded the suggestion. Any how, the discrepancy in the response patterns to this question shows that this practice is not taken seriously in the teachers' training institutions.

Guidance in the use of Material Aids:

From Table B-4, it is clear that the Supervisors gave the student-teachers instructions in the use of material aids and that they also helped them to get those aids from the schools and colleges. It seems that this practice is very largely followed, because 96.7% of the supervisors reported that they gave instructions in the use of material aids and 90% of the student-teachers corroborated the statement. Similarly, 94.4% of the supervisors reported that they helped the student-teachers in getting the material aids from the schools and colleges and 73.9% of the student-teachers supported the statement. It appears that the use of material aids is considered to be a very important feature of the methodology of instruction in training colleges.

Table B-4.

Guidance practices regarding use of material aids and development of self confidence among the S.T's.

S.N.	Item No.	ITEM.		Supervisor's responses	Student-Teachers' response.
1.	17	Do you give student-teacher instruction in the use of material aids.	'Yes' 'No'	96.7% 3.3%	90.3% 9.7%
2.	18	Do you help the student-teacher in getting the material aids from the school or college?	'Yes' 'No'	94.4% 5.6%	73.9% 26.1%
3.	19	Do you sometimes permit the S.T. to teach a lesson which you have not corrected?	'Yes' 'No'	57.8% 42.2%	42.5% 57.5%
4.	20	Do you consider it advisable to correct each and every mistake in the first lesson?	'Yes' 'No'	72.2% 27.8%	84.5% 15.5%
5.	22	Do you consider it advisable to correct each and every lesson plan of the student-teacher?	'Yes' 'No'	59.1% 40.9%	85% 15%
6.	23	Do you try to develop self-confidence among the student-teachers in planning their lessons?	'Yes' 'No'	96.6% 3.4%	83.1% 16.9%
7.	25	Do you consider it necessary that student-teacher should be given a foretaste of the kind of job he is going to take up and therefore give him a few jerks and jolts?	'Yes' 'No.'	55.7% 44.3%	- -

Developing self confidence among the Student-teachers:

From Table B-4, it is interesting to note that 57.8% of the supervisors permitted the student-teachers to teach a

lesson, even if it was not corrected. 42.5% of student-teachers also admitted this. It seems that supervisors are evenly divided in regard to the practice of permitting the student-teachers to teach an uncorrected lesson. The arguments in favour of the practice are that they do not want to spoon-feed the student-teachers, but wish to develop self confidence among them by giving them a chance to try their own plans. The argument against this practice is that in the traditional bureaucratic type of training colleges this practice may be considered to be irresponsible or shirking behaviour on the part of the supervisor. Anyway, the response pattern shows that it is neither a very strong practice nor a very weak one.

A question regarding the extent of correction of the first lesson-plan was asked. The question was "Do you (supervisor) consider it advisable to correct each and every mistake in the first lesson?". 72.2% of the supervisors reported that they considered it advisable to correct each and every error in the first lesson. It may be noted that this practice greatly disheartens the student-teachers, if they are too sensitive. However, the supervisors are mostly in favour of correcting every mistake in the first plan, lest the student-teachers should develop a wrong attitude towards correction or lest they themselves should be accused of over-looking the errors. 82.5% of the student-teachers confirmed that their supervisors corrected each and every mistake in their first lesson.

The supervisors also tried to develop among the student-teachers the skill of lesson planning by giving model lessons, providing them old lesson-plan books, showing them their own plans, giving them oral suggestions and giving them practice in planning lessons by assigning topics and also assigning to them the class of their own choice. Some supervisors corrected the first lesson in a general way and then gradually errors in consistency, logic, sequence, language and other points of lesson-development were corrected in the subsequent lessons.

69.1% supervisors considered it advisable to correct each and every lesson plan of the student-teacher. But 85% student-teachers reported that they corrected each and every lesson plan. It seems that supervisors corrected each and every lesson plan, even though they did not consider it advisable. Perhaps, the system of guidance is so rigid that there is a very little opportunity for the supervisors to follow what they consider as desirable. Normally, it is expected of them that they correct each and every lesson plan before it is taught. They do so or at least they sign the lesson plan to signify that they have at least glanced through it before the lesson was taught.

It is interesting to find that almost all the supervisors 96.6% tried to develop self-confidence among their student-teachers. 83.1% of the student-teachers supported this contention. The supervisors were fully aware that they should develop self-confidence among their students. The supervisors

generally adopted the following procedures for this purpose:-

i) gave appreciative remarks in their lesson plan books;

ii) told them that they were showing steady and regular progress;

iii) encouraged them by showing model lesson-notes;

iv) inspired them;

v) encouraged self checking;

vi) developed the self-regarding sentiment among the student-teachers, and

vii) suggested good books to be read by them.

On the assumption that a good teacher-education programme should invariably familiarise the student-teachers with the realities (notably the dark side) of the teaching profession, the supervisors were asked if they considered it desirable to give them a few jerks and jolts during the training period (item 25). By "jerks and jolts" was meant that S.Ts. should be reasonably snubbed whenever they were found negligent in their work. 55.7% supervisors considered it desirable and 44.3% of them did not. It seems that they were evenly divided on the issue. Since they were not asked if they actually administered "jerks and jolts", it seems that even in theory, all of them were not prepared to give the S.Ts., a real taste of their future career. Nearly half of them believe that a kind supervisor is better than a blunt supervisor intent on making S.Ts face the realities of the profession while under training.

Finally, the supervisors reported (item 26) that they motivated the student-teachers to prepare a good lesson-plan

in the following ways:-

i) A large number of them reported that they gave them demonstration lessons. They considered that example is always better than precept.

ii) Many of them motivated the student-teachers by praising the good points in their lesson notes.

iii) The other modes of motivating the student-teachers were helping them collect the subject matter, making clear to them the steps in planning the lesson, asking them to copy good lesson-plans of other student-teachers, discussing the lesson-plans in the group to emphasize the fact that a good plan was essential for success in teaching, restraining the inefficient planners from preparing a final plan for a week or so, making them observe the lessons of good teachers, asking them to note the comments on the previous drafts of the lessons, discussing with them the important aspects of a plan, having a sympathetic attitude towards the student-teachers, and suggesting some useful reading material to them.

SECTION - C.

SUPERVISION

It may be stated that the term 'supervision', as used in this section, connotes the observation, evaluation and criticism of student-teachers' class room teaching by the by the supervisors. Supervisors generally sit at the back of the class and watch the teaching of the student-teachers.

They write a note on the weaknesses and errors as well as the strengths, of the student-teachers in the criticism note-book or the lesson-plan book. The data gathered about supervision are presented in this section of the chapter.

<u>Patterns of Supervision:</u>

Table 6-1. shows that 41.3% of the supervisors supervise the class-teaching of only those student-teachers whom they have guided in lesson planning (Item 1) and 40.5% of the supervisors supervise the class teaching of all the student-teachers in the practising school assigned to them, irrespective of the fact whether they have guided them or not. Only 12.4% of the supervisors supervise all the student-teachers in the subjects of their specialisation, wherever they may be teaching. A small fraction (5.8%) of the supervisors follow other patterns of supervision. These statements are also supported by the responses of the student-teachers, with a slight variation which is negligible.

Now it seems that, in general, there are two patterns of supervision. Firstly, the supervisors supervise the class-teaching of only those student-teachers whose lesson-plans they have guided. In this system, other supervisors have almost no knowledge about the standard of teaching attained by a particular student-teacher. The student-teacher monopolistically belongs to the teacher who guides and supervises his lessons in a particular subject. In this pattern of supervision, there are fewer chances of creating in the mind

TABLE C-1

Modes of Supervision

Sl. No.	Item No.	I T E M.	Supervisors' response.	Student-teachers response.
1.	1	Which of the following patterns of supervision is followed in your institution? The supervisor supervises the class-teaching of:		
		a) Only those student-teachers whom he has guided in lesson planning.	41.3%	
		b) All student-teachers in the practising school assigned to him irrespective of the fact whether he has guided them or not?	40.5%	
		c) All student-teachers in the subject(s) of his specialization wherever they may be teaching.	12.4%	
		d) Any other (please specify).	5.8%	
2.	2	Which of the following modes of supervision do you follow?		
		Please check:		
		a) Supervise every day all the student-teachers assigned to you each for a part of a period.	40.2%	61.7%
		b) Supervise each student-teacher for the whole period. (In this pattern a student is supervised once in 2, 3 or 4 days).	7.3%	6.0%
		c) Supervise 2 or 3 or more student-teachers in a period by rotation.	38.7%	33%
		d) Any other mode (please specify).	4.8%	
3.	3	If you follow mode (a) or (c) please state how much time you devote to a student-teacher on an average?		
		(a) ..	8.10 minutes	8.05 minutes
		(c) ..	7.30 minutes	

of the student-teacher, conflicts which generally arise due to differences of opinion among the supervisors where there are more than one. On the other hand, the student-teacher gets no opportunity to learn from other supervisors and his outlook is liable to be narrow and inflexible. Secondly, a student teacher is supervised by all or many supervisors. In this pattern of supervision it is likely that the student-teacher develops a broad outlook in respect of good teaching, if he is mentally and emotionally mature. He can also understand well the varied aspects of supervision. Of course, he is less likely to develop narrow loyalty to a particular person.

Modes of Supervision:

The responses to item 2 (vide Table-34) show that 49.2% of the supervisors supervised every day all the student-teachers assigned to them for a part of the period and 38.7% of them supervised by rotation the student-teachers in a period. The corresponding percentages of student-teachers who supported the prevalence of these modes of supervision are ~~61%~~ 61.5% and 33% respectively. It is noteworthy that only 7.3% of the supervisors and 6% of the student-teachers reported that supervision of a single student teacher was done for the whole period. (In this mode of supervision a student-teacher is supervised once in 2 or 3 or 4 days). 4.8% of the supervisors adopt other modes of supervision. On an average, a supervisor devoted 8 minutes to a student-teacher (median time is 8 minutes as reported by the supervisors and students at item 3). Thus, it is seen that in a period of about 40 minutes, the supervisor generally watches the teaching of a student-teacher

only for 8 minutes, (that is 1/5th of the period). He may not be able to observe the teaching for the rest of the time.

Errors in student-teachers' class-teaching

The seriousness of the errors generally committed by the student-teachers was rated by the supervisors and also by the student-teachers. The latter rated the errors according to their perception of how serious the error was in the view of their supervisors. The rating of the seriousness of the errors was secured by the investigator under the assumption that the rating was proportionate to the importance given to the supervisory practice in respect of which the error was committed.

The mean rating for each error with regard to its seriousness was calculated for the samples of supervisors and student-teachers separately. The two mean ratings for an error were averaged, if there was not much difference between them. The discrepancy was considered to be 'much' if one group rated the error as 'very serious' and the other as 'not serious' or if there was a difference of more than .7 in the two mean ratings. When there was much discrepancy in the ratings of any error, it was presumed that the related supervisory practice was indefinite or vague. Had the practice been definite and unambiguous, the two groups would have clearly understood the situation and they would not have viewed it so very differently.

An error was then termed as very serious, serious or not serious according to the value of the averaged rating

of the two samples of the supervisors and the student-teachers. Although the ratings were sought on a five point scale, the mean ratings fall in the three middle categories and no error was rated extremely serious or completely negligible. The interpretation of the average ratings shown in Tables C-2, C-3 and C-4 is given below:-

Average rating	Interpretation
2.5 to 3.5	Very Serious errors
1.5 to 2.5	Moderately serious errors
0.5 to 1.5	Not serious.

Very serious errors:

Table C-2 presents a list of errors which were considered to be very serious in the practice teaching programme. The mean ratings for these errors fall within the range 2.5 and 3.5

From Table C-2, it isclear the supervisors consider the errors due to lack of the knowledge of the subject matter as very serious (items at Serial Nos. 5, 6, 8 and 11). This is understandable as no teaching is possible unless the teacher knows the subject matter thoroughly well. Therefore, this practice of laying emphasis on the student-teachers' knowledge of the subject matter seems to be commendable and supervisors are justified in the stand they have taken.

The supervisors also consider the errors pertaining to the acquisition of know-how of teaching as very serious. They demand that student-teachers should develop good teaching skills to ask faultless questions (S.No.1) and to give a b.b. summary (S.No.4). The know-how of questioning, of seeking pupils' cooperation and of giving b.b. summary, should be an integral part of teachers' training programme.

TABLE 4-2.

List of Serious Errors committed by Student-Teachers

Sl. No.	Item No.	I T E M S.	Average rating
1.	6	The S.T. asks faulty questions.	2.9
2.	12	The S.T. does not develop the lesson with the help of the pupils.	2.7
3.	13	The S.T. is not able to maintain good discipline.	2.7
4.	17	The S.T. does not give a blackboard summary.	2.6
5.	20	The S.T. makes a mis-statement of facts.	2.75
6.	21	The S.T. gives wrong answer to an question asked by the pupil.	2.9
7.	22	The S.T. ridicules a pupil if his (pupil's) answer is wrong or his question is oblique.	2.6
8.	26	The S.T. drills his class in wrong pronunciation.	2.9
9.	28	The S.T. comes late to the class.	2.9
10.	34	The S.T. overlooks the mischief of the pupil and/or encourages them to do more mischief.	2.9
11.	37	The S.T. gives an incorrect answer to the pupils' question.	2.9
12.	38	The S.T. administers corporal punishment to a pupil where a lighter punishment would have been in order.	2.5

Finally, it seems that the supervisors also lay stress upon high standards of discipline and interpersonal behaviour. They consider that coming late to the classes (S.No. 9),

(S. No. 3.)

showing inability to maintain good discipline in the class, and overlooking mischief of the pupils or encouraging them to do more mischief (S. No. 16) are very serious errors.

Thus, it is seen that the errors resulting from lack of the knowledge of the subject-matter, want of professional skills and inability to maintain discipline are viewed as very serious errors by the supervisors. It may be concluded that supervisors lay much emphasis on the correct knowledge of the content to be taught, on methoddlogy of teaching and on maintenance of proper discipline in the class.

Moderately Serious Errors:

A perusal of the list of "moderately serious" errors listed in table C-3. makes it clear that most of them pertain to the methodology of teaching, such as logical sequence and linkage between the different steps in the formal teaching, modulation and intonation of speech, use of black board and other teaching aids, and also to the dress and voice of the student-teachers. Breaches of professional etiquette such as not keeping a promise made to the pupils, being harsh upon them, and being partial to some pupils or group of pupils also fall in this category. It is noteworthy that this class of errors does not contain errors due to lack of knowledge. The error listed at S.No. 21 in Table No.C-3, about a mistake in the b.b.summary may be due to ommission, because it is most unlikely that a student-teacher would write something decidedly wrong on the b.b.

Table 6.1.

Moderately Serious Errors

Sl. No.	Item No.	Items	Average Rating
1.	3	The S.T. is not able to connect the introductory question with the statement of the aims of the lesson.	2.4
2.	4	The S.T's aim is not stated emphatically. ..	2.15
3.	5	The S.T. does not distribute the questions evenly.	2.15
4.	7	The S.T. does not deal satisfactorily with the partly correct answers of the pupil ..	2.35
5.	8	The S.T. does not use the material aids where its use could have made the teaching more effective.	2.25
6.	9	The S.T. does not use the material aids appropriately.	2.30
7.	14	The S.T. does not encourage the pupils to ask questions.	2.30
8.	15	The S.T's black board writing is poor. ..	2.20
9.	16	The S.T's blackboard writing is faint. ..	2.05
10.	18	The S.T's black board summary is not properly organised.	2.02
11.	19	The S.T. is poor in black board sketching. ..	2.5
12.	26	The pitch of the S.T's voice is too high or too low for the class. ..	2.05
13.	27	The S.T. shows mannerism. ..	2.1
14.	29	The S.T. is not properly dressed. ..	1.05
15.	30	The S.T. misses the classes without informing the supervisor.	2.45
16.	31	The S.T. does not keep his promise to his class in respect of aids to the lesson he is teaching..	2.1
17.	32	The S.T. is partial to a pupil or to a group of pupils	2.4
18.	33	The S.T. is unnecessarily harsh upon the pupil.	2.4
19.	36	The S.T. gets nervous as the supervisor enters his class room.	2.3
20.	38	The S.T. is unable to explain a concept or process satisfactorily.	2.4
21.	39	There is a mistake on the blackboard summary given by the S.T.	2.5

It seems that the supervisors do not attach very much importance to blackboard writing, proper modulation and intonation of speech, logical sequence in teaching and the proper dress of the student-teachers. It is surprising to find that errors such as missing a class without informing the supervisor are treated lightly (S.No. 15). The supervisors seem to bother very little about good class-room manners and tolerate mannerisms and weaknesses such as nervousness. It appears that there is, at the present time, slackness about the training college regulations about etiquette which were at one time imposed very regorously.

<u>'Non-serious' errors:</u>

The errors given in Table C-4. have been categorised as 'not serious'. There is a sizable discrepancy between the mean ratings of the supervisors and of the student-teachers in respect of these errors. The discrepancy may be attributed to the fact that the underlying practice is not emphasized by the supervisors very much and there is no clear understanding of the degree of seriousness of these errors among them and among the student-teachers.

A comparison of the mean ratings of the supervisors and student-teachers makes it clear that many supervisors have rated these errors as ranking lower in the degree of seriousness as compared to the rating by student-teachers. The items also show that these errors are in respect of some formalities which are generally observed only in training

colleges, for example, placing of the lesson note-books at the back of the class, and writing down the topic of the lesson on the blackboard. The errors regarding redundant use of material aids, leaving the material aids in disorder after the lesson is over, and not finishing the lesson in the specified time are tolerated, because the training college methodology is material-aid ridden and overuse or even misuse of aids is considered to be better than making no use at all of the aids.

TABLE [illegible]

Errors regarded as 'Not Serious'

[illegible] No.	[illegible] No.	[illegible]	[illegible] visors mean rating	[illegible] teachers mean rating.
1.	1	The S.T. forgets to keep his lesson plan and/or criticism book in the proper place.	1.2	1.9
2.	2	The S.T. forgets to write the topic on the blackboard.	1.0	2.6
3.	10	The S.T. makes redundant use of the material aids.	1.8	2.6
4.	11	The S.T. leaves the material aids in disorder after using them.	1.9	2.6
5.	23	The S.T. is unable to finish the lesson in time.	1.6	2.3
6.	24	The S.T's pronunciation is markedly different from the usually accepted pronunciation.	2.0	2.7

One very interesting finding is that supervisors do not mind at all if the student-teacher fails to complete the lesson in the given time. This attitude of the supervisors has been the target of much criticism by the regular teachers of the practising school. The latter complain that student-teachers are apathetic in the matter of covering the content entrusted to their care. They devote most of the time to sharpen their professional skills and seem to be unconcerned about the coverage of the syllabus. The investigator feels that the complacent attitude of the supervisors in this matter is blameworthy. Supervisors should consider it highly irresponsible behaviour if the student teacher fails to finish the lesson in the given time. The planning of the lesson becomes meaningless, if the plan is not completed in time.

The supervisors' tolerance of the errors about pronunciation is another indication of notable deterioration in the standard of supervisory practices. There is no doubt that variations are found in the pronunciations of the English words. Still, there are some standard pronunciations of a word which must be strictly adhered to. And the deviant pronunciations of Hindi, Urdu or Sanskrit words should never be tolerated, because these are Indian languages.

Miscellaneous Practices:

60.5% of the supervisors are of the opinion that every lesson given by the student-teacher need not be supervised. 39.5% of them who opine that every lesson should be supervised

Table C-4 A.

Miscellaneous Practices

Sl. No.	Item No.	Practices	Responses of the supervisors: Yes	Responses of the supervisors: No	Responses of the student-teachers: Yes	Responses of the student-teachers: No
1.	40	In your opinion should every lesson given by S.T. be supervised?	39.5%	60.5%	91%	09%
2.	41	Should every error committed by the S.T. be corrected?	84.9%	15.1%	98%	02%
3.	42	Do you try to develop self-confidence among S.Ts?	96.4%	3.6%	82%	18%
4.	43	How do you convey your criticisms to the S.Ts?				
		1) By written remarks on the lesson plan itself?	36.7%	3.3%	42%	58%
		2) By written remarks on the separate commentary sheet?	17.2%	82.8%	32%	68%
		3) Orally to S.Ts.	37.8%	62.2%	26%	74%
		4) Any other means.	8.3%	-	-	-

suggest certain ways and means by which such supervision may be done. That fewer student-teachers should be assigned to the care of a single supervisor per period is suggested by most of them. Some of them suggest that the help of the regular subject-teacher of the practising-school may be taken while supervising the teaching of the student-teachers. The help of the cooperating teachers may also be sought as is done by the Regional Colleges of Education. Some supervisors suggest that, in the beginning, a thorough supervision running throughout the period should be done and later on the duration may be reduced. Another helpful suggestion is that the supervisor should reach the class at different points of time on different days, so that he may observe the student-teachers at different stages of the lesson development. But, it is rather surprising that 91% of the student-teachers are of the opinion that each and every lesson given by them should be supervised. Only 9% of them do not feel the need for getting every lesson supervised. That a high percentage of student-teachers are in favour of cent percent supervision may denote that they are very keen to get their teaching evaluated, so that they may know where they stand. It may also indicate that they fear that any unsupervised lesson may not be counted towards the requirements of teaching prescribed by the University. However, there is room for great discrepancy in the opinions of the supervisors and student-teachers, because the two samples differ in respect of their roles. It is just possible that fewer supervisors favour hundred percent supervision, because it would increase

their work and more student-teachers favour hundred percent supervision because they would benefit by the practice.

In response to the question regarding the correction of each and every error in teaching (item41) majority of the supervisors (84.9%) say 'yes'. Evidently they are in favour of correcting each and every error committed by the student-teacher. The other 15.1% of them are of the opinion that only gross mistakes of methodology and content should be corrected and the student-teachers should be encouraged to find out and correct their errors themselves, sometimes by observing others. They are of the opinion that every error cannot be corrected by the supervisor.

98% of the student-teachers are of the opinion that each and every mistake in their teaching should be pointed out and corrected by the supervisors. ~~98% of the supervisors also~~ hold the same opinion. It is natural that almost all students favour minute correction of errors committed by them, because then they can derive the maximum benefit from the supervision.

Developing self-confidence among the student-teachers:

96.4% of the supervisors reported that they tried to develop self confidence among the student-teachers (item 42). But only 82% student-teachers confirmed that their supervisors tried to develop their self-confidence in class teaching. The difference between the two percentages is large, but in themselves the percentages are very high. Therefore, it may be

concluded that supervisors try to develop self confidence among the student-teachers.

Communication of Criticisms and Remarks

How to convey the criticisms of the student-teachers work is a problem. 36% of the supervisors reported that they did this job by writing remarks on the lesson-plan itself, 17.2% by writing remarks on a separate commentary sheet and 37.8% by oral communication after the lesson was over. 8.3% of the supervisors follow different methods of communicating criticisms such as correcting the mistakes on the spot, making student-teachers realize their mistakes and through group discussion in spare time. The responses of the student teachers, by and large, confirmed these practices. 42% of the student-teachers reported that their supervisors noted down their comments on their lesson-plan books, 32% of them reported that they wrote the remarks on a separate commentary sheet, and 26% said that supervisors drew their attention to errors orally. It is thus clear that in general, three modes of conveying the criticism to the student-teachers are followed by the supervisors.

What did supervisors actually do when they supervised the teaching of the student-teachers? In response to this question the supervisors reported that they did a number of things. Their responses are classified below:

P.T.O. for Table C-5.

TABLE C-5.

Reports of the Supervisors about their Behaviour in supervising Teaching.

A. They observe the student-teacher and put down a remark about :-

i) Personality. dress, speech, pronunciation, sincerity, interest in work, confidence and mannerisms.

ii) Subject-matter: suitability of content, knowledge of subject matter and arrangement of subject matter.

iii) Teaching skills: narration, illustration, questioning, correcting the incorrect responses, blackboard summary, blackboard writing and sketching, and use of material aids.

iv) Class management: Attendance and discipline of students, routine regulations and class arrangement.

B. Some of the supervisors engage the class to demonstrate the right type of teaching, check the student-teacher if he commits some error and give suggestions for correct teaching.

The responses of the student-teachers to the questions as to what their supervisors did when they observed the lesson are given in the table below:

P.T.O. for Table C-6.

TABLE C-6.

Report of student-teachers about Supervisors' Behaviour during Supervision.

1. Supervisors observed the method of their teaching and wrote out remarks in the criticism book.
2. They observed narration, mode of reading, blackboard writing self-confidence and class discipline.
3. They observed the lesson-plan book and noted down the errors.
4. They looked at our faces, and
5. They enjoyed tea.

It is clear from Table C-6, the student-teachers' observation of the supervision done by the supervisors is fairly comprehensive. It is remarkable that they do not report that supervisors interrupt their teaching and give suggestions to improve it.

SECTION D.

ANALYSIS OF LESSON PLANS

This section presents the data about the current supervisory practices collected through the "Lesson Plans". The sources of the data were 147 lesson-plan books/criticism books of the student-teachers belonging to 13 teachers' training institutions taken in the sample. The remarks of the supervisors on the teaching of the student-teachers, as given in these lesson plans/criticism note-books, were categorised within the frame work of the analysis chart. Table D-1 presents the frequencies of different kinds of remarks.

TABLE D-1

Distribution of Frequency of Remarks in Area x Type of Remarks.

Type / Area	Negative	Negative but Suggestive	Neutral	Apprecia-tive	Construc-tive	Total	Percentage
Preparation	73	156	61	213	212	715	4.34%
Execution	806	1927	673	3838	2446	9690	59.1 %
Evaluation	186	346	142	1385	600	2659	16.18%
Personality	325	653	141	1384	828	3331	20.2 %
Others	5	20	-	5	10	40	.23%
TOTAL	1395	3102	1017	6825	4096	16435	-
Percentage	8.49%	18.87%	6.19%	41.52%	24.92%	-	100%

Distribution of remarks:

It is clear from Table D-1. that there were 16435 distinct remarks given in 147* lesson plan books/criticism books. On an average 112 remarks were given per lesson-plan/criticism-book, or what amounts to the same thing, 112 remarks were given per student-teacher.

The last column of Table D.1. shows the percentages of the remarks which fell in each of the content-categories. 58% of the total remarks were about the execution of the lesson-plans. Naturally, efficient execution of a planned lesson is the most important concern of the student-teacher and also of the supervisor. Therefore, it seems understandable that the supervisors gave most of their attention to this aspect of teaching.

Second in rank is the student-teachers' personality. 20.2% of the remarks were about their personality, such as smartness in dress, manners, speech etc. The third rank goes to evaluation. 16.18% of the remarks fall in this category. It seems that the supervisors evaluate their student-teachers in their day to day supervision. Perhaps, this evaluation is qualitative and pertains to a particular aspect of the teaching process, for example, blackboard work.

From the table it is clear that only 4.34% of the

* These 147 lesson plan books/criticism note books belonged to 147 student-teachers.

remarks are about the preparation of the lesson-plan. It apprently suggests that very low weightage is given to the preparation of the lesson-plans by the supervisors. But the low percentage of remarks in this category may be due to another reason. In most of the cases, the draft lesson-plans were corrected by the supervisors in advance i.e., before the student-teacher went to take the class. Therefore, there remained very little for the supervisor to see at the time of supervision. These remarks may probably be those given by supervisors who supervised the students when they had not guided them in the preparation of the lesson plans.

Only 0.83% of the remarks fell in the 'other' (or miscellaneous) category. It means that most of the supervisory remarks pertain to the execution of lesson plans, personality of student-teachers, evaluation of the teaching and preparation of the lesson plans.

The bottom row of Table 5.1 presents the percentages of remarks according to their quality such as -

i) Negative but critical: where the criticism of the performance of the teacher is negative in form or an adverse comment is made on his class-room activity. 'Do not suggest the answer to the question yourself', 'apparatus was not visible to the back benchers' are negative and critical.

ii) Negative, but suggestive: Sometimes the remarks are negative in form but they imply positive suggestions, for

example 'Do not have mannerisms', 'Do not speak too fast' etc.

iii) Neutral: where a remark is just a statement of the activity of the student-teacher without any comment it has been considered neutral. For example 'the teacher used the black-board', 'lesson was introduced', 'chart was shown' etc.

iv) Appreciative: where the remark gave approval, recognition or praise to the activity of the teacher it has been viewed as appreciative. For example 'Teachers' handling of students is sympathetic'; 'Teacher was well prepared'; 'Teacher got answers elicited from the students properly'; 'questions were properly framed' etc.

v) Suggestive: A remark was termed suggestive if it gave a positive direction to the teachers' activity by suggesting the steps for improving the performance, the direction for improvement or the aspects in which the improvement was required. For example 'the preparation of gas should have been explained with the help of demonstration', 'ask direct and specific questions', 'reduce the pitch of your voice' etc.

It is seen that 41.5% of the remarks are 'appreciative'. It seems surprising that supervisors give appreciative remarks in such abundance, because there is a general complaint by the examiners that the standard of teaching by the student-teacher is deteriorating. It is likely that the supervi

give appreciative remarks for the following reasons :

Firstly, they might have given the appreciative remarks to encourage the student-teachers and also to develop self-confidence among them. Secondly, the supervisors might have followed the path of least resistance. An appreciative remark hurts nobody, whether it has been awarded deservedly or not. Thirdly, it might have been due to 'halo' effect. Whatever be the reason or reasons, it is noteworthy that most of the supervisory remarks are appreciative.

24.0% of the remarks are constructive. Supervisors are aware of the need for giving concrete suggestions to improve the student-teachers' class-teaching. At the same time, it is difficult job to give constructive suggestions. It requires a lot of experience, insight, proficiency and sincere effort on the part of the supervisor to give such remarks. Therefore, the low percentage of constructive remarks does not appear to be usual.

It is really noteworthy that a sizeable percentage of remarks (18.0%) is negative in form but suggestive in meaning. It may be remarked that such remarks are not quite forceful and they are liable to be misinterpreted. Sometimes, the student-teachers miss the intent of the remark and consider it to be negative. Purely negative remarks are 8.5% in number. They are definitive in their effect and may be considered to be better than those in the previous category (negative but suggestive).

The percentage of neutral remarks, namely 6.2% is not high. These remarks have a neutral effect and satisfy only the formal requirements. A remark such as 'the lesson was taught', or 'B.B. summary was given' denotes a colourless fact and does not help improve student-teaching. Supervisors perhaps wrote such remarks to show that they had supervised the lesson, a formality which has to be gone through.

A scrutiny of the cell frequencies in table 6.1 shows that the largest frequency is in the execution-appreciative category. Nearly 20% of the total remarks fall in this cell. It means that supervisors mostly give appreciative remarks about execution of the lesson plan. This is understandable since it has been observed earlier that most of the remarks are 'appreciative' according to quality, and are about execution of the lesson-plans according to their content. The distribution of the frequencies of the remarks among the cells shows that they are equitably distributed.

Having presented the quantitative distribution of remarks, by means of the two-way analysis chart, it seems appropriate to deal with the specifics of each category according to the content.

Table No. 2.

Specific aspects of the Student-Teachers' Lesson-Plan noted by the Supervisors.

Sl. No.	Specific Aspects of Execution	No. of remarks	Percentage	Rank
1.	Introduction	231	2.4%	14
2.	Development of the lesson	571	5.9%	7
3.	Explanation	297	3.1%	12
4.	Narration	291	3.0%	13
5.	Demonstration	116	1.2%	20
6.	Model reading	531	5.4%	8
7.	Examples	166	1.7%	17
8.	Correlation	212	2.2%	15.5
9.	Logical sequence	130	1.3%	19
10.	Dramatisation	89	0.9%	21
11.	Knowledge of the subject	321	3.3%	11
12.	Questioning	952	9.8%	3
13.	Fostering Constructive Thinking	141	1.5%	18
14.	Dealing with answers	399	4.1%	9
15.	Student participation	815	8.4%	4
16.	Blackboard work	1237	12.8%	1
17.	Other teaching aids*	803	8.3%	5
18.	Fixing of the lesson	326	3.4%	10
19.	Recapitulation	212	2.2%	15.5
20.	Supervision of class-work	754	7.8%	6
21.	Class-management	1026	10.6%	2
22.	Home Assignment	30	0.3%	22
		9680	100.1%	

* Other teaching aids means all the material aids other than black-board.

Execution of the Lesson-plans:

The most cared-for aspect of the practice-teaching programme seems to be the execution of the lesson plans, as 53% of the remarks fall in this area. Table D-2. presents the percentage of the frequencies of remarks and their ranks under the various aspects of execution of the lesson plan.

It is clear from Table D-2. that the most cared-for aspects of the execution of the lesson plan are :-

	Percentage	Rank.
Black-board work	12.8%	1
Class management	10.6%	2
Questioning	9.8%	3
Pupil participation	8.4%	4
Teaching aids	8.3%	5
	49.9%	

The above five aspects account for nearly 50% of the total remarks about execution. It means the supervisors attach the greatest significance to blackboard work and other teaching aids (12.8 + 8.3 = 21.1%), questioning and student participation (9.8 + 8.4 = 18.2%) and class management (10.6%). It seems quite understandable because training college methodology is oriented towards the indispensible use of material aids and students participation as evinced by the question-answer process. Class management has attracted a high frequently of remarks, because it is a problem with the student-teachers most of the time.

Five least cared-for aspects of the execution of lesson-plans are :

Item	Percentage	Rank
1. Home assignment	0.3%	22
2. Dramatisation	0.9%	21
3. Demonstration	1.2%	20
4. Logical sequence	1.3%	19
5. Fostering constructive thinking.	1.5%	18
	5.2%	

These five aspects account for only 5.2% of the total remarks in this area.

It is really revealing that no care was bestowed on seeing that student-teachers gave home assignment to their students and corrected them. The seriousness of this supervisory lapse is heightened when it is borne in mind that every lesson-plan usually ends with a mention of specific home assignments.

It is understandable that very few remarks are about dramatisation and demonstration, because these techniques of teaching are confined to history and practical lessons in Science respectively. But, neglecting the observation of logical sequence and constructive thinking seems to be deplorable. These are the aspects of the execution of the lesson plan which should be given top priority.

TABLE D-1.

Traits of Student-Teachers' Personality as assessed by the Supervisors.

Sl. No.	Aspects of Personality	Frequency	Percentage	Rank
1.	Speech	505	15.2%	3
2.	Confidence	731	21.8%	1
3.	Self critical	010	0.3%	18
4.	Willingness to learn	51	1.5%	13
5.	Habit of hard work	656	19.7%	2
6.	Sincerity	65	2.0%	11
7.	Carefulness	31	0.9%	15
8.	Tolerance	25	0.7%	16
9.	Patience	143	4.3%	7
10.	Resourcefulness	91	2.7%	9
11.	Common-sense	5	0.2%	19
12.	Self control	23	0.7%	17
13.	Flexibility	49	1.5%	14
14.	Class-room manners	221	6.6%	6
15.	Student-teachers activity	228	6.8%	5
16.	Knowledge of individual differences	256	7.7%	4
17.	Dealing with gifted children	109	3.3%	8
18.	Dealing with problem children	72	2.3%	10
19.	Remedying problem children	60	1.8%	12
		3331		

It seems that other aspects of teaching are given moderate importance, because remarks about them are, by and large, infrequent and vary between 2% and 8%.

Personality:

Remarks about personality of the student-teachers were further analysed into different items and results presented in Table 5-3. From the table it is clear that the most important aspect of students' personality that are observed by the supervisors are:

Aspects Personality	Percentage	Rank.
1. Confidence	21.9%	1
2. Habits of hardwork	19.7%	2
3. Speech	15.2%	3
4. Knowledge of individual differences.	7.7%	4
	64.5%	

It is now clear that most of the appreciative remarks which were found to be in the area of personality were intended to develop self-confidence among the student-teachers, because 21.9% of the remarks in this area are about self-confidence. The second important aspect of student-teachers' personality which was stressed by the supervisors is their habit of hard work. Aspects of their speech and knowledge of individual differences are next in order of emphasis. 64.5% of the total remarks on personality fall in these four categories.

The four least important aspects of the student-teachers' personality which are not emphasized by the supervisors are :

Aspects	Percentage	Rank
i) Common sense	0.2%	19
ii) Self criticism	0.3%	18
iii) Self-control	0.7%	17
iv) Tolerance	0.7%	16
	1.9%	

These four aspects of personality account for only 1.9% of the total remarks. These personality qualities are not unimportant. Yet, supervisors do not emphasize them. Perhaps, they get very little opportunity to observe these characteristics. For example, in a preplanned lesson, where every answer or narration is structured and pupils ask questions only rarely, the student-teacher has very little opportunity to evince common sense. Naturally there are very few remarks in this area. It seems that the 'self-critical' attitude is rare among the student-teachers who are often on their defence. Perhaps, they get enough criticism from outside and feel no need for self-criticism. Hence, the supervisors have no means by which they could elicit the extent of self-control exercised by the student-teachers. Similorly, there is no occasion for the supervisors to mark out the tolerance of the student-teachers, because the chances are rare when they can exhibit this personality

trait.

The other personality characteristics such as resourcefulness, sincerity, flexibility etc. are emphasized only in a small measure (Table D-3). Moderately emphasized characteristics are patience, class-room manners, dealing with the gifted children etc.

Table D-4.

Aspects of the Supervisors' Evaluation of the student-teachers' lessons.

Sl. No.	Aspects of Evaluation	Frequency	Percentage	Rank
1.	Overall impression of the lesson.	1050	40.6%	1
2.	Progress of the student-teacher.	282	10.6%	3
3.	Application of the knowledge of Psychology.	118	4.4%	7
4.	Sympathetic attitude	285	10.8%	4
5.	Motivation of children	229	8.6%	6
6.	Interest of children	321 [344]	12.1% [12.6%]	3 [2]
7.	[illegible]	321?	12.1%?	
		2659	90.9%	

Evaluation:

From Table D-4, it is obvious that nearly two-fifths of the total remarks of the supervisors on evaluation are about the overall impression of the lesson taught. This

shows that supervisors are either unable to spell out the constituent parts of evaluation or they do not care to evaluate the student-teachers' performance in detail. It may be remarked here that the over-all evaluation is of doubtful educative value, because the student-teacher is unable to obtain from it an idea of his specific strengths and weaknesses.

Remarks about the evaluation of interest of the children and their attention come next in frequency. 12.8% of the remarks are about evaluation of children's interests and 12.16% about their attention. It means that the supervisors were of the opinion that the student-teachers' lessons were interesting and capable of engaging children's attention.

Remarks about the attitude of the student-teachers towards their pupils, about the progress of the student-teachers and about motivation of the children are also frequent. However, it is surprising to note that the supervisors laid very little emphasis on the evaluation of application of the knowledge of psychology to the teaching-learning process in the class-room. It seems that the theoretical knowledge of psychology of learning is not brought to bear on the practical aspects of learning. This is, in fact, a negation of the purpose of including psychology in the syllabus of the B.Ed., course.

Preparation of Lessons

Very little emphasis is laid by the supervisors

through their remarks given at the time of supervision, on the preparation of lesson-notes and preparation of the lesson. The different aspects of the preparation and the frequency and percentage of remarks about them are presented in Table D-5.

Table D-5.

Aspects of Preparation of Lessons by Student-Teachers

Sl. No.	Aspects of Preparation	Frequency	Percentage	Rank
1.	Preparation of lesson	274	38.3%	2
2.	Preparation of lesson-plan.	351	49.1%	1
3.	Further reading suggested.	90	12.6%	3
		715		

From Table D-5. it is seen that nearly half of the total remarks on the student-teachers' preparation are about the preparation of the lesson plans. 38.3% of them are about the student-teachers preparation of the lesson. It may be observed that the preparation of the lesson is different from the preparation of the plan. The plan may be very good, yet the student may not be prepared to give the lesson as efficiently as it has been planned. However, it is observed (vide Table D-4) that only 12.6% of the remarks are about suggestions for further reading. It is really a lacuna in the class-teaching by the student-teachers that

they do not suggest books for further reading. Knowledge gained in the class-rooms is thus not integrated with the knowledge imparted by the books.

Thus, it is seen that the analysis of remarks given by the supervisors at the time of supervision, clearly exhibits a hierarchy in the degree of emphasis laid on the different aspects of the class teaching done by the student-teachers. Supervisors laid emphasis on execution of the lesson plan, personality of the student-teachers, evaluation of the performance and preparation of the lesson in the decreasing order.

SECTION - E.

COOPERATION OF THE PRACTISING-SCHOOLS

Data about the extent of cooperation between the teachers of training institutions and the practising-schools, were collected from the principals and the staff of the schools. These are the persons who are on the job and know the realities of the situation full well. Consultation with them may prove of great benefit to the student-teachers as well as to the supervisors. This section presents the opinions of principals and teachers of practising schools regarding the extent of co-operation between them and the training institution and also their opinions about the

Table 8-1.

Cooperation sought from the Principals and Teachers of the Practising Schools.

Sl. No.	Item No.	I T E M.	Response	
1	1	क्या छात्राध्यापक आपको कक्षा को पढ़ाने के लिये विषय वस्तु के चयन में आपसे सहायता लेते हैं।	हाँ	61%
			नहीं	39%
2	2	यदि हाँ तो छात्राध्यापक ऐसी सहायता किस समय लेते हैं।	सत्र के प्रारम्भ में	56%
			पाठ-योजना में	29%
			दैनिक	9%
			अन्य	6%
				100%
3	3	क्या छात्राध्यापक कक्षा शिक्षण की विधि के बारे में आपसे सलाह लेते हैं?	अधिकतर	14%
			कम	29%
			बिल्कुल नहीं	57%
4	4	क्या छात्राध्यापक कक्षा को नियंत्रण में रखने के लिये आपकी सहायता लेते हैं?	अधिकतर	63%
			कम	29%
			बिल्कुल नहीं	8%
5	5	क्या छात्राध्यापक किसी पाठ्य सामग्री को कितने दिनों में व्याप्त किया जाय इस विषय में आपसे राय लेते हैं?	हाँ	21%
			नहीं	79%
				100%
6	9	क्या बी0एड0 के अध्यापक आपको हेय दृष्टि से देखते हैं?	हाँ	12.5%
			नहीं	87.5%
				100%
7	10	क्या बी0एड0 के अध्यापक आपकी बातों को उचित महत्व देते हैं?	हाँ	77%
			नहीं	23%
				100%
8	11	क्या बी0एड0 के अध्यापक आपसे शिक्षण विधि के विषय में बातें करते हैं?	हाँ	31%
			नहीं	69%
				100%
9	12	क्या बी0एड0 के अध्यापक आपसे छात्राध्यापकों के शिक्षण का पर्यवेक्षण का अनुरोध करते हैं?	हाँ	45%
			नहीं	55%
				100%

advantages and the dis-advantages of the practice-teaching carried on in their schools.

From Table 4-1. it is seen that 39% of the principals and teachers reported that they were not consulted by the student-teachers in the selection of the subject content to be taught by them. Perhaps, these teachers were not concerned with the classes engaged by the student-teachers. It is also probable that the supervisors themselves took the subject contents from the school teachers directly and distributed them among their student-teachers. Whatever help the student-teachers took from the school teachers, they perhaps did so in the beginning of the session (item 2). Rarely do student-teachers seek the help of school teachers daily.

It is surprising that the school teachers are rarely consulted about the methods of teaching. 87% of school teachers reported that they were not consulted by the student-teachers (item 3) and 69% of them reported that the supervisors did not consult them about the methods of teaching (item 11). The investigator feels there is estrangement between the training institutions and the school. One probable reason for this may be the rejection by the school teachers of the methodology of teaching imparted in the training colleges. May be, the supervisors feel the sting and do not talk to the school teachers on the subject.

However, the school teachers are requested frequently to help the student-teachers in their efforts to maintain class room discipline and class-management. 63% of the school teachers reported that their help was sought frequently and 29% of them reported that such help was sought only occasionally. Only 8% of them reported that they were never consulted for the purpose. Therefore, it seems that class management is a weak line in the teaching practice of student-teachers. Sometimes, the school teachers are requested to sit at the back of the class only to help maintain class-room discipline. This state of affairs is really a sad commentary on the so called interesting teaching done by student-teachers with the help of profuse material aids.

Another vital issue where the school-teachers should be consulted is the coverage of the syllabus. From Table 4-1. (item 5) it is clear that 70% of the school-teachers were not consulted on this issue. It may be remarked that it was found earlier* that the supervisors did not consider it a serious error if a student teacher did not finish the lesson within the period.

It is gratifying to find that most of the school-teachers (87.5%) felt that the supervisors did not look down upon them. Only 12.5% of them reported that they looked down upon them. It is unfortunate that even this small

---

* Vide page 85 of this report.

percentage of school teachers harbours such a feeling. But, on the whole the attitude of most of the school-teachers is favourable towards the supervisors. This conclusion is further strengthened by the fact that 77% of the school teachers reported that the supervisors accorded due to weightage to their opinions. There is thus considerable harmony and adjustment between the supervisors and the school teachers.

There seems to be a tendency among the supervisors to delegate the task of supervising student-teachers to the school teachers. 45% of the school teachers reported that the supervisors requested them to supervise the teaching of the student-teachers. The motivation for such a request may be two fold. Sometimes the supervisors request the school teachers to supervise the class, because they have no time. And sometimes they make the request to find out the reaction of the school teachers or to secure the evaluations of the school teachers in regard to the level of efficiency attained by the student-teachers. In the latter case, both the student-teachers and supervisors are benefitted, if they take the observations of the school-teachers sincerely. It is through such exchange of opinions that the school-teachers influence the supervisory practices. In the present investigation, however, it could not be ascertained which of the two motives noted above, influenced the supervisors to seek the help on the school teachers in the task of supervising the S.T.s.

The teachers of the practising school experience certain difficulties when their school is taken over as a practising school by teachers' training colleges/B.Ed. departments. At the same time they stand to gain in certain respects.

Responses to item 7 table [illegible]-2. show that the greatest dis-advantages is that there is a considerable lag in the coverage of the course. 88% of the school teachers complained of this difficulty.

74.8% of them reported that the pupils become naughty. The other dis-advantages are that they shirk the home-assignments (as reported by 62.9%) and they get habituated to the use of material aids (57%). 57.2% of school teachers complained that the student-teachers taught the wrong subject-matter and 55.5% of them said that the pupils lose the habit of self study. Thus, most of the school teachers are of the opinion that above dis-advantages exist wherever the student-teachers do practice teaching. However, only 33% of the school-teachers were found to be of the opinion that respect for the teachers in the mind of the students decreased because they saw that their teachers (i.e. student-teachers) were criticised by the supervisor in their presence.

As regards the advantages that accrue to the teachers from their school becoming a practising school, 78% of them reported that their social and professional contacts were

Table 4-2.

Advantages and dis-advantages of Practice-Teaching Programme to the Practising Schools.

Sl. No.	Item No.	ITEMS	Responses हाँ	Responses नहीं
1	1	कुछ परेशानियाँ जिनका सामना उन विद्यालय के अध्यापकों को करना पड़ता है जहाँ बी0एड0 के छात्र पढ़ाते हैं।		
		(अ) छात्राध्यापकों के पढ़ाने से छात्र शरारती हो जाते हैं।	74.8%	25.2%
		(ब) छात्रों का कोर्स पिछड़ जाता है।	88%	12%
		(स) छात्र सहायक सामग्री द्वारा पढ़ने के आदी हो जाते हैं।	57%	43%
		(द) छात्रों में स्वाध्याय की आदत समाप्त हो जाती है।	55.5%	44.5%
		(य) छात्र गृह कार्य करने में जी चुराते हैं।	62.9%	37.1%
		(र) अध्यापकों के प्रति उनके मन में आदर कम हो जाता है क्योंकि वे रोजाना देखते हैं कि छात्राध्यापकों की आलोचना की जाती है।	33%	67%
		(ल) छात्राध्यापक कभी कभी विषय वस्तु का गलत ज्ञान दे जाते हैं।	57.2%	42.8%
2	8	बी0एड0 के छात्राध्यापकों के पढ़ाने से मिलने वाली सुविधायें।		
		(अ) विद्यालय के अध्यापकों का कार्य भार हल्का हो जाता है।	37%	63%
		(ब) विद्यालय के अध्यापकों का शिक्षण की प्रगतिशील विधियों से सम्बन्ध बना रहता है।	59%	41%
		(स) बी0एड0 के अध्यापकों से परिचय होने से शैक्षिक/सामाजिक क्षेत्र बढ़ जाता है।	75%	25%
3	13	क्या आप पसन्द करते हैं कि बी0एड0 के छात्राध्यापक आपके विद्यालय के लिये अध्यापन करें	47%	53%

broadened due to relationship with the supervisors. 50% of them reported that they learnt about the latest developments in the methodology of teaching. However, most of them did not hold that their work load was reduced. Only 37% of them accepted that they felt relief when their classes were taught by the student-teachers.

The overall assessment of the advantages and disadvantages of a school becoming a practising school is revealed by the responses of the school teachers to item 13 (Table 4-2). Only 47% of them wished that their schools should be made a practising school. School-teachers are evenly divided on the issue. The dis-advantages seem to outweigh the advantages slightly. Thus it can be said that the teachers' training institutions are not proving their utility to the practising schools and they would not be sorry if the student teachers ceased to do practice-teaching in their school.

CHAPTER - VI.

CURRENT SUPERVISORY PRACTICES (CONTINUED).

Introduction:

The supervisor is the corner stone of the teacher training programme. His professional, personal and academic qualities are of the utmost importance in any research study pertaining to supervisory practices. Realising their significance in the programme for teacher education, the investigator included them in her research design. The data collected about those skills and qualities are presented section-wise in this chapter as indicated below:-

Section	Content	Source of Data	Tools
A	Professional skills of supervisors.	i) Supervisors	Q.1 part II Section A.
		ii) Student-teachers.	Q.2 Section C.
B	Personal characteristics of supervisors.	i) Supervisors	Q.1 part II Section B.
		ii) Student-teachers	Q.2 Section D.
C	Academic qualities of supervisors.	i) Supervisors	Q.1 part II Section C.
		ii) Student-teachers.	Q.2 Section E.

SECTION 'A'

PROFESSIONAL SKILLS

This section presents the data about the professional skills of the supervisors.

TABLE A-1.

Supervisors and student-teachers' ratings of the professional skills of the supervisors.

Sl. No.	Item No.	ITEM.	Scales	Supervisors mean rating N=89	Student-Teac mean rating N=287
1.	1	What is the level of your understanding of your student-teachers.	Very high-Very low	2.8	3.2
2.	2	To what extent do your S.T's follow your teaching?	Fully-never.	3.2	3.2
3.	3	How often do you use b.b. in your class lectures?	Always-never	2.9	2.6
4.	4	How good are you in b.b. writing?	Excellent-Very poor	2.6	3.7
5.	5	How good is your b.b. sketching?	Excellent-Very poor	2.4	3.1
6.	7	How often do you use illustrations to make teaching effective in your lecture classes?	Always-never	2.8	3.0
7.	10	How good is your English pronunciation?	Excellent Very Poor	2.6	3.2
8.	11	How good is your Hindi pronunciation?	Excellent Very Poor	3.2	3.5
9.	16	In lecturing to your class of S.T's how often do your follow the methods you teach the S.T's for use in their practice-lessons?	Always-never	2.4	2.9

Table A-1 presents the mean ratings of the professional skills of the supervisors made by themselves as well as by the student-teachers. The key to the numerical mean ratings is given below:-

Mean rating	Verbal description
Below 0.5	Very low (lower end of the scale).
0.5 to 1.5	Below average
1.5 to 2.5	Average
2.5 to 3.5	Above average
3.5 and above	Upper end of the scale.

From Table A-1, it is clear that both supervisors and student-teachers rate the supervisors' level of understanding of their student-teachers as above average. It is evident that the supervisors understand their student teachers fairly well. Similarly, both the groups agree that student-teachers follow the teaching of the supervisors, although not completely. Though the supervisors do not use the b.b. always, as they should, they do so nearly always.

Although the supervisors rate their black board writing as above average in excellence, their students rate it as excellent. Here, there is a large discrepancy between the two ratings. It is likely that the excellence of b.b. writing is judged by the two groups from two different points of reference. The criterion of excellence of the teacher is likely to be higher than that of the student-teachers.

Hence, there arises the difference in the two mean ratings.

Supervisors and students agree that the former make frequent use of illustrations to make their teaching effective and that their pronunciation of English words is good (above average). Here again, it is seen that the mean rating of the supervisors of their own pronunciation is 2.6 (which is at the lower end of the second category from the top), whereas the mean rating of the student-teachers is comparatively higher (3.2). The difference may be due to the difference in the points of reference of the two groups. But the two mean ratings fall in the same qualitative category and so the discrepancy is not much. Both the groups agree that the Hindi pronunciation of the supervisors is good, although it is not excellent.

It is interesting to find that the supervisors themselves follow the methods that they impart to their student-teachers for use in their practice lessons only moderately. The mean rating falls in the middle category. The student teachers, however, have a slightly better image of their supervisors' skills in following the training college methodology of teaching. The two groups differ in their rating and it may be concluded that there is some vagueness in the practice responses. It seems understandable that the supervisors do not follow the training college methodology of teaching in their own teaching, because then, they themselves cannot finish the course in time. However, it is

regrettable that they do not make use of the skills they try to pass on to the S.Ts.

TABLE A.2.

Supervisors' use of aids and skills in communication#.

Sl. No.	Item No.	I T E M S	Supervisors Yes %	Supervisors No %	Student-teachers Yes %	Student-teachers No %
1.	6	Do you organise the subject matter you have to lecture on to your student-teachers logically in writing before going to the class?	95.4	4.6	77	23
2.	8	Is your voice during lectures properly pitched?	100	00.0	87.6	12.4
3.	9	Is your speech properly intonated and modulated?	98.9	1.1	84.7	15.3
4.	12	Is your speech fluent?	100	00.0	78.3	21.7
5.	13	Do you possess the skill to guide your student-teachers in the preparation of material aids?	86.2	13.8	84.4	15.6
6.	14	Do you know how to operate the following:				
		i) Projector	42.3	57.7	35	65
		ii) Tape recorder	66.7	33.3	29	71
		iii) Camera?	76.4	23.3	26	74
7.	15	Which of the material aids can you prepare?				
		i) Charts	92.1	7.9	75	25
		ii) Models?	59	41.9	62	38

Lesson Planning:

The response to item 6 (Table A-2) makes it clear that most of the supervisors (95.4%) organised the subject-matter they had to lecture on to their student-teachers, logically in writing before going to the class. But the percentage of the student-teachers who reported that their supervisors organised their subject-matter logically in writing is not so high. Only 77% of the student-teachers corroborate the supervisors' statement. The discrepancy in the responses of the two groups is large. It means there is some vagueness in the practice. It is likely that the supervisors used their old notes over and over again. Some student-teachers considered the notes to have been specially prepared afresh for the specific lecture to them, while others did not view them as such. Therefore, it may be concluded that supervisors use notes in delivering lectures. Whether they are recently prepared for the purpose or are old notes is an indeterminable issue.

Speech:

All the supervisors reported that their voice during the lectures was properly pitched, but only 87.6% of the student-teachers confirmed this fact. It seems that according to student-teachers there are some supervisors whose voice is not properly pitched. It may safely be stated that supervisors are not good judges of the pitch of their own voice, as they are involved more in speaking than in hearing. It is the student-

teachers who can evaluate the intensity of the pitch. It may, therefore, be rightly concluded that not all but most of the supervisors speak in the class at a proper pitch.

From Table A-2, items 12 and 13, it is clear that there is a sizable difference between the responses of the supervisors and student-teachers with regard to the intonation, modulation and fluency of the speech of the supervisors. Although most of them have desirable speech qualities, yet there are some who fall short of the standard. The high percentage of the 'yes' responses by the supervisors to these items may partly be due to ego-involvement.

Skill in the use and preparation of aids:

86.2% of the supervisors possessed the skill to guide their student-teachers in the preparation of material aids. This fact is corroborated by 84.4% of the student-teachers. It means the responses are fairly consistent. Here it may be stated that all the teachers of the training colleges are trained and they are familiar with the know-how of the preparation of the material aids. Besides, they consider the use of material aids as a great prop of the training college methodology of instruction.

42.3% of the supervisors know the operation of the projector, 86.7% of the tape-recorder and 76.4% of the camera. But the percentages of student teachers corroborating these statements about the supervisors' skills are much less.

The discrepancy may arise from the fact that the supervisors get little opportunity to demonstrate the use of these skills to their students, because the institutions might not possess the aids. Thus, the student-teachers remain ignorant of their supervisors' skills. For example, it is believable that 76.4% of the supervisors know how to click a camera, but only 26% of the student-teachers have reported that their supervisors possessed this skill.

The response patterns of the supervisors and the student-teachers to item 15 (Table A-2) show that most of the supervisors possessed the skill to prepare charts. Although the percentage of student-teachers supporting the supervisors is lower, yet the supervisors may be believed. Here too, it can be argued that the student-teachers might be ignorant of the supervisors' real skills in this connection.

However, it seems that fewer supervisors are skilful in the preparation of models than in the preparation of charts. This is easily understandable, because preparation of models requires skill of a higher order and also the plastic materials may not be easily available. Since no information was sought regarding the facts pertaining to the supervisors' skill in preparing these aids for their own demonstration lessons, a supervisor might have reported the kind of skill he acquired as a student-teacher himself during his training period.

Interpersonal relations:

One of the dimensions of the professional skills of supervisors is the maintenance of warm and congenial relations with the student-teachers and also of unrestricted and free flow of ideas to and fro. Data collected from the supervisors and student-teachers in this connection are presented in Table 4-3.

From the table it is clear that 88.8% of the supervisors enjoyed teaching children. Nearly 84% of the student-teachers supported this contention. The high degree of agreement between the two sets of responses shows that the teachers really enjoyed teaching children. It means that they not only possessed the skill to teach the little children, but also showed keen interest in teaching them. This is a laudable attitude, because generally the teachers of higher classes develop a wrong attitude towards teaching children and take no interest in them.

94.4% of the supervisors reported that they enjoyed giving demonstration lessons. 78% of the student-teachers corroborated this fact. Although the two percentages are at at variance, yet both are very high and it can be said with a fair degree of reliability that the supervisors enjoyed giving the demonstration lessons. This fact is a natural corollary from their earlier responses when most of them reported that they enjoyed teaching the children.

However, there is a vast difference between the responses of the supervisors and the student-teachers regarding the

attention that supervisors paid to the individual needs of the student-teachers in their class. Only 28.2% of the student-teachers, as against 88.5% of the supervisors, reported that the latter attended to the individual needs of the student-teachers. The discrepancy clearly suggests that the practice is not significantly prevalent in the training colleges.

TABLE -A-3.

Skills pertaining to interpersonal relations.

Sl. No.	Item No.	I T E M.	Supervisors Yes %	Supervisors No %	Student-teachers Yes %	Student-teachers No %
1.	17	Do you enjoy teaching children?	88.8	11.2	83.9	16.1
2.	18	Do you enjoy giving demonstration lesson?	94.4	5.6	78	22
3.	13	Do you attend to individual needs of student-teachers in your class?	88.5%	11.5	28.2	71.8
4.	21	Do you maintain social distance between you and S.T's?	61.6	38.4	-	-
5.	22	Do you criticise S.T's in the presence of their class fellows?	23.6	76.4	46.3	53.7
6.	23	Do you treat S.T's as co-professional rather than as pupils?	73.3	26.7	72.7	27.2
7.	24	Do you try to develop neat and tidy work habits among S.T's?	98.9	1.1	87.6	12.4
8.	25	Do you inculcate gentlemantly behaviour in S.T's?	98.9%	1.1	92.2	7.8
9.	26	Do your S.T's ask questions in your class?	95.5	4.5	64	36
10.	27	Have you ever faced awkward situation in the class?	25.3	74.7	47	53
11.	28.	Do you pay special attention to - i) Gifted students	77.4	22.6	53.8	46.2
		ii) backward students?	85.7	14.3	46.2	53.8
12.	29	Are you easily accessible to your S.T's?	94.3	5.7	81.4	18.6

It is highly probable that 28.2% of the student-teachers, who reported that their supervisors attended to their supervisors attended to their individual needs in the class-room, were those who could ask for the help of supervisors and get the needed assistance. A majority of them evidently remained passive in the class and did not ask for help; so, the question of attending to their needs did not arise.

The consciousness that student-teachers are students after all, often results in a social distance coming in between the supervisors and the student-teachers. The two groups do not communicate with each other freely, even on reasonably relevant matters. The distance remains even in informal social gatherings. 61.6% of the supervisors maintained a social distance with their student-teachers and 38.4% of them did not (item 21). If teaching is defined as an interaction between the teacher and taught, the social distance is likely to hamper the cause of education. Sometimes, it is believed that the maintenance of a social distance is a traditional feudalistic concept which persists even today. Whether this practice be considered desirable or undesirable, it is clear that there is a sizable number of supervisors who do not maintain any social distance in regard to their students.

Only 23.6% of the supervisors reported that they criticised their student-teachers in the presence of their class fellows (item 22). Against this percentage, 46.3% of the student-teachers reported that they (supervisors) did so.

There is a wide gap between the responses of the two groups. Here the nature of the item suggests that supervisors are likely to under-report their behaviour and the student-teachers over-report it. However, it is reasonable to conclude that supervisors do criticize their student-teachers in the presence of their class-fellows, a practice which may be annoying to S.Ts.

It is interesting to find that both the supervisors and student-teachers agreed that the former treated the latter as co-professionals rather than as pupils (item 23). 73.3% of the supervisors and 72.7% of the student-teachers reported the above fact. It seems that a majority of the supervisors is aware of that aspect of professional ethics that demands the student-teachers be treated as their co-professionals. It may be pointed out here that the issue of social distance (item 21) is altogether different from that of co-professional treatment. Even among co-professionals, maintenance of social distance on the basis of cadre, age and prestige value of the field of specialisation is possible. But, the awareness that student-teachers are the co-professionals of the supervisors modified the very attitude of the latter towards the former. However, it may be noted that there are 26.7% of supervisors who do not accept the student-teachers as their co-professionals. Probably, they believe that the student-teachers are being trained as would-be teachers for secondary schools and at this stage of their

training they may not be considered as belonging to the professional cadre.

It is satisfying to find that nearly all the supervisors try to develop neat and tidy work habits among their student-teachers (item 24) and also to inculcate in them good manners (item 25). Training in neat and tidy work habits and in gentlemanly behaviour should be given a high priority in the training colleges, in view of the fact that those seeking admission to the training colleges at the present day generally come from the lower and lower middle socio-economic strata of the society. It is just possible that they are not familiar with the standard of work habits and manners which the schools and colleges wish to maintain.

Again, a serious discrepancy between the responses of the supervisors and student-teachers to item 26 is observed. 98.6% of the supervisors reported that their student-teachers asked questions in their classes, whereas only 64% of the student-teachers reported that they did so. Reflecting on the nature of the responses, we could find a plausible reason for the difference. It is likely that only 64% of the student-teachers asked questions in the theory classes engaged by most of the supervisors. But most of the supervisors without further thought reported that their student-teachers asked questions. Though only 64% of the student-teachers reacted to the teacher-stimulus in the class, yet we should consider the percentage satisfactory, because it is believed as a general

rule students "snore while their teachers roar".

One plausible consequence of the two-way communication in the class-room is that student-teachers ask some oblique questions which place the supervisors in an awkward situation. Or this awkward situation might arise whenever the memory of the supervisors plays false. Only 25.3% of the supervisors reported that they had to face such awkward situations, which they tackled successfully. 47% of the student-teachers reported that supervisors had to face such awkward situations. This is no reflection on the efficiency of the supervisors, because whenever there is a lively two-way discussion, there is every likelihood that such questions as are beyond the understanding or the ready recollection of the supervisors come up. In such cases the attitude should be heuristic and not defeatist.

A redeeming feature of the situation in respect of professional skills of the supervisors is that they pay special attention to the exceptional (the gifted and the backward) students. 77.4% of the supervisors and 53.8% of the student-teachers reported that the former paid special attention to the gifted students, and 85% of the supervisors and 46.2% of the student-teachers reported that they attended to the backward students. Although the percentages of the two groups (supervisors and the student-teachers) who gave 'yes' responses differ widely and consequently it may be asserted that the practice is not strongly followed, yet it may be

concluded that the practice is not totally absent. Even if the student-teachers' report is to be believed, it is satisfying to note that about fifty percent of the supervisors tried to meet the needs of gifted and backward students and that their entire teaching was not meant only for the average group.

94.3% of the supervisors reported that they were easily accessible to their student-teachers and 81.4% students bore testimony to this fact. These percentages, though at variance, are very high and it can be concluded that there is very little stand-offishness among the supervisors.

SECTION B.

PERSONAL CHARACTERISTICS.

Some personal characteristics of the supervisors were studied through questionnaire 1, Pt. II, Section B, meant for the supervisors and questionnaire 2, Section D, meant for the student-teachers. The characteristics of the supervisors were inferred from their self-reported behaviour in the given situations and also from the report of the student-teachers. Supervisors' responses were on a three-point scale (always-sometimes-never) and the student-teachers' responses were dichotomous (yes-no). The responses of the supervisors were quantified by assigning a score of 2 to 'always', 1 to 'sometimes' and 0 to 'never'. These quantified responses were

averaged and the mean scale value was interpreted in terms of the original categories as follows:-

Mean Scale Value	Interpretation
0.00 - .5	Never
0.50 - 1.50	Sometimes
1.50 - 2.50	Always

The dichotomous responses of the student-teachers were reported in percentages. The data are presented in table B-1. The Table indicated that the supervisors tried 'sometimes' to be popular among the student-teachers. It seems that they did not consider it desirable to court popularity among the student-teachers, otherwise they would have reported that they always tried to be popular, because popularity always gives ego-satisfaction. Perhaps, they anticipated that they might be accused of seeking 'cheap popularity' which is definitely considered as a derogatory behaviour. The differences* between the reports of the student-teachers and the supervisors seems to be natural, because the latter may be tempted to under-report their attempts to be popular.

---

*Here it may be argued, that since the response styles of the supervisors and the student-teachers are not identical, the responses are not comparable. But it has already been made clear that the responses of the two groups have been compared on the assumption, that if a large percentage of supervisors behave in particular manner or follow a particular practice, a large percentage of student-teachers is likely to report that the particular behaviour or practice is obtaining among the supervisors. Similarly, if a particular pattern of behaviour is very frequently repeated by supervisors, a large percentage of student-teachers is likely to report that they follow the behaviour or practice uniformly.

Table B-1.

Personal Characteristics

Sl. No.	Item No.	ITEMS	Supervisors' Mean Rating		Student-teachers Yes %	Student-teachers No %
1.	1	I try to gain popularity among S.Ts.	Sometimes	1.0	77.9	22.1
2.	2	In my dealings with the S.T's I maintain the dignity of the profession.	Always	1.90	77.0	23.0
3.	3	In my relationship with the S.T's I maintain a gentlemanly attitude rather than the attitude of a teacher.	Always	1.70	75.0	25.0
4.	4	I snub S.T. whenever his behaviour is not gentlemanly.	Sometimes	1.30	59.3	40.7
5.	5	I am unsparing in my criticism of S.T's teaching.	Sometimes	1.30	50	50
6.	6	I give helpful and constructive suggestions rather than negative criticism in order to improve S.T's teaching.	Always	1.80	81.3	18.7
7.	7	I give due consideration to individual differences among S.Ts when I give guidance.	Always	1.80	74.3	25.7
8.	8	It is difficult to assess S.T's objectively.	Sometimes	1.0	74.4	25.6
9.	9	I give full opportunity to S.T's to express themselves freely.	Always	1.80	83.3	16.7
10.	10	I lose temper whenever S.T's fail to come upto my expectations.	Never	0.40	41.6	58.4

(Contd...)

Table B-1 contd..

Sl. No.	Item No.	I T E M S.	Supervisors Mean rating		Student-teachers Yes %	No. %
11.	11	Losing temper is a good method making S.T's work at optimum level.	Never	0.45	53.9	46.1
12.	12	I do not mind unpunctuality on the part of S.T. only if I can spare the time when calls.	Sometimes	0.90	66.3	34.7
13.	13	I criticise the S.Ts only in their presence.	Always	1.70	69.7	30.3
14.	14	I quote a deserving S.T. as a model to other S.Ts.	Sometimes	1.30	67.4	32.6
15.	15	I am sympathetic to S.T's.	Always	1.70	-	-
16.	16	I do not pay attention to the complaints of S.T's.	Sometimes	0.97	40.9	59.1
17.	17	I maintain some distance between me and S.T's.	Sometimes	1.4	31.6	68.4
18.	18	My attitude to S.Ts is not rigid.	Sometimes	1.4	45.0	55.0
19.	19	I try to be smart in dress and manners.	Always	1.8	69.7	30.3
20.	20	I treat the members of the staff of Practising Schools with courtesy.	Always	2.0	-	-

Dignity of the Profession:

Responses to items 2 and 3 (table B-1) make it clear that the supervisors always maintained the dignity of the profession and also a gentlemanly attitude towards S.Ts, rather than that of an autocratic teacher. Most of the student-teachers also corroborated this contention of the supervisors. It seems that supervisors are conscious of their professional status and avoid doing anything that does not befit their profession. At the same time, they also seem to treat their student-teachers in a cultured manner and not in a brusque way as the general run of teachers do. Such a standard of interpersonal relationship is expected of the supervisors, because the student-teachers are, at least, graduates and sometimes elderly persons.

Frankness in criticism:

The supervisors snubbed the student-teachers only 'sometimes', if their behaviour was not gentlemanly. Student-teachers also supported this view partly. 59% of them reported that their supervisors snubbed them under such conditions. This response pattern shows that the supervisors are not very impulsive or short-tempered. They possess a reasonable degree of restraint.

'Sometimes' the supervisors were unsparing in their criticism of the lessons of the student-teachers' (item 5). They are moderately frank and apprise the student-teachers of their weaknesses, even if the criticism is unpleasant to the

letter. 60% of the student-teachers confirmed that supervisors were unsparing in their criticism. Their responses also denote that this practice is moderately obtaining in the training colleges.

Constructive and methodical outlook:

The supervisors 'always' gave constructive suggestions, rather than negative criticisms, in order to improve the teaching skill of the student-teachers(item 6). 81.3% of the student-teachers reported in favour of this contention of the supervisors. Supervisors evidently have a positive attitude towards the student-teachers and adopt a constructive approach to improve their teaching.

The supervisors reported that they always gave due consideration to individual differences among student-teachers when they guided them. A majority of students (74.3%) supported this claim of the supervisors. Thus, it is clear that the supervisors adopt methodical and psychological approaches in their dealings with their students. In their attempt to attend to the individual needs of the student-teachers, it seems that they seldom were partial to any S.T. This conclusion follows from their response to item 8. Supervisors stated that only 'sometimes' it was was difficult for them to assess the student-teachers objectively. Most of the time they could assess the student-teachers objectively and attend to their individual needs. However, the student-teachers seem to differ from the supervisors as

indicated in their response to item 8. 74% of them reported that it was difficult for the supervisors to assess them objectively. The S.Ts' opinion in respect of this issue is greatly influenced by their own feelings in the matter. Hence, it is difficult to say anything conclusively regarding the objectivity of the assessment of the student-teachers by the supervisors.

Liberal outlook:

Responses to items 9, 10, 11 and 12 (table 8-1) show that the supervisors were fairly liberal in their dealings with the student-teachers. They always gave the latter full opportunity to express themselves and never lost temper whenever the student-teachers failed to come up to their expectations. They did not believe that losing temper was a good method to improve the student-teachers. The latter also partly supported this contention, although some of them did feel that supervisors lost temper and believed in strong criticism. The difference is to be tolerated, not because it is due to any chance factor, but because the perception of others' behaviour is not free from the personal equation.

The supervisors also did not mind unpunctuality on the part of the student-teachers, if they could spare them time when they called. The supervisors were always sympathetic to student-teachers (item 15).

Another characteristic behaviour of the supervisors is that they criticised their student-teachers nearly always

in their presence and only rarely behind their back (item 13). But, they sometimes cited the example of a deserving student-teacher as a model to other student-teachers (item 14). It seems that the supervisors maintained a gentlemanly attitude in their communication with their students. The student-teachers acknowleged these facts to a great extent. The supervisors also did not sometimes pay attention to the complaints of the student-teachers. Perhaps, they feared that it would encourage the students to complain against others unnecessarily and develop among them a wrong attitude towards others. But they were not absolutely deaf to their complaints. They seem to have judged each case on its merit.

The supervisors sometimes maintained a distance between them and the student-teachers (item 17). Only 31.6% of the student-teachers approved of this behaviour of the supervisors. However, it seems that there is no rigid social distance between the supervisors and the student-teachers and that there exists some form of informal communication* between them.

The supervisors further stated that their attitude towards their students was flexible and not rigid. 45% of the students supported this view. It can be easily surmised that in the field of human relations obtaining in the training colleges, it is natural that attitudes should be flexible, firstly, because a particular gropp remains in the college only for a short period of one academic session,

* By informal communication is meant communication at a personal level, mostly outside the class-room.

and secondly, because the student-teachers are mature persons and are sensitive to the attitudes of the supervisors towards them. It is also probable that supervisors assess the student-teachers objectively and in consequence are free from bias.

The supervisors are punctilious about their own dress and manners. Perhaps, they still preserve some of the traditions of the training colleges of the days of the British rule when a supervisor used to be immaculately dressed and spoke in measured terms. However, only 60.7% student-teachers supported the contention of the supervisors in this respect. Evidently S.Ts observed some slackness in their teachers with regard to their dress and manners. And general observation supports the reports of the student-teachers rather than that of the supervisors.

It is interesting to find that the supervisors were always courteous to the staff of the practising schools and never tried to dominate over them.

SECTION - 4.

ACADEMIC QUALITIES

It was decided to make a survey of the supervisors' academic qualities under the assumption that these go a long way in shaping the academic tone of the teachers' training programme and especially of supervisory practices. The

The academic qualities of the student-teachers were also studied, because it was necessary to examine the validity of the assumption given above, and also to determine the nature and extent of the impact of the beliefs, attitudes and habits of the supervisors on the student-teachers. This section presents the data and their analysis in regard to the academic qualities of the supervisors and of the student-teachers.

Table C-1.

Attitude towards Research

Sl. No.	Statements.	Responses of the supervisors.		Responses of the S.Ts.	
		Yes %	No %	Yes %	No %
1.	The advancements in theory of education are, by and large the fruit of researches.	89.8	10.2	94	6
2.	The researches in education have helped immensely the cause of effective teaching.	90.8	9.2	93	7
3.	The advancements in the field of education are the product of critical thinking and insight rather than systematic and scientific research.	78.8	21.2	74	26
4.	The researches in the field of education have yielded no beneficial results to the profession.	26.4	73.6	63	37

From Table C-1. it is clear that 89.8% of the super-

-visors and 94% of the student-teachers believed that the advancement in the theory of education was, by and large, the fruit of research. Both the percentages are high and nearly equal. It means that there is considerable agreement between the supervisors and their students in this respect.

Similarly, 90.8% of the supervisors and 93% of the student-teachers reported that they believed that research helped immensely the cause of effective teaching (item 2). These percentages are also high and nearly equal. Thus, it appears that both the supervisors and the student-teachers have a fairly favourable attitude towards research and have faith in its powers. However, it cannot be said definitely that they are familiar with the contribution of research to educational thought and practice, and it is probable that the halo effect of research in the physical sciences might be colouring their vision of the researches in applied sciences, especially in education. However, it is really satisfactory to find that they look upon research in education with favour and do not have a negative attitude.

78.8% of the supervisors and 74% of the student-teachers believed that the advancements in the field of education were the products of critical thinking and insight, rather than of systematic and scientific research (item 3). These percentages are fairly high, but not as high as those at item 1 or 2. Still, there is a good deal of overlap in the

responses to items 1, 2 and 3, although the first two items express belief patterns which differ from those expressed at item 3. The first two items express faith in research, whereas the third item attaches importance only to critical thinking and insight. This overlap may be explained by stating that systematic research is not only not devoid of, but necessarily implies, critical thinking and insight. Much insight and analytical and logical thinking are needed for doing scientific research. Without these elements, masses of data, howsoever sincerely and accurately collected, yield no useful results. Therefore, the response patterns to item 3 is consistent with those to items 1 and 2 in the case of the supervisors and S.Ts. Thus, it may be inferred from the responses to items 1, 2 and 3 that both the groups possess favourable attitude towards research, as well as towards insightful and critical thinking.

The favourable attitude of the supervisors towards research is confirmed by their rejection of the suggestion that researches in the field of education have yielded no beneficial results to the profession (item 4). 73.6% of the supervisors [rejected item No 4.] ~~agreed to~~ it. But, it is strange to note that 63% of the student-teachers agreed to the suggestion that researches in the field of education yielded no beneficial results to the profession. This response of theirs seems to be incompatible with their earlier expressions of faith in the powers of research. The following reasons may be advanced

to explain this anamoly in their response patterns. It is likely that student-teachers are not familiar with the contributions of educational research to the advancement of the teaching profession, because the very mode of imparting knowledge to them is authoritative, in the sense that the results of researches are communicated to them as established facts. Hence, it is likely that student-teachers who are taking a first course in education, are unfamiliar with the contributions of research to the teaching profession, because of lack of proper emphasis on it in the lecture classes.

Personal libraries

61.0%* of the supervisors reported that they possessed personal libraries. Considering the economic condition of the teachers, it may be said that this percentage is fairly high, although it should be higher still. It is also satisfying to note that 28% of the student-teachers possess their own library. The response to the question about the subjects on which they had books revealed that 22 supervisors had books on literature, 24 on education, 8 on psychology, 4 on Sanskrit, history and economics each, 2 on sociology, civics and law and one each on statistics, research methods, botany, zoology, physics, chemistry, mathematics, geography, commerce and Art. Three supervisors kept miscellaneous books also. The data

*The figures in this and the following paragraph are not presented in the form of a table.

shows that the reading interest of most of the supervisors is limited to literature, education and psychology. Supervisors rarely keep books on subject-matter in their personal library.

66.7% of the supervisors and 76.5% of the student-teachers generally bought the books they liked to read and the remaining ones tried to procure them through other means, such as borrowing from the libraries, colleagues and class-fellows and the book sellers. The table given below shows the percentages of supervisors and student-teachers who procured books by these means:

TABLE C-2.

Procurement of Books.

Means for procuring books	Supervisors	Student-teachers.
On loan from libraries	47.0%	43.1%
Borrowing from colleagues or class-fellows.	31.3%	40.1%
Borrowing from the book-sellers	10.3%	16.9%
Other means (not mentioned)	10.9%	00.0
	100.0%	100.0%

It is seen that both supervisors and student-teachers satisfied their needs for books either by borrowing them from the library or from their colleagues, in case they were not in a position to purchase them. Only rarely they borrowed

them from the book-sellers. Perhaps, this kind of lending and borrowing of books is a rare practice in our country.

Table C-3. presents the percentages of the supervisors and student-teachers who spent all their leisure time or only a part of it, in reading serious literature.

TABLE C-3.

Leisure Time Reading.

Leisure time spent in reading serious literature.	Supervisors	Student-teachers.
All the time	7.1%	6.5%
Part of the time	90.6%	87.0%
None of the time	2.4%	6.5%
	100.1%	100.0%

It is clear from the table that most of the supervisors and student-teachers devoted a part of their leisure to the study of serious literature. Only 7% of the supervisors and 6.5% of the student-teachers were extremely serious minded, in the sense that they spent all their leisure in studying serious literature. However, there was a small fraction of supervisors (2.4%) and student-teachers (6.5%) who did not relish serious reading at all.

Item 5 of this section of the Questionnaire provides data about the leisure time activities of the supervisors and the student-

teachers. The responses of the supervisors and student-teachers presented in table C-4, show the relative frequency in percentage with which the different leisure time activities are followed by them. From this table it is clear that reading literature, serious or light and going on walks are the most popular leisure time activities among the supervisors. The least popular activities are physical exercises and practising music.

TABLE C-4.

Leisure time activities of Supervisors and Student-teachers

Activities	% of responses of supervisors*	% of responses of student-teachers*
Reading light literature	17.4%	14.1%
Reading serious literature	18.9%	9.4%
Playing indoor games.	11.4%	10.8%
Playing outdoor games.	6.3%	7.4%
Going on walks	19.2%	8.8%
Physical exercises	4.8%	7.1%
Pursuing hobbies	10.8%	8.6%
Practising music	3.6%	7.7%
Other activities	7.6%	26.0%
	99.9%	99.9%

* The percentages under these two columns are not the percentages of supervisors and student-teachers, but the percentages calculated out of their total responses to this item separately for the two groups.

Table C-5 shows that although most of the supervisors and student-teachers read daily papers regularly, yet only a few of them read research journals and professional magazines.

TABLE C-5.

Study habits of Supervisors

Sl. No.	Kind of the periodical Literature	Supervisors			Student-teachers		
		Read regularly.	Read now and then	Total	Read regularly	Read now and then	Total
1.	Daily Papers	81.6%	18.4%	100%	71.7%	28.3%	100%
2.	Popular Magazines	44.0%	56.0%	100%	46.2%	63.8%	100%
3.	Professional Journals	33.8%	66.2%	100%	24.3%	75.7%	100%
4.	Research Journals	26.6%	73.4%	100%	25.8%	74.3%	100%

It is really interesting to note that the reading habits of the supervisors and student-teachers seem to be similar. Only with regard to the professional journals, a lower percentage of the student-teachers reported that they read them regularly.

Only 26.6% of the supervisors read research journals regularly. This low percentage shows that either they are not interested in the acquisition of new knowledge reported in journals, or they have very little opportunity to read these periodicals, because very few institutions subscribe

for them. Any how, the study habit of the supervisors with regard to research journals may be said to be unsatisfactory. Although only 25.5% student-teachers read research journals, yet it is not serious draw-back, because they may not understand the language, style and standard of the research journals. These observations apply also to the reading of the professional journals.

The supervisors were asked to rank their preferences for the different kinds of articles in news-papers. Table C-6. presents the average of the rank-orders given by them. From this table it is clear that the first preference of the supervisors is for political news. Their second and third preferences are tied together for book reviews and serious articles and their fourth and fifth preferences are also tied together for editorials and short stories. Thus, it is clear that although their first preference is for political news, they are also interested in serious articles, book reviews, editorials and short stories. The supervisors are least interested in market shares, poems, crime and sensational news. It seems that they are only moderately interested in sports news, advertisements and science notes.

At item No. 9 of Sec. C of the questionnaire supervisors were asked to mention the branch of education in which they had specialised. Table C-6, presents the percentages of the supervisors who had specialised in the different branches of education.

TABLE C-6

Supervisors' preferential order of items in News Papers.

S.No.	Kinds of articles.	Average rank order of preference of the supervisors.
1.	Political news	1
2.	Book reviews	2.5
3.	Serious literature	2.5
4.	Editorials	4.5
5.	Short stories	4.5
6.	Sports news	6
7.	Advertisement	7.5
8.	Science notes	7.5
9.	Crime and sensational news	9
10.	Poems	10
11.	Market shares	11

TABLE C-7

Specialised knowledge of the supervisors

S.No.	Branch of Education	Percentage of supervisors
1.	Educational Psychology	16.7%
2.	Philosophy of Education (including principles and theories)	12.4%
3.	Research Methodology in Education	10.8%
4.	Current problems of Education	10.2%
5.	History of education	9.1%
6.	Administration and organisation	7.0%
7.	Psychology of children and adolescents	6.5%
8.	Sociology of education	~~65.9%~~ 5.9%
9.	Psychology of exceptional children	3.2%
10.	Economics of education and educational finance. ..	1.1%
11.	Management applied to Education	0.5%

From Table C-6. it becomes clear that most of the supervisors possessed specialized knowledge in educational psychology, philosophy of education, research methodology, current problems and history of education (Total 59%). Incidentally, it may be observed that all these areas, except research methods are the teaching subjects of the B.Ed.. course. Perhaps, the teachers reported themselves to be specialists in these subjects. It is interesting to note that few supervisors possess specialized knowledge of economics of education and management in education, Psychology of exceptional children and sociology of education. This means that they are unfamilier with the new trends and developments in the field of education.

It is really astonishing to note that very few supervisors wanted to read recent books and journals in their fields of specialization, 41% of the supervisors mentioned no book or journal. The others who mentioned a few books did not mention any recent publications. For example, a few supervisors mentioned the following books:

Bernard's "Educational Psychology", Anastasi's "Psychological Testing", Blair et el "Educational Psychology", Sorenson's "Educational Psychology", Super's "Psychology of Careers", S.N.Mukerjee's "Education in India", Myer's "Vocational guidance", Jones' "Principles of Guidance", and S.K.Pal's "Guidance in all lands". Most of these titles are not recent works. It means that the supervisors are, by and large,

unaware of the new books in their field of specialization.

Only 7 supervisors expressed a desire to study the British Journal of Sociology and Social Psychology and only 2, the Journal of Educational Research. Among the Indian journals which they wanted to read are the NIE Journal (2), Journal of Experimental Psychology (2), Teacher Education (4), Educational India (1) and Education (3). Nearly 50% of the supervisors mentioned no journal. It seems that they are not interested in the higher branches of their special fields.

Nearly 50% of the supervisors are not interested in subjects other than their teaching subjects. Out of the remaining ones, 20% are interested in Psychology, 14% each in Hindi, and History, 12% each in Art and Music, 10% each in English Literature and Economics and less than 8% each in Science, Sanskrit, Geography, Political science, Mathematics Home Science and Sociology. It is thus clear that no subject is of special interest to the supervisors. They seem to be interested in almost all the school subjects to some extent.

It is disappointing to find that 70% of the supervisors never attended any seminars, conferences, workshops or summer institutes and so did not refresh their knowledge. They must have been repeating their old experiences of teaching with tenacity from year to year. Out of those who attended seminars and conferences 12% attended seminars in student-teaching, 10% attended summer institutes, 5% workshops and

3% conferences. It is a revealing fact that in spite of the best efforts of the NCERT, most of the supervisors did not avail themselves of the opportunities provided to them to refresh and improve their professional knowledge and skills.

Nearly 66% of the supervisors who attended seminars and conferences believed that those served as venues for academic discussion. However, 34% of them thought they served mainly as occasions for social gathering and friendly get together. It is clear that these supervisors did not have a favourable attitude towards the seminars and conferences and it is likely that they did not avail themselves of the opportunity sincerely. Only a very small fraction of the supervisors attended these seminars with a sincere purpose and was really benefitted by them.

Organisation of group discussions in the teachers' training institutions is a very rare phenomenon. Only 10% of the supervisors organised such discussions often, 73.8% organised them only occasionally and 16.3% of them never organised such meetings. From her own experience the investigator can say that the supervisors lack the initiative for organising any discussions or talks of an academic nature. Only 26.5% of the supervisors held inter-departmental discussions in their college and 73.5% did not.

It is interesting to find that tutorial classes

were held by the supervisors in most of the training institutions, and the median number of classes held per week by a supervisor was nearly 7. In tutorial classes, 63.5% of the supervisors had informal talks with student-teachers in order to gain their confidence. It means the supervisors tried to develop informal interpersonal relations in the tutorial classes. Only 36.5% of the supervisors did not have informal talks.

In response to the question about their view on 'teachers' participation in politics', it was surprising to find that 43% of the supervisors expressed no view at all. It is surprising, because in response to an earlier question on their reading interests, they reported that they liked political news most. The discrepancy between the two responses may be explained by pointing out that interest in political news is one thing and actual participation in political affairs is altogether a different thing. 24% of the supervisors were of the opinion that the teachers should not take part in politics and 18% of them were of the opinion that they should take part in it. However, there was a small fraction of 15% who reported that the teachers should be familiar with current political events but that they should not take part in politics. This group was, in substance, of the view that they should not participate in active politics. No sensible person would like to say that the teachers should shut their eyes to political

events altogether. It is clear that most of the supervisors were not in favour of participation in active politics.

Only three supervisors did any research other than their M.Ed., project and no one ever published any paper in any journal. Also, supervisors very rarely contributed any article in education or allied subjects to popular periodicals. Only 4 of them ever wrote articles for their college magazine. Twelve supervisors (nearly 14%) were engaged in research for the Ph.D. degree and no one was doing research for any other purpose. Thus it is clear that the interest of supervisors in actual research is negligible, although they have a very favourable attitude towards research (vide p. 138). Only one supervisor who had taken the Ph.D. degree was guiding students for the doctoral degree. Nor did any supervisor ever receive grant or award from NCERT or UGC for conducting research or publishing research reports.

Thus this investigation has brought to light a very dismal picture of the supervisors' interest and participation in higher academic activities. Supervisors' contribution to the production of new knowledge is nil.

Most of the supervisors had no intention of making B.Ed. students research minded. How could they when they themselves are immune to the contagion of research? A few teachers (3%) suggested they inspired S.Ts to read good books and to carry out short action-research projects.

On the whole, the academic qualities of the supervisors

are of the traditional type. Their knowledge and interest in the new fields of education are limited, and they seem to be averse to innovations and are unlikely to profit by experience scientifically.

SUMMARY

Below is given a brief summary of the supervisory practices which have been presented in this and the preceding chapter.

Organisation and administration:

All the teachers' training colleges of the Agra University were established after independence. None of them has all its practising schools under its own administrative control. A few institutions have one or two schools under their partial control. The practice-teaching is done mostly in two blocks, one for nearly one month in the months of August to October and the other in January to March.

In most of the colleges the supervisors are assigned 10 to 25 lessons per day for guidance and 10 to 20 lessons per day for supervision, with a median number of 16 and 15 respectively. Internal evaluation of the sessional work is mostly done by the subject specialist, though in some institutions all the supervisors give their individual assessment of a student-teacher. But, they do not use any

definite evaluation sheet for daily assessment of the practice-teaching done by the student-teachers.

Provision for co-curricular activities such as, debates, games and sports, first aid, scouting and dramatics exists in most of the institutions. There is also provision for educational handwork, but very few of the institutions have additional staff to help the student-teachers prepare material aids.

Guidance:

Supervisors ascertain the preferences of the student-teachers for practising schools only moderately, but most of S.Ts manage to get the school of their choice. In most of the institutions the preferences of the student-teachers for a particular class are ascertained. Ordinarily the supervisors assess the S.Ts' knowledge of the subject matter and try to bring them upto the mark if they are deficient in the basic knowledge of the teaching subject.

Nearly 50% of the supervisors follow the Herbartian approach of preparing the lesson-plan and only 8.2% of them follow the evaluation approach. The remaining follow the combination of the Herbartian and evaluation approaches. In the real sense the supervisors do not guide the student-teachers in the preparation of correct lesson plans. Most of them correct the plans themselves whenever they are faulty in one respect or the other. However, they lay great

emphasis on the correctness of the subject matter, written language and pronunciation of the student-teachers. Besides, equal emphasis is laid on the acquisition of the proper skill for questioning. The student-teachers are helped in acquiring the material aids from different sources and are also instructed to use them properly.

The supervisors mostly correct all the mistakes in the very first lesson plan. But, as a measure to develop self-confidence among their students, they sometimes permit them to teach a lesson, the plan for which has not been corrected in advance.

Supervision:

The two most prevalent patterns of supervision are (i) to supervise the class-teaching of only those student-teachers whose lesson plans have been corrected by the supervisors concerned and (ii) to supervise the class-teaching of all student-teachers in the practising schools assigned to the supervisors, irrespective of whether they have guided them in planning the lesson or not. The most prevalent mode of supervision is to supervise the class-teaching of all the student-teachers daily for a part of the period only, because several (3 to 6) students assigned to a supervisor teach in the same period. The median time devoted to the supervision of one student-teacher in a period of 40 minutes is 8 minutes. The other mode, although followed less frequently is to supervise only two or three student-teachers

per period by rotation. Very rarely the supervisor supervises the class-teaching of a student-teacher for the whole period.

The supervisors lay very much emphasis on the correctness of knowledge imparted by the student-teachers to their pupils, on skills of communication, on discipline and on interpersonal relations. They lay moderate emphasis on methodology of teaching such as logical sequence, speech, use of black-board and other aids, on dress of the student-teacher and on class room manners, including impartial and fair behaviour with the pupils. However, they lay very little emphasis on the extent of the subject-matter covered in a period and they also tolerate the errors of pronunciation, although they take much care of the pronunciation at the time of guiding the S.Ts.

The supervisors do not feel the need for supervising each and every lesson given by the student-teachers, but they feel that each and every error in teaching should be minutely observed and pointed out to the student-teachers. Most of the supervisors try to develop self-confidence among the student-teachers. They communicate their criticism of class-teaching mostly by writing remarks on the lesson plans or orally. In some institutions separate criticism note-books are maintained for recording the supervisors' observations.

<u>Cooperation with the practising school:</u>

Most often the regular teachers of the practising

schools are consulted by the student-teachers or their supervisors regarding the content of the course to be taught by the former. But sometimes they are not consulted at all. Whatever help the student-teachers seek from the school teachers, they mostly take in the beginning of the session. The school-teachers are very rarely consulted about the methods of teaching both by the student-teachers and their supervisors. However, their help is sought in the maintenance of class-discipline and class-management.

There exists fairly amicable interpersonal relation between the supervisors and the school teachers and sometimes the former request the latter to do the supervision work.

The teachers of the practising schools feel some difficulty when their schools are used for practice-teaching. For example, their pupils become naughty, habituated to the use of material aids and shirk home work. They also feel that the course lags behind in coverage. But, they admit they come in contact with the modern innovations in teaching when their schools are used for practice-teaching, and thus derive benefit from the contact with supervisors.

Professional skills:

The supervisors understand their student-teachers fairly well and adjust their teaching in such a way that it is followed by them nearly fully. The supervisors use the blackboard fairly frequently and their blackboard writing

is above average in excellence. They also make use of illustrations in their own teaching. The Hindi pronunciation of the supervisors is good, but their is room for improvement. Their voice is properly pitched, but speech is not properly modulated.

It is interesting to find that the supervisors do not always use the methods of teaching which they recommend to their own student-teachers. They follow the method only to a moderate extent. But, they frequently organise the subject-matter that they have to teach logically before they go to their own theory class. Most of the supervisors possess the skill to guide their student-teachers in the preparation of charts and diagrams, but very few of them can guide them in the preparation of models. They are not proficient in the operation of tape-recorder and projector, but they can handle a camera.

The supervisors enjoyed teaching the children and did not hesitate to give demonstration lessons. But, it cannot be said with certainty that they attended to the individual needs of the children. A fairly good number of supervisors (61.6%) maintains social distance with their student-teachers and does not mix with them in social gatherings. Also, some of them criticise a student-teacher in the presence of his class-fellows, a practice which is unpleasant to the victim of the criticism. But most of the supervisors avoid this mode of criticism. They convey their criticisms through

written remarks or group talks. They also treat the student-teachers as co-professionals, and not merely as pupils and try to develop among them neat and tidy work habits and good manners.

Some supervisors encourage their students to ask questions in the class-room and do not mind if they are at bay and have to face awkward situations when some questions are oblique. The supervisors teach their class with a fairly open mind. As regards the professional skill in teaching the exceptional children, the supervisors possess it in a moderate degree.

Personal characteristics:

The supervisors do not try to be popular among their students, perhaps they do not think it desirable to make deliberate attempts to win popularity. They maintain the dignity of the profession and hold a gentlemanly attitude towards their student-teachers. They snub the S.Ts only sometimes, if their behaviour is not cultured or gentlemanly.

The supervisors have a helpful attitude towards their student-teachers and give constructive suggestions rather than critical remarks to improve their teaching. They try to be impartial to S.Ts in their dealings. They have a flexible attitude towards their students. They are also liberal and give them ample opportunity to express their view-points. The supervisors do not mind unpunctuality among

their student-teachers. They are also not particular about the smart bearing of their student-teachers. But they are punctilious about their own dress and bearing.

The supervisors treat the teachers of the practising schools with courtesy.

Academic qualities:

Most of the supervisors believe that the progress in theory of education is the fruit of researches and also that researches helped immensely the cause of effective teaching. They also believe that advancements in the field of education are products of critical thinking and insights.

61% of the supervisors possessed personal libraries. Whenever they need a book and are not able to purchase it, nearly half of them borrow it from the library and about 31% of them borrow it from their colleagues; others procure it from other sources. Only 7% of the supervisors read serious literature most of the time. Most of them devote to such literature only a part of their time. Their favourate leisure-time activities are going on walks, reading serious literature and/or light literature and playing indoor games. Most of them (81.6%) read daily newspapers, some of them (44%) read popular magazines, only one third of them read professional journals and one quarter research journals regularly. They seem to be interested mostly in political news, book reviews, and serious literature appearing in the daily newspapers. Most of them are not in favour of active participa-

-tion in politics.

The supervisors' most favourite branches of education in which they possessed specialized knowledge, are educational psychology, philosophy of education, research methodology in education and current problems of education. Subjects finding the least favour with them are psychology of exceptional children, economics of education, educational finance, and management applied to education. It means that they are relatively unfamiliar with the recent advances in the field of education. Nearly 50% of the supervisors are not interested in subjects other than their teaching subjects. Their contribution to new knowledge is also negligible.

Most of the supervisors possess favourable attitude towards seminars, summer institutes and academic conferences. But, there are supervisors who think that the seminars and summer institutes are venues for social get togethers. This investigation brings to light a very dismal picture of the supervisors' interest and participation in higher academic activities.

CHAPTER - VII.

NORMS FOR EFFICIENT SUPERVISORY PRACTICES.

In the present chapter the norms for efficient supervision, collected through the rating scales, are presented. These norms emerge from the analysis of the responses of experienced teacher-educators to the items of the rating scale. It may be recalled that the teacher-educators were required to rate the importance of the practices for efficient supervision on a five point scale. It is implied that practices rated as extremely important and helpful for the purposes of supervision should be followed largely and those rated as moderately helpful/important should be followed only moderately. For the sake of clarity, data collected through the ratings of the practices have been presented section-wise as given below:-

Section	Area of Norms	Source
A	Guidance	Rating Scale
B	Supervision	"
C	Professional skills	"
D	Personal qualities	"
E	Academic qualities	"
F	Miscellaneous practices	"

SECTION - A.

GOALS FOR EFFICIENT GUIDANCE

TABLE A-1.

Norms for Guidance Practices in Supervision.

Sl. No.	Item No.	I T E M.	Mean rating	Qualitative category
1.	1	Ascertaining the preferences of a student-teacher for a particular practising school and assigning him/her to that school.	3.83	Moderately helpful.
2.	2	Assigning the S.T. to the practising according to the discretion of the supervisor in the interest of the S.T.	4.03	Moderately helpful
3.	3	Ascertaining the preferences of S.T. for a particular class for teaching and making an assignment accordingly.	4.07	Moderately helpful
4.	4	Helping the S.T. in analysing the syllabus into lesson units.	4.63	Extremely helpful
5.	5	Helping the student in determining the teaching points in a lesson.	4.66	Extremely helpful
6.	6	Asking the S.T. to rehearse the lesson before he/she goes to teach.	3.77	Moderately helpful
7.	7	Correcting each and every mistake in the very first lesson plan of S.T.	3.89	Moderately helpful
8.	8	Correcting each and every lesson plan of the S.T.	4.00	Moderately helpful
9.	9	S.T. securing a certificate from the head/subject teacher of the practising school to the effect that a lesson has been delivered when it has not been supervised by the supervisor.	3.18	Neither helpful nor un-helpful.

From Table A-1 it is clear that the practices mentioned at serial Nos. 4 and 5 are extremely helpful for supervision. Supervisors should invariably help the student-teachers in analysing the syllabus into lesson units and also in determining the teaching points. Firstly, the importance of dividing the syllabus into lesson units is felt very much, because without this division the coverage of the content within the specified period of time cannot be achieved. It may be recalled that the school teachers generally complain that student-teachers do not cover the course within the specified period of time (vide page of this report).

Secondly, the determination of the teaching points in a lesson is also very important and it is the key to the planning of a lesson by the evaluation approach. Without a clear understanding of the teaching points, the lesson is liable to be vague and unsuccessful in execution. Thus, it seems quite reasonable that both of these practices i.e. 'helping the student-teachers in analysing the lesson into units' and 'helping them in the determination of the teaching points' should be greatly emphasized by the experienced supervisors.

From Table A-1. it is also clear that practices mentioned at serial Nos. 1 through 3 and 6 through 8 are only moderately helpful for bringing about efficiency in the work of supervision. For example, ascertaining the

preferences of student-teachers for a particular practising school and assigning them to that school (item 1) is only moderately helpful and should be practised only moderately. This is understandable, because sometimes the student-teachers are motivated by unjustifiable and unacademic considerations in choosing a practising school. A sincere and responsible supervisor should exercise his own judgement, whenever he finds that the student-teacher's motive behind his preference for a school is not reasonable and/or academic. At the same time, assigning the student-teacher to a particular school should not be left completely to the discretion of the supervisors (item 2), because in that case they may disregard the choice of the student-teacher even when it is justified.

Another moderately helpful guidance practice is that of ascertaining the preference of the student-teachers for a particular class for teaching and assigning them to that class (item 3). This practice is judged to be moderately helpful, perhaps for the reason that sometimes student teachers avoid teaching higher classes, not because they have not studied the subject upto the degree level, but because they want to have an easy time of it in the preparation of lessons. They work below their optimal level of ability. Similarly, there are some student-teachers who wish to teach higher classes only for the prestige value or under the impression that teaching a higher class fetches good marks at the final examination. Hence, it seems natural that the experienced teacher-educators consider this practice of ascertaining preferences of the student-teachers for a class

not as 'extremely helpful' but only as 'moderately helpful'.

Other moderately helpful guidance practices are, asking the student-teacher to rehearse the lesson before he goes to teach, correcting each and every mistake in the first lesson plan, and correcting each and every lesson plan. Rehearsal of the lesson may result in the guidance procedure being over-done, and becoming laborious and impracticable. The main objective of guidance is missed, if the student-teachers are asked to rehearse the lesson. It is perhaps for these reasons that the experienced teacher-educators do not lay very much emphasis on this practice.

Correcting each and every error in the very first lesson is also only 'moderately helpful' because it discourages the student-teachers who are in the initial stages of their professional training. They are to be helped and not awed and subdued. It may be stated here that it is impossible for any one to prepare a fool-proof lesson plan, because there is no absolute standard for a correct lesson plan. There is no unassailable criterion by which to distinguish correct and incorrect lesson-plans. Hence, the experienced teacher-educators do not seem to attach very much importance to this practice. Similarly, they do not think that correction of every lesson plan by the supervisor is extremely helpful. Evidently, they are not opposed to the idea that the student-teachers should be permitted to teach some

lessons which have not been formally corrected. This practice may develop self-guidance among the student-teachers.

In some teachers' institutions, the student-teacher secures a certificate from the head/subject teacher of the practising school to the effect that he had taught the lesson, whenever the supervisor is unable to observe his class-teaching (item 9). The experienced teacher-educators are of the opinion that this practice is neither helpful nor unhelpful for enhancing the efficiency of supervision. And this is true. Actually, it is a practice that seems to have emerged from the assumption that the student-teachers may 'cheat' rather than 'teach', whenever they get an opportunity to do so. That the experienced teacher-educators do not judge this practice as definitely harmful substantiates the correctness of the assumption. It may be concluded that this practice is not helpful and should not be introduced in new institutions. However, those which are now following the practice may continue to do so, because it is not positively harmful to the cause of teacher-education.

SECTION-B.

NORMS FOR EFFICIENT SUPERVISION.

In order to find out the norms for efficient supervision, the experienced teacher-educators were asked to rate a number of errors generally committed by the student-teachers on a five-point scale of seriousness. It was assumed that errors

in respect of the very important aspects of supervision would be rated as very serious, those in respect of the moderately important practices would be rated as moderately serious and so on.

Very Important Practices:

From Table B-1, it is clear that errors at serial Nos. 2, 4, 7, 8 and 9 are rated as very serious. It means that the practices mentioned at these items are very important for efficient supervision. For example, to ask a faulty question is a very serious error (item 2). Undoubtedly, the student-teachers should not ask faulty questions and if they do so, the supervisors should take a very serious note of it. The supervisors should also try to eradicate this kind of error.

The experienced teacher-educators also prescribed that the lesson should be developed with the help of the pupils (item 4), otherwise the entire teaching is likely to degenerate into a grand monologue which does not make any impact on the passive listners in the class. The supervisors should, therefore, carefully mark at the time of supervision the extent to which the student-teacher elicits the co-operation of his pupils in developing his lesson.

Sometimes, the student-teachers pass taunting remarks on the pupils or ridicule them in the class (item 7). The experienced teacher-educators view this practice as a very

serious error. Therefore, a supervisor should be on the lookout for such behaviour on the part of student-teachers as tend to poison the sweetness of good interpersonal relations and discourage it. The supervisors should not take this matter lightly. What generally happens is that when the teacher by virtue of his authority ridicules any pupil, the rest of the class bursts into laughter and the pupil is humiliated. Therefore, he rarely dares to speak a word. The supervisor should see that the student-teacher faces awkward situations in the class with a sense of humour, rather than by hurling caustic taunts.

Item 8 and 9 pertain respectively to the late coming of student-teachers and to the S.Ts failing to engage the class without informing the supervisor. The experienced teacher-educators consider both of these practices as very serious errors. Therefore, the supervisors should see that no student-teacher goes late to the class. This can be done in two ways. The supervisor may check in advance that the st student-teacher has reached the school in time, prepared for taking the class, or he may himself enter the class-room for supervision right at the beginning of the period. The first method of ensuring punctuality is always possible and should be followed. The second mode is not always possible, because the supervisor has to supervise several lessons in the same period. But, occasional checking by this method is desirable. Any leniency in this regard is undesirable.

Table B-1.

Norms for Efficient Supervision

Sl. No.	Item No.	I F E M.	Mean rating	Qualitative category
1.	1	The S.T. is not able to connect the introductory questions with the statement of the aims of the lesson.	4.17	Moderately serious
2.	2	The S.T. asks faulty questions.	5.61	Extremely serious
3.	3	The S.T. does not deal satisfactorily with the partly correct answers of the pupils.	4.17	Moderately serious
4.	4	The S.T. does not develop the lesson with the help of the pupils.	4.60	Extremely serious
5.	5	The S.T. is not able to maintain good discipline in the class.	4.1	Moderately serious
6.	6	The S.T. does not encourage the pupils to ask questions.	4.1	Moderately serious
7.	7	The S.T. ridicules the pupils, if the pupil's answer is wrong or the pupil's question is oblique.	4.5	Extremely serious.
8.	8	The S.T. comes late to the class.	4.6	Extremely serious.
9.	9	The S.T. misses the classes without informing the supervisors.	4.7	Extremely serious
10.	10	The S.T. is partial to a pupil or to a group of pupils.	4.30	Moderately serious
11.	11	The S.T. is harsh upon the pupils	4.3	Moderately serious
12.	12	The S.T. overlooks the mischief of the pupils which encourages them to do more of it.	4.0	Moderately serious
13.	13	The S.T. is unable to explain a concept or process satisfactorily.	4.4	Moderately serious
14.	14	There is a mistake in the summary given by the S.T.	4.1	Moderately serious.

Similarly, if a student teacher misses a class without informing the supervisor, the latter should take a serious view of the omissio. In all suchcases 'prevention is better than cure'. By his alertness, punctuality and regularity, the supervisor should impress upon the mind of his student-teachers that going late to the class or missing the class without his permission are serious instances of misconduct. If he fails in making his student-teachers realize this fact, he would have to play hide-and-seek with them or would have to play the role of a police inspector.

Moderately Important Practices:

The errors mentioned at serial Nos. 1, 3, 5, 6 and 10 through 14, are considered to be moderately serious by the experienced teacher-educators. Therefore, the practices in respect of which these errors are generally committed are moderately important for efficient supervision.

Firstly, the supervisor should see that the student teacher connects the introductory questions with the statement of the aim of lesson (if he follows the Herbartian approach). If the student teacher fails to do so, he is likely to fail to arouse the appreciative mass in the minds of his pupils and it is probable that the new knowledge is not integrated with the old satisfactorily.

Secondly, the supervisor should see that student-teacher deals properly with the partly correct answers of

his pupils (item 3). Sometimes, it happens that the student-teacher ignores the partly correct answers and passes on to a new question or to another pupil. In this case, the pupil who gave the partly correct answer, remains in a state of suspense or uncertainty about the correctness of his answer.

Thirdly, the supervisor should see that the student-teacher encourages the pupils to ask questions (item 6). It is a general tendency among the pupils that they do not put questions to the teacher, unless the teaching is unusally thought provocating or the teacher invites questions. The student-teacher is usually on the defensive and does not permit his pupils to ask questions and does not stimulate their curiosity. It is the duty of the supervisor to help the student-teacher develop self-confidence by permitting the pupils in his class to ask questions.

Fourthly, the supervisor should see that the student-teacher is himself clear about the concepts or processes he is teaching (item 13). Sometimes, the student-teacher is confused and makes a mess of the whole teaching. An efficient supervisor quickly perceives the situation and helps his student-teacher get out of the bog of confusion. This is an important function of efficient supervision.

Fifthly, the supervisor should carefully mark out if there is any mistake in the blackboard summary given by the student-teacher (item 14). An oral mistake is not so harmful

as a written one. So, errors in b.b. summary should invariably be pointed out before they are noted down by the pupils.

Other Moderately Important Practices:

Among the other moderately important practices are those pertaining to discipline and good interpersonal relations. Firstly, the supervisor should see that the student-teacher maintains good class-room discipline (item 6). It is the sine qua non of a proper teaching-learning situation. A noisy class-room is an unsuitable place for learning. The supervisor should help the student-teacher maintain proper class room environment, if the latter fails to achieve it himself.

Secondly, the supervisor should see that the student-teacher is not partial to a pupil or group of pupils (item 10). Partiality is inexcusable in a teacher. Partiality may manifest itself through several types of behaviour. Sometimes, the questions may not be evenly distributed by the student-teacher. Consequently, some students, particularly the back benchers and/or backward children are ignored. Sometimes, the teacher is partial in awarding punishments and rewards. All such behaviour results in loss of respect for the teacher and he thus fails to establish rapport with his pupils.

Thirdly, the supervisor should see to it that the student-teacher is not harsh upon the pupils (item 11). Harshness creates fear in the minds of the pupils. Lastly, it should also be the duty of the supervisor to see that

the student-teacher does not overlook the mischief of the pupils, thus encouraging them to do more mischief (item 12). If mischief is not nipped in the bud, it is sure to flourish. Sometimes, the student-teacher may lack courage to face the mischievous boys boldly and may be held to ransom by these boys. It is the duty of the supervisor to see that the student-teacher is not victimised in this manner.

If the supervisor performs these functions and duties at the time of supervision, the teaching of his student-teachers is likely to become efficient.

SECTION - C.

NORMS FOR EFFICIENT PROFESSIONAL SKILLS

In order to establish norms for efficient professional skills, the experienced teacher-educators were requested to rate such skills on a five point scale with regard to their importance in making supervision efficient. Data about the norms are presented in Table C-1.

Very Important Skills:

From Table C-1, it is clear that the skills listed at serial Nos. 1, 2 and 9 are considered to be very important by the experienced teacher-educators. Therefore, the supervisors should use the blackboard in their own teaching in the theory class (item 1) and make a sound preparation of the lesson before they go to the class (item 2). They

TABLE U-1.

Norms for Professional Skills of Supervisors

Sl. No.	Item No.	ITEMS	Scale Value	Qualitative category.
1.	1	Use of the b.b. by the supervisor in his own teaching in the theory class.	4.5	Very important
2.	2	Sound preparation of the lesson by the supervisor before he goes to take his theory class.	4.7	Very important
3.	3	Use of illustrations by the supervisor in his own class teaching.	4.1	Important.
4.	4	Correctness of the pronunciation of the supervisor.	4.3	Important
5.	5	Skill of the supervisor to guide the S.T. in the preparation of the material aids.	4.1	Important
6.	6	Following the method of the training college by the supervisor in his own teaching.	4.0	Important
7.	7	Supervisor maintaining distance with the S.T.	3.0	Neither important nor unimportant.
8.	8	Supervisor's treating the S.T. as a co-professional rather than a pupil.	4.3	Important.
9.	9	Supervisor's stimulating the S.T. in his theory class to ask questions.	4.5	Very important

should also stimulate the student-teachers in the theory class to ask questions (item 2). It is interesting to note that these three very important skills are concerned with the teaching done by the supervisor in his own theory class. This is natural, because it is in the theory class that the supervisor can present to his S.Ts a model of good teaching. Verbal instructions in the skills of teaching are not as impressive as the demonstration of those skills in the class.

Important Skills:

Firstly, the supervisor should himself use illustrations in his class teaching (item 3). Although the skill in using illustrations is not judged as important as the use of the blackboard by the experienced supervisors, because illustrations are not given in all kinds of lessons, whereas the use of the blackboard is needed in all types, yet it has been rated as important for efficient supervision.

Secondly, the pronunciation of the supervisor should be correct (item 4). Incorrect pronunciation is bound to affect the student-teachers adversely.

Experienced teacher-educators hold strongly the opinion that supervisors should possess the skill to guide the S.Ts in the preparation of material aids (item 5). It is an acknowledged fact that the use of material aids facilitates learning. Therefore, the supervisor's competence in the preparation of these aids is considered to be important.

One major criticism of the methodology of teaching imparted in training colleges is that the supervisors do not use the methodology in their own class teaching. The experienced teacher-educators are of the opinion that supervisors should follow this methodology in their own class teaching. The experienced teacher-educators are of the opinion that supervisors should follow this methodology and it is needed for enhancing the efficiency of supervision ((item 6). The supervisor's adoption of the methodology in his own theory classes convinces the student-teachers that the methodology is not only valuable in theory but can be followed successfully in actual practice.

One of the major professional skills of a supervisor in his manner of treating his student-teachers. It should be borne in mind that S.Ts are would-be-teachers and are the co-professionals of the supervisor. The experienced teacher-educators emphasize that the attitude of co-prifessiona-lism towards the student-teachers helps the supervisor a great deal in making supervision effective (item 8).

The experienced teacher-educators feel that it is not important for a supervisor to maintain a distance between himself and his students (item 7). Therefore, it is not advisable for the supervisor to keep his students at arms length in matters of inter-personal relations. But, at the same time they also feel that if the supervisor maintains some distance, it is not harmful. It means that maintenance

of social distance with the student-teacher is neither useful nor harmful for efficient supervision. The issue seems to be irrelevant to supervisory practice.

SECTION-D.

NORMS FOR PERSONALITY CHARACTERISTICS OF SUPERVISORS.

The nature of the personality characteristics of the supervisor goes a long way to make his supervision efficient or inefficient. How important a particular characteristic is for making supervision efficient was rated by the experienced teacher-educators. The data about norms for this aspect are presented in this section.

Very Important Characteristics:

From Table D-1, it is observed that personality characteristics underlying the behaviours mentioned at items 1, 2, 3 and 5 are very important for efficient supervision. Firstly, the supervisor should maintain the dignity of the profession in his dealings with the student-teachers. He should not try to win cheap popularity among the students, nor should be condemn the teaching profession out of frustration. He can impress his students only when they realise that he values the profession highly and will not tolerate any insincerity or irresponsible behaviour on the part of S.Ts.

Secondly, the supervisor should maintain a democratic attitude in his relationship with the student-teachers (item 2). By 'democratic attitude' is meant a reasonable, impartial and fair attitude. The supervisor should not be prejudiced against or biased in favour of any student-teacher. At the same, he should respect the student's individuality. By virtue of his democratic attitude towards his students, a supervisor can easily win their affection and respect and his supervision will be effective. On the contrary, if his attitude is not democratic, but authoritarian, he may not succeed in his supervisory functions, because there is a natural resentment amongst the students against the authoritarian behaviour of the teacher. This is borne out by the response of the experienced teacher-educators to item 9 where they emphasize that authoritarian attitude is slightly unimportant for efficient supervision.

Thirdly, the supervisor should give helpful and constructive suggestions, rather than negative criticism to improve the teaching of student-teachers (item 3). Here the experienced teacher-educators emphasize that the supervisor should have a positive attitude towards his work. He should help his students by telling them what they should do. The negative approach only shows the uselessness or harmfulness of some types of behaviour. It only forbids the S.T. to do something which is not good; it does not suggest what should be done. Therefore, negative criticisms are likely to rob

TABLE D-1.

Rating of Personality Characteristics of Supervisors for Efficient Supervision.

Sl. No.	Item No.	I T E M.	Scale value	Qualitative category.
1.	1	Supervisor maintaining the dignity of the professional in his dealings with the student-teachers.	4.5	Very important
2.	2	Supervisor maintaining a demo-cratic attitude in his relationship with the student-teachers.	4.5	Very important
3.	3	Supervisor giving helpful cons-tructive suggestions rather than negative criticism to improve student-teachers' teaching.	4.6	Very important
4.	4	Supervisor giving due considera-tion to individual differences among S.T's in guiding them.	4.4	Important
5.	5	Supervisors giving S.T's full opportunity to express himself themselves freely.	4.6	Very important.
6.	6	Supervisor criticising the S.T's only in their presence.	4.3	Important
7.	7	Supervisor being sympathetic to S.T's.	4.2	Important
8.	8	Supervisor having a flexible attitude toward student-teachers.	4.0	Important.
9.	9	Supervisor maintaining an authoritarian attitude in his relationship with the student-teachers.	1.6	Slightly important.

the student-teacher of his self-confidence and to leave him in a state of indecision or uncertainty. Negative criticisms are also likely develop dislike for the supervisor. It is, thus, suggested by the experienced supervisors that the supervisors should have constructive and positive outlook and should not merely criticize the student-teachers' work without telling them what the correct and right type of behaviour is.

Fourthly, the supervisor should give the student-teachers full opportunity to express themselves freely (item 5). It means that the supervisors should be permissive and not restraintful. Any inhibition among the student-teachers is likely either to cause an unseemly outbrust at some unguarded moment or to generate a complex in their minds, both of which are undesirable. Therefore, the supervisor should permit S.Ts to express their view points freely.

Important Characteristics:

Second in order of importance for efficient supervision are the characteristics indicated at items 4, 6, 7 and 8. Firstly, the supervisors should give due consideration to individual differences among the student-teachers in guiding them (item 4). The supervisor should be a good judge of personality. The student-teachers differ in the degree of their sensitivity to others behaviour. Some of them are so sensitive that a frown on the face or a curve on the lips may move their feelings beyond control, whereas there are others who need a harsh reprimand or reproof to make them see a point.

Thus, all the student-teachers cannot be measured with the same rod. Also, they stand at different levels with respect to their understanding of the subject matter, their level of aspiration and their need-achievement. The supervisor should take all these factors into consideration and deal with them in such a way that they are helped maximally.

It is also incumbent on the supervisors to criticise the student-teachers only in their presence (item 6). Any criticism of their teaching behind their back does not help them at all. Rather, they feel hurt when the criticism reaches them through a third person. Firstly, they feel insulted. Secondly, they fail to benefit from the suggestion implied in the criticism, because the conveyer of the criticism is likely to miss the good points in the communication. Thus, the supervisor should be frank and convey the criticism to the student-teachers individually in their presence.

Though it may be held that supervisors should be sympathetic to their student-teachers, yet it may be remarked that sympathetic behaviour is only moderately 'helpful' or 'important'. Therefore, it should not be given undue weightage, because with 'sympathy' are linked 'liniency', 'softness', etc., which tend to make the supervisor an inefficient person. Efficiency in work can be achieved only by those who spare neither themselves nor others. At the same time, the

should not be harsh upon G.Ts and consider their reasonable difficulties, and try to solve them.

The supervisors should also be flexible in their attitude towards the student-teachers. They should not be rigid in their attitudes. The student-teacher should be made to understand that he would get his due, neither more nor less, from his supervisor. Such an attitude of the supervisor gives hope to those G.Ts who are weak or backward in their work and it also keeps those who are efficient in their work on their toes, lest they should lose their supervisor's appreciation and approval.

The experienced teacher-educators emphasize that the authoritarian attitude is slightly unimportant, that is, unhelpful for efficient supervision. The supervisors should not be dictatorial, lest negative feelings be aroused in the G.Ts.

SECTION - 2.

NORMS FOR ACADEMIC QUALITIES OF THE SUPERVISORS.

Data regarding the norms for the academic qualities of the supervisors which may be of help for efficient supervision, are presented in this section.

The most important academic quality needed for efficient supervision is spending leisure time in reading professional

journals. This fact is clear from Table 8-1, (item 8). The supervisors should invariably study professional journals, whenever they get some leisure time. Only then they can remain in touch with the latest developments and innovations in their field. It may be pointed out that professional growth is a continuous process and continuity can be maintained only be remaining in contact with contemporary thought and ideas, otherwise, supervisors are likely to be like an extinguished flame emitting smoke that stifles rather than a light that illumines.

From Table 8-1. items 1 and 2, it is clear that having a positive and favourable view of educational research is more helpful for efficient supervision than holding an unfavourable view. Rejecting innovations in the field of education will not help in making supervision efficient. Experienced teacher-educators consider it desirable that supervisors should hold positive attitude towards research if they want to enhance their efficiency in supervision.

Participation in seminars (item 3) and holding inter-disciplinary discussions wherever possible (item 4), are also important for efficient supervision. Exchange of views always broadens the horizon and raises the level of efficiency.

Therefore, the supervisors should participate in such academic discussions whenever feasible. Holding informal personal talks with the student-teachers to gain their confidence is also helpful for efficient supervision (item 5).

Table No.1.

Importance of Academic Qualities for efficient-supervision.

Sl. No.	Item No.	ITEM	Scale value	Qualitative category
1.	1.	Supervisor holding the view that researches in education have helped immensely the cause of effective teaching.	4.3	Important
2.	2	The view that researches in the field of education have yielded no beneficial results to the profession of teaching.	2.8	Neither important nor unimportant.
3.	3	Participation in seminars and conferences by the supervisors.	4.4	Important
4.	4	Holding inter-disciplinary decisions in the multifaculty college.	4.3	Important
5.	5	Holding informal personal talks with the student-teachers to gain their confidence.	4.2	Important.
6.	6	Spending leisure time in serious reading.	4.0	Important
7.	7	Spending leisure time in reading daily newspapers.	3.8	Important.
8.	8	Spending leisure time in reading professional journals	4.8	Very important.
9.	9	Building up a personal library.	4.1	Important.
10.	10	Carrying out individual researches.	4.1	Important.

It helps in establishing rapport which is a pre-requisite for any guidance programme. It is through such talks that the two partners (supervisors and student-teachers) of the supervision programme come close and accept each other.

Leisure-Time activities:

The experienced teacher-educators suggest that the supervisors should devote their time to the study of serious literature and daily newspapers. They should also build up a personal library and carry out individual researches. All these activities are likely to enhance their efficiency in supervising the work of student-teachers. Thus, it is clear from the ratings of the experienced teacher-educators that a supervisor should develop love for research and for serious reading, if he wants to become an efficient supervisor.

SECTION - F.

NORMS FOR MISCELLANEOUS PRACTICES IN SUPERVISION

Norms for number of supervisory practices which could not be categorized under any of the foregoing five heads viz., guidance, supervision, professional skills, personal characteristics and academic qualities, have been presented in this section.

Modes of lesson planning:

From Table F-1, it is clear that the experienced teacher-educators think that the most efficient mode of planning the lesson is the combination of the Herbartian and evaluation approaches. In their opinion both the Herbartian and evaluation approaches are neither important nor unimportant. Although they do not consider them definitely important for efficient supervision, they do not reject them completely. It is thus clear that the combination of the two approaches is recommended by them. This seems justifiable. In itself, the Herbartian approach seems to be too mechanical and holistic. Under one global aim of the lesson prescribed by the Herbartian method the teacher will not able to analyse the lesson into teaching units and there is no mention of student-behaviour at all in this method. On the other hand, the evaluation approach in its pure form is deficient, in as much as the student-teachers do not learn how to ask specific, pointed and logical questions. They receive very little training in arranging their subject sequentially. Thus, the combination of the two methodologies of planning the lesson-notes seems to be most satisfactory.

Patterns of supervision:

From Table F-1, it is evident that the patterns of supervision mentioned at serial Nos. 2(i) and 2(iii) are important for efficient supervision and those at serial Nos. 2(ii) and 2(iv) are neither important nor unimportant.

TABLE F-1.

Norms for Miscellaneous Practices for Efficient Supervision.

Sl. No.	Item No.	I T E M.	Mean rating	Qualitative category.
1.	1	Modes of lesson planning:		
		i) Herbartian approach	3.00	Neither important.
		ii) Evaluation approach	3.25	
		iii) Combination of (i) & (ii)	3.65	Important.
2.	2	Patterns of Supervision:		
		i) Supervising only those S.T's whom the supervisor has guided in planning their lesson.	3.55	Important
		ii) Supervising all the S.T's in a practising school assigned to the supervisor whether he has guided them or not.	3.2	Neither important nor unimportant.
		iii) Supervising all the S.T's in the subjects of supervisor's specialization wherever they may teaching.	3.8	Important.
		iv) Supervising the S.T's who are teaching the subject of supervisor's specialization and also S.T's teaching other subjects as well.	3.30	Neither important nor unimportant.
3.	3	Modes of supervision:		
		i) Supervising every day all the student-teachers assigned to a supervisor for a part or whole of the period as time permits.	3.4	Neither important nor unimportant.
		ii) Supervising one student-teacher for the whole period and neglecting other S.T's in that period (Every S.T. is supervised by rotation in this scheme).	3.2	Neither important nor unimportant.
		iii) Supervising two or three S.T's by rotation.	3.64	Important.

The experienced teacher-educators give top priority to that pattern of supervision in which the supervisor observes the teaching of only those student-teachers who teach the subject of his specialization, irrespective of the fact that the S.Ts teach in one school or several schools (mean rating 3.80). Evidently, this pattern is the most desirable theoretically, because here the supervisor can check if the student-teacher is giving correct information about the subject matter. It is rather unfortunate that the view is held in some quarters that a good supervisor can perform his job of supervision efficiently whether he knows the subject matter thoroughly or not. The experienced teacher-educators have rejected this idea and they consider the knowledge of the subject-matter on the part of supervisor essential for discharging his duty efficiently. They also consider the pattern of supervision best in which the supervisor supervises the students whom he has guided in the preparation of the lesson plan (mean rating 3.65). The advantage of this pattern lies, perhaps, in the fact that the supervisor is familiar with the plan and can find out the slackness or weakness on the part of the student-teacher in executing the lesson. However, the experienced teacher-educators hold a neutral opinion about the patterns of supervision in which the supervisor observes all the student-teachers whether he has guided them or not (mean rating 3.2) and in which he supervises the student-teachers who teach

the subject of his specialization and also those teaching other subjects. They consider those practices neither important nor unimportant. It means that these patterns of supervision can be tolerated, because they are not positively harmful, if no better pattern could be followed.

Modes of Supervision:

It is clear from table F-1, that the mode of supervision mentioned at serial No. 3(iii), alone is important for efficient supervision. In this mode the supervisor observes two or three student-teachers per period by rotation. It is not possible for a supervisor to supervise a large number of students per period, therefore they do not consider the mode of supervision at serial No.3(i), as important. Similarly if a supervisor sits at back of the class throughout period, it may break the nerv s of the student-teacher. Also, this mode may prove very costly also. It seems that for these reasons the experienced teacher-educators do not recommend the mode listed at serial No. 3(ii). However, they do not consider these modes 3(i), as decidedly un-important either. These modes are un-related to the efficiency of supervision and may be practised to meet formal requirements, if needed.

Modes of Communication of criticism:

The supervisor communicates his criticism of the teaching of student-teachers' in several ways. From Table F-2, it is lcear that the experienced teacher-educatdrs

consider the modes listed at serial Nos. 1(i), 1(iii) and 1(iv) as important. They attach the highest importance to mode 1(iv). The criticism should be communicated orally by group discussion. Next in importance are the modes in which the criticisms are communicated by written remarks on the lesson plan itself 1(i), and orally to individual student-teachers 1(iii). The advantage of oral communication through group discussion lies in the fact that several kinds of errors can be pointed out at a time, without specifically criticising any one pointedly. The alert students will realize their mistakes and correct them. Communication of criticism by written remarks seems to be very natural. Here, the supervisor gives the remarks on the basis of his immediate observation and it is likely to be more factual and precise.

The advantage of oral communication of criticism to each individual lies in the fact that he is made aware of his specific weaknesses and strengths. If there is a good report between the student-teacher and the supervisor, this mode can be followed efficiently.

In some training colleges there exists the practice of writing the criticisms on a separate criticism note book. The experienced teacher-educators consider this practice (item 1-ii) neither important nor unimportant. It means that it does not contribute to the efficiency of supervision. One reason for this may be that the remarks are out of their context or one step removed from their natural place, which

Norms on miscellaneous practices for efficient Supervision.

Sl. No.	Item No.	I T E M.	Mean rating.	Qualitative category
1.	1	Modes of communication of criticisms to the S.T. by the supervisor.		
		i) By written remarks on the lesson plan itself.	4.10	Important
		ii) By written remarks on a separate commentary sheet.	2.75	Neither important nor unimportant.
		iii) Orally to individual student-teachers.	4.00	Important
		iv) Orally by group discussion	4.20	Important
		v) Orally in the class-room itself as and when the mistake occurs.	2.30	Unimportant
2.	2	Measures taken for improving blackboard writing;		
		i) Giving S.T's written work	3.10	Neither important nor unimportant.
		ii) Providing the S.T's incentive in terms of marks and verbal appreciation of good hand writing.	3.96	Important.
		iii) Supervisor giving blackboard practice to S.T's with instructions in the techniques of writing.	3.44	Neither important nor unimportant
		iv) Asking S.T's to practice blackboard writing at home on the roller board.	4.00	Important.
		v) Allotting a separate peridd for supervised b.b.writing.	3.89	Important.
		vi) Giving demonstration in good b.b. writing.	3.75	Important.

is the lesson-plan book. Finally, the experienced supervisors consider it 'unimportant' or 'unhelpful' to communicate the criticism orally in the class room as and when the mistake occurs. Probably, this mode disturbs the class-teaching as well as the teacher. The latter may show aggressive reactions too. Thus the mode is really unhelpful and should rarely be followed. But, if the supervisor sees that the student-teacher is making a mess of the whole teaching in an intolerable manner, he should intervene and correct the error on the spot.

Measures to improve blackboard writing:

Out of the several ways of improvement, the experienced teacher-educators think that blackboard writing can be improved most efficiently by adopting the measures mentioned at serial No. 2(ii), 2(iv), 2(v) and 2(iv) in Table F-2. The most important of the four measures is to ask the student-teacher to practice blackboard writing at home on the roller board 2(iv) (mean rating 4.00). This method is the most practical one, because every student has a roller board and can make use of it according to his convenience. However, incentives in terms of marks or verbal appreciation (item 2-ii), allotting a separate period for supervised b.b. writing (item 2-v) and giving demonstrations in good b.b. writing are also important measures for improving b.b. writing.

Experienced teacher-educators do not think that blackboard writing can be improved merely by giving the

student-teachers written work (item 2-i) and by instructing them in the techniques of writing (2-iii). According to them these measures are neither important nor unimportant.

CHAPTER VIII.

THE ACTUAL AND THE IDEAL

(The Nature and extent of the lack of congruity between Current Supervisory practices and the Norms.)

The current supervisory practices were surveyed in Chapters V and VI and the norms for efficient supervision were presented in Chapter VII. The purpose of this Chapter is to determine the extent to which the current practices fall short of the norms. As in the previous chapters, the description of this gap would be presented in six sections namely (a) Guidance, (b) Supervision, (c) Professional Skills, (d) Personal Characteristics, (e) Academic qualities and (f) Miscellaneous Practices.

SECTION-A.

GUIDANCE.

From Table A-1, it is seen that there exists a gap only in respect of two guidance practices viz. those listed at serial Nos. 3 and 6. Firstly, the experienced teacher-educators consider that the practice of ascertaining the preference of S.Ts for a particular class for teaching and making an assignment accordingly, is only 'moderately helpful'

for making the supervision programme effective. But the practice is followed extensively, i.e., more than 88% of the supervisors report that they follow it and 80% of the student-teachers also report that it is followed. Thus, the practice is followed to an extent greater that what is considered desirable by experienced teacher educators. In this connection it may be stated that it is likely that student-teachers often try to avoid teaching some classes which are known to be unruly or stubborn and opt for those classes where the students are good at studies and obedient. Another tendency that may develop among S.Ts is to opt for those classes which they can teach without much preparation. In such cases the student-teachers get no training in summoning up their latent resources in times of need. So, experienced teacher-educators seem to hold the opinion that in such cases, the S.Ts. preferences need not be given undue consideration.

Secondly, supervisors lay too much emphasis on student-teachers' rehearsing the lesson, whereas the experienced ~~t~~ teacher-educators consider this practice to be only moderately helpful. The practice of achieving perfection through excessive drilling may have some adverse effects. The teaching is likely to become stereotyped and mechanical, like that reproduced from a recorded tape or gramophone. Moreover, the teacher loses the capacity to adjust his teaching according to the needs of pupils as they arise in the class. Therefore, too much conditioning of the S.Ts' behavbur in this regard

TABLE A-1.

Gap between the norms and the current guidance practices.

Sl. No.	Item No.	I T & M.	Norm	Current practices.
1.	1	Ascertaining the preferences of S.T. for particular practising school and assigning him/her school.	Moderately helpful	Moderately followed.
2.	2	Assigning the S.T. to the practising school according to the discretion of the supervisor in the interest of the S.T.	Moderately helpful	Moderately followed.
3.	3	Ascertaining the preference of S.T. for a particular class for teaching and making an assignment accordingly.	Moderately helpful	Extremely followed.
4.	4	Helping the S.T. in analysing the syllabus into lesson units.	Extremely helpful	Extremely followed.
5.	5	Helping the S.T. in determining the teaching points in a lesson.	Extremely helpful	Extremely followed.
6.	6	Asking the S.T. to rehearse a lesson before he/she goes to teach.	Moderately helpful	Extremely followed.
7.	7	Correcting each and every mistake in the very first lesson plan by S.T.	Moderately helpful	Extremely followed.
8.	8	Correcting each and every lesson plan of the S.T.	Moderately helpful	Moderately followed.
9.	9	The S.T. securing a certificate from the Head/Subject teacher of the practising school to the effect that a lesson has been delivered when it has not been supervised by the supervisor.	Neither helpful nor unhelpful.	

may lead to deterioration in supervisory efficiency.

All other current practices in respect of guidance conform to the norms given by the experienced teacher-educators and may be said to be satisfactory. Thus, it is seen that current guidance practices, such as helping the student-teacher choose the practising school, preparation of lesson units, determination of teaching points and modes of correction of the plans etc., are all satisfactory.

SECTION-B.

SUPERVISION.

From Table B-1, it is clear that a gap between the ideal and actual practices of supervision exists in respect of the practices listed at serial Nos. 3 5 and 12 only. The other practices seem to conform to their respective norms.

The experienced teacher-educators view the error a student-teacher commits ~~is~~ in not dealing satisfactorily with partly correct answers of the pupils as only moderately serious (item 3). It seems that in the current supervisory practices too much emphasis is laid on dealing satisfactorily with the partly correct responses of the pupils. That laying too much emphasis on this practice is not conducive to efficiency may also be inferred from the way a good teacher deals with the partially correct answers of his pupils. When the answer of a pupil is only partially correct the teacher

Gap between the norms and current practices of supervision.

Sl. No.	Item No.	I T E M.	Norm	Current practice.
1.	1	The S.T. is not able to connect the introductory questions with the statement of aims of the lesson.	Moderately serious	Moderately serious
2.	2	The S.T. asks faulty questions	Extremely serious	Extremely serious
3.	3	The S.T. does not deal satisfactorily with the partly correct answer of the pupils.	Moderately serious	Extremely serious.
4.	4	The S.T. does not develop the lesson with the help of the pupils.	Extremely serious	Extremely serious.
5.	5	The S.T. is not able to maintain good discipline in the class.	Moderately serious	Extremely serious.
6.	6	The S.T. does not encourage the pupils to ask questions.	Moderately serious	Moderately serious.
7.	7	The S.T. ridicules the pupils if the pupils' answer is wrong or the pupils question is oblique.	Extremely serious	Extremely serious.
8.	8	The S.T. comes late to the class.	Extremely serious	Extremely serious.
9.	9	The S.T. misses the class without informing the supervisor.	Extremely serious	Extremely serious.
10.	10	The S.T. is partial to the pupil or group of pupils.	Moderately serious	Moderately serious.
11.	11	The S.T. is harsh upon the pupils.	Moderately serious	Moderately serious.
12.	12	The S.T. overlooks the mischief of the pupils which encourages them to do more of it.	Moderately serious	Extremely serious.

goes on asking the same question of the other pupils, till he gets a full and satisfactory answer and then he points out the shortcomings in the previous answers and asks those pupils to repeat the correct answer. If no pupil in the class is able to give a fully correct answer, the teacher himself gives it and asks the pupils, if necessary, to repeat it. Now, it appears that the experienced teacher-educators think that the process is time consuming and the gain in terms of learning is not commensurate with the time and energy devoted to it. They seem to be of the opinion that the correct answer can be pointed out straightway by the teacher without waste of time. So, the gap in respect of this practice lies in that it is needlessly emphasized out of all proportion.

Another practice, in respect of which a gap exists between the ideal and the actual, is that of maintaining discipline in the class-room. Lack of good discipline is considered to be an extremely serious error by the supervisors. They, perhaps, believe that no teaching is possible without proper class-room discipline. But the experienced teacher-educators think that unnecessary curbs and restraints are being imposed on the pupils class-room discipline. Sometimes pupils are made to sit in the class-room like statues and stare at the teacher. Any natural and spontaneous reaction of the pupils to the teacher-stimulus in the class room is not an act of indiscipline. It is an indicator of the fact that pupils are exuberantly responsive to the teaching. Thus,

excessive stress on mechanical discipline is not desirable according to the experienced teacher educators. Sometimes, the student-teacher overlooks the mischief of the pupils which encourages them to do more mischief. There exists some gap between the ideal and actual practices in respect of this matter also. The supervisors consider it to be an extremely serious error, whereas the experienced teacher-educators think that it is only a moderately serious error. The nature of this gap is similar to that of 'indiscipline' discussed in the preceding paragraph. Moreover, overlooking mischief may be tolerated, because with his limited powers, the student-teacher cannot adopt any strict measures to check the mischief. The only alternative at his disposal is to exhort the pupils not to indulge in any mischievous activity. If these activities are considered extremely serious and great emphasis is laid by the S.T. on curbing them it is likely that the situation may take a turn for the worse. Hence, the experienced teacher-educators suggest that errors of this kind should be considered as moderately serious and only moderate emphasis should be laid on them.

Thus it is seen that the three practices mentioned in the foregoing paragraphs should not be taken too seriously, because they are likely to reduce the efficiency of supervision instead of enhancing it.

SECTION-C.

PROFESSIONAL SKILLS

From Table C-1, it is clear that the gap between the norms and the current practices of the professional skills exists only in respect of items 5, 6 and 7. In respect of the other practices there seems to be no gap, for example (1) the use of b.b. by the supervisors in their own teaching in the theory class is considered to be important by the experienced teacher-educators and it is 'nearly always' practised by the supervisors, or (2) sound preparation of the lesson plan by the supervisor before he goes to take the theory class is considered to be 'very important' by the experienced teacher-educators and it is practised by 95% of the supervisors. It seems the supervisors also consider this practice to be 'very important'. Similarly in respect of other practices, except those indicated at items 5, 6 and 7, there exists no gap.

Experienced teacher-educators consider that the skill of the supervisor to guide the S.T. in the preparation of material aids (item-5) is 'important', but not 'very important' but 86% of the supervisors possess this skill and guide their S.Ts in the preparation of material aids. It means that this practice is considered to be 'very important' by supervisors. Thus, supervisors seem to over emphasize this skill. Here the gap between the norm and the current practice exists in as much as more than the desirable degree of emphais is laid

TABLE C-1.

Gap between the norms and the current status of professional skills.

S.N.	Item No.	I T E MS.	Norm	Current Practice.
1.	1	Use of the B.B. by the supervisors in his own teaching in the theory class.	Important	Important (Nearly always.)
2.	2	Sound preparation of the lesson/plan by the supervisor before he goes to take his theory class.	Very important	Very important (95%)
3.	3	Use of illustrations by the supervisor in his own class teaching.	Important	Important (Nearly always)
4.	4	Correctness of pronunciation of supervisor.	Important	Important (Good)
5.	5	Skill of the supervisor to guide the S.T. in the preparation of material aid.	Important	Very Important (86%)
6.	6	Following the method of the T.C. by the supervisor in his own teaching.	Important	Neither imp. nor impor Average number of times.
7.	7	Supervisor maintaining distance with the S.T.	Neither important nor unimportant.	Important (61.6%)
8.	8	Supervisor treating the S.T. as a co-professional rather than as a pupil.	Important	Important (73%)
9.	9	Supervisor stimuluting the S.Ts in his theory class to ask Q.S.	Very important	Very important (95.5%)

* The figures within brackets denote the percentage of the supervisors who follow the practice depicted in the item, and for the qualitative interpretations of the percentages vide f N at page 213

by the supervisors on the skill to prepare material aids. It is the common experience of every one connected with teachers' colleges that the preparation and use of material aids by the student-teachers is perhaps the most characteristic feature of the training college methodology of instruction and consumes most of the time of S.Ts. Hence, the experienced teacher-educators sound a note of warning and advice the supervisor to hasten slowly with this practice. Excessive emphasis on this skill seems to be out of place in view of the fact that suitable material aids are readily available in the market and are likely tobe ~~supervisor~~ superior in quali to those prepared by the inexperienced S.Ts. Normally no school teacher ever takes the trouble to prepare such aids himself for making his own class teaching effective. Under these circumstance too much emphasis on the inculcation of this skill is out of place.

Secondly, supervisors do not follow the training college methodology in their own teaching as extensively as they should (item-6). The experienced teacher-educators judge the practice to be important. It is however followed by the supervisors only to a moderate extent. A lesser degree of importance is attached to it by supervisors than that given to it by experienced teacher-educators. The supervisors should follow in their own class more extensively the method of teaching which they prescribe for their student-teachers.

Thirdly, the supervisors maintain a distance between themselves and the S.T's (item 7) to a greater extent than is conducive to efficient supervision. The experienced teacher-educators consider that this practice is irrelevant for efficient supervision. But 61.6% of the supervisors maintain the distance which means that they consider it important, if not 'very important'. Now, the maintenance of distance may estrange the student-teachers from the supervisors and may stand in the way of the supervisor establishing rapport with S.Ts. Rapport is ~~'necessary' and 'sufficient' for efficient supervision, necessary, because without rapport with S.Ts.~~ Rapport is 'necessary' and 'sufficient' for efficient supervision, necessary, because without rapport between the supervisor and the student-teacher, no efficiency in supervision can be achieved and 'sufficient', because if there is a good rapport between the two, a great deal of efficiency in supervision can be achieved.

It is, therefore, concluded that the gaps which exist between the norms and the actual practices with regard to the inculcation of professional skills, are not justified and they should be bridged in order to make supervision effective.

SECTION-D.

PERSONALITY CHARACTERISTICS

The data in respect of the degree of importance of some personality characteristics for efficient supervision,

TABLE D-1.

Gap between the norm and current status of Personality Characteristics.

Sl. No.	Item No.	I T E Ms.	Norm	Current practice.
1.	1	Supervisor maintaining the dignity of the profession in his dealings with S.Ts.	Very important	V.Important (always)
2.	2	Supervisor maintaining a democratic attitude in his relationship with S.Ts.	Very important	V.Important (always)
3.	3	Supervisor giving helpful and constructive suggestions rather than negative criticism to improve S.Ts teaching.	Very important	V.Important (always)
4.	4	Supervisor giving due considera-tion to individual differences among S.Ts in guiding them.	Important	V.Important (always)
5.	5	Supervisor giving the S.Ts full opportunity to express themselves freely.	Very important	V.Important (always)
6.	6	Supervisor criticising the S.Ts only in their presence.	Important	V.Important (always)
7.	7	Supervisor being sympathetic to S.Ts.	Important	Important
8.	8	Supervisor having a flexible attitude toward the S.T.	Important	Important

as judged by experienced teacher-educators and the degree of importance attached to them by the supervisors in actual practice, are presented in Table D-1. From this table it is seen that there exists no gap between the ideal and the actual in respect of qualities mentioned at items 1, 2, 3, 5, 7 and 8. For example, experienced teacher educators consider it very important that the supervisors maintain the dignity of the profession in their dealings with the S.Ts and the supervisors always maintain it. It means that they (the supervisors) also consider it 'very important'. Therefore, there exists no gap between the ideal and the actual so far as this characteristic is concerned.

A gap between the ideal and the actual exists in respect of the characteristics noted at items 4 and 6. The supervisors 'always' give due consideration to individual differences among student-teachers in guiding them. (Item 4). They respect the individuality of the student-teachers very much and consider this practice 'very important'. But the experienced teacher-educators seem to be more realistic and consider the practice of giving consideration to the individual differences only 'important' and not 'very important'. Undue weightage given to this practice may only hamper the efficiency of supervision, because no common standard of excellence in supervisory practices can be evolved if individual differences are over emphasised. Therefore, for efficient supervision too much importance should not be

given to individual differences; at the same time they should not be neglected altogether.

Supervisors consider it 'very important' that they should criticise the student-teachers only in their presence (item 6). But, the experienced teacher-educators consider this practice only 'important'. The norm prescribed by the experienced educators can be defended on the ground that strict adherence to the ideal in this respect may not be practicable. Sometimes, supervisors may have to criticise the behaviour of a certain student-teacher in his absence only to impress upon the minds of those present that he (the supervisor) does not appreciate that kind of behaviour. Such criticism behind the back of the person criticised is not intended to malign the person concerned, but only to express disapproval of the behaviour. Therefore, the norm established by the experienced teacher-educators seems to be valid and reasonable.

It is seen from Table D-1, that out of nine personality characteristics of supervisors, there exists a gap between the ideal and actual only in respect of two. In respect of the others the characteristics measure up to the standard prescribed by the experienced teacher-educators.

SECTION-E.

ACADEMIC QUALITIES.

How important certain academic qualities are for efficient supervision in the estimate of experienced teacher-educators and of supervisors respectivel,, is indicated in Table E-1.

From the table it is clear that a gap between the ideal and the actual exists in the case of 7 itmes out of 10. The experienced teacher-educators consider that 'holding the view that researches in education have helped immensely the cause of effective teaching' (item 1), is 'important' for efficient supervision. The supervisors are a step ahead of the experienced teacher-educators and think that it is 'very important', as is clear from the fact that 89.8% of the former hold the view. This gap is not undesirable, because the supervisors deviate from the norm on the right side.

Again, the experienced teacher-educators consider that 'holding the view that the researches in the field of education have yielded no beneficial results to the profession of teaching' (item 2), is 'neither important nor unimportant' for efficient supervision. But, only 26.4% of the supervisors hold the view that researches have yielded no beneficial results in the profession of teaching. It means that most of them think otherwise and consider that this view is

TABLE 6-1.

Gap between the norms and the current status of academic qualities.

S. No.	Item No.	ITEMS	Norm	Current practice.
1.	1	Supervisor holding the view that researches in Education have helped immensely the cause of effective teaching.	Important	Very important (89.6%)*
2.	2	The view that researches in the field of education have yielded beneficial results to the profession of teaching.	Neither important nor unimportant	Unimportant (26.4%)
3.	3	Participation in Seminars and conferences by the supervisors.	Important	Unimportant (30%)
4.	4	Holding inter-disciplinary discussions in multi-faculty college.	Important	Unimportant (26.5%)
5.	5	Holding informal personal talks with the S.Ts in order to gain their confidence.	Important	Important (63.5%)
6.	6	Spending leisure time in serious reading.	Important	Important
7.	7	Spending leisure time in reading daily newspapers.	Important	Very important. (81.6%)
8.	8	Spending leisure time in reading professional journals.	Very important	Unimportant (33.8%)
9.	9	Building up a personal library.	Important	Important (61.6%)
10.	10	Carrying out of individual researches by supervisors	Important	Very unimportant (4%)

* The figures in bracket show the percentages of supervisors holding the opinion or following the practices mentioned in the items.

unimportant or unhelpful for efficient supervision. The gap between the ideal and the actual again is not undesirable. It may be seen that there is agreement between the nature of the gaps in respect of items 1 and 2. But, these items are about opinions held and not about practices followed. It can, therefore, be inferred that in respect of verbalised attitudes, the supervisors have a more favourable attitude towards research than is considered to be necessary for efficient supervision.

The experienced teacher-educators consider that participation in seminars and conferences by supervisors is 'important' for efficient supervision (item 3). But only 30% of the supervisors participate in them. It means they consider such participation 'unimportant'. Here the gap is on the negative side and the supervisors do not measure up to the ideal. Similarly, the experienced teacher-educators consider that 'holding inter-disciplinary discussions in multifaculty colleges is 'important' for efficient supervision, but only 26.5% of the supervisors hold such discussions. It means that they consider it 'unimportant'. Again the gap between the ideal and the actual is undesirable.

Undesirable gaps between norms and practices exist in respect of items 8 and 10 also. Here the experienced teacher-educators consider that 'spending leisure time in reading professional journals' (item 8), is 'very important', but only

33.8% of the supervisors read professional journals. It means that they consider it as 'unimportant'. And experienced teacher-educators consider it 'important' for efficient supervision that 'supervisors carry out individual researches' (item 10), whereas only 4% supervisors actually carry out individual researches. The very low percentage in this case may be due to the fact that doing research requires special abilities and personality qualities which may be rare among the general run of the supervisors. Even so, supervisors do not seem to attach to the necessary degree of importance to carrying out individual researches.

A very significant fact emerges from the study of the nature of gaps between the ideal and the actual presented in the preceding paragraphs. In respect of verbal behaviour, the supervisors evince a highly desirable and favourable attitude towards, research, but in respect of the actual practices they are far behind the norm. They seem to lack the will to act according to their convictions and attitudes.

SECTION-F.

MISCELLANEOUS PRACTICES

The data about the gap between the norm and the actual regarding a few miscellaneous practices are presented in Table F-1. It is clear from the table that the experienced teacher-educators consider a combination of the Herbartian and the

TABLE F-1.

Gap between the ideal and actual with respect to Miscellaneous Practices

S. No.	Item No.	I T & M.	Norm	Current practices.
1.	1	Modes of lesson planning:		
		i) Herbarian approach	Neutral neither important nor un-important.	Neutral 53%
		ii) Evaluation approach	Neutral*	8.2%
		iii) Combination of (i) & (ii)	Important	30.6%
		Patterns of Supervision		
2.	2	i) Sup.rvising only those S.Ts whom the supervisor has guided in planning their lessons.	Important	41.3%
		ii) Supervising all the S.Ts in a practising school assigned to the supervisors whether he has guided them or not.	Neutral	40.5%
		iii) Supervising all the S.Ts in the subject(s) of supervisors specialization wherever they may be teaching.	Important	12.4%
		iv) Supervising the S.Ts who are teaching the subject of supervisors specialization and also S.Ts teaching other subjects as well.	Neutral	5.8%
3.	3	Modes of supervision:		
		i) Supervising every day all the student-teachers assigned to a supervisor for a part or whole of the period as time permits.	Neutral	42.2%
		ii) Supervising each student-teacher for the whole period and neglecting other S.Ts in that period (every S.T. is supervised by rotation in this scheme.)	Neutral	7.3%

*Neutral - stands for 'neither important nor unimportant' category.

Table F.1 Contd..

S. No.	Item No.	I T E M.	Norm	Current practices.
3	3	iii) Supervising two or three S.Ts per period by rotation (this mode falls between modes (i) & (ii) noted above.	Important	38.7%
		iv) Repeated supervision of the same student in the same period at specified intervals.	Neutral*	11.8%
4.	4	Modes of communication of criticisms to the S.T. by the supervisor.		
		i) By written remarks on the lesson plan itself.	Important	36.7%
		ii) By written remarks on a separate commentary sheet.	Neutral	17.2%
		iii) Orally to individual S.Ts.	Important	38.8%
		iv) Orally by group discussion.	Important	7.3%
		v) Orally in the class-room itself as and when the mistake occurs.	Un-important	-

*Neutral - stands for 'neither important nor unimportant' category.

evaluation approaches as important for efficient supervision. They do not consider either of the approaches important seperately. But only 30.6% of the supervisors follow the combined approach in planning the lesson notes. It means this practice falls short of the norm to a grant degree. At least 60%* of the supervisors should have followed it. On the other hand, 53.0% of the supervisors follow the Herbartian approach which is considered 'neutral' for efficient supervision by the experienced teacher-educators. Therefore, a shift from Herbartian approach to a combination of Herbartian and evaluation approaches seems to be more desirable than either of them singly.

A perusal of the norms and actual practices with regard to the patterns of supervision (item 2) presented in Table F-1 makes it clear that two of the four patterns are 'important'. Either the supervisor should supervise only those S.Ts whom he has guided in planning their lesson (2-1) or he should supervise all the S.Ts in the subject(s) of his own specialization, wherever the S.Ts may be teaching (2-11). But ~~none~~ neither of of these two practices is followed to a satisfactory extent. However, the gap in respect of the practice mentioned at item (2-1) is not so wise, as it is followed by 41.3% of the supervisors. But the gap in respect of the latter practice

---

* The percentages correspond to the qualitative categories as follows:-
Above 80% - very important, between 60% and 80% - important, between 40% and 60% - neutral, between 20% and 40% - unimportant, and below 20% - very important.

(item 2-iii), is very great, as it is followed only by 12.4% of the supervisors. Here it may be pointed out that the gap in the latter case seems to arise out of practical difficulties. For example, if say, 15 students of economics are distributed over two or three schools for practice-teaching, the subject specialist may not find it practicable to run from one school to another to supervise them. This type of difficulty may discourage supervisors from following the pattern of supervision mentioned at item 2-iii. It is, therefore, concluded that efforts should be made to strengthen the supervisory pattern described at item (2-i). There exists no gap in respect of the pattern of supervision given at item 2-ii. But, in itself this pattern is not important and should be discouraged.

It is interesting to note that the only mode of supervision which is considered to be 'important' by the experienced teacher-educators is the one given at item 3-iii, viz. 'supervising two or three student-teachers per period by rotation'. However, it is followed by only 38.7% of the supervisors and the actual practice falls short of the norm. Although no gap exists in respect of the mode given at item 3-i, yet this mode of supervision should be abandoned as the experienced teacher educators judge it to be 'neutral'. Other modes are not important, nor are they followed seriously.

The three modes of communication of criticisms to the S.T. by the supervisor which are considered as 'important' for efficient supervision by the experienced teacher-educators, are given at items 4-i, 4-iii and 4-iv of table F-1. From the table it is clear that there exists an appreciable gap between the norms and the corresponding practices, the gap being greatest in respect of item 4-iv, which is followed only by 7.3% of the supervisors. It seems, therefore, desirable that for making supervision effective, the supervisors should communicate their criticisms to the student-teachers either orally by group discussion, or orally to individual S.Ts or by written remarks on the lesson plan itself.

CHAPTER IX.

SUGGESTIONS FOR BRIDGING THE GAP BETWEEN THE ACTUAL AND THE IDEAL.

One of the objectives of this investigation is to suggest ways and means for bridging the gap between the current supervisory practices and the corresponding norms as envisaged by experienced teacher-educators. The teacher-educators were invited, through an open-end question appended to the rating-scale, to make their own suggestions for improving supervision. Valuable suggestions came in as a result of this question. In addition, some suggestions have been put forward by the investigator herself at the appropr-iate places in the preceding chapters. The purpose of this chapter is to present all these suggestions in a consolidated form.

As heretofore, the suggestions in respect of the different aspects of current supervisory practices are presented sectionwise, as detailed below:-

1. Section 'A' Guidance practices.
2. Section 'B' Supervision
3. Section 'C' Professional skills
4. Section 'D' Personal characteristics
5. Section 'E' Academic qualities.
6. Section 'F' Miscellaneous practices.

SECTION-A.

SUGGESTIONS ABOUT GUIDANCE

It may be recalled* that only two guidance practices deviate from the norm in the manner given below:-

1. Too much emphasis is laid by supervisors on ascertaining the preferences of the student-teachers for a particular class,

and 2. on making the student-teachers rehearse the lesson-plans to improve their skills in questioning.

On the basis of the opinions given by experienced teacher-educators, it is suggested that supervisors should not frame the time-table for practice-teaching, solely on the basis of the expressed preferences of the student-teachers. They should themselves evaluate the choice of the student-teachers, so that the tendency, if any, among S.Ts. to escape from hard work or to choose a class for unacademic reasons, may be controlled and curbed. Guidance does not mean that S.Ts. should be permitted to have their own way. The supervisor should, therefore, evaluate the abilities of the student-teachers and assign them such class or classes which they can teach effectively with reasonable effort. They should ask themselves the following questions while assigning a particular class to a student-teacher:-

a) Is the S.T. technically qualified to teach the class? It is essential to consider this point, because in the actual job situation the S.T. would be permitted to teach only the class for which he is qualified.

* Vide p. 134 of this report.

b) Does the S.T. possess adequate knowledge for teaching the class? Sometimes, students betray regrettable ignorance of subject matter to such an extent that it becomes difficult to believe that they have studied the subject for their graduate or post-graduate examinations. In such cases, it is adviseable to assess the present status of the S.T's. knowledge of the subject matter.

c) Does the S.T. possess adequate knowledge of child psychology pertinent to the age group he has to teach?

and d) Has he the aptitude for teaching the students of that age level?

Decisions about items (b) to (d) may be taken on the basis of a relevant preliminary test administered to the student-teachers before he is assigned a particular class for teaching.

The student-teachers should not be asked to rehearse the lesson plan completely in every detail. However, the S.Ts' pronunciation and speech qualities should be tested before they go for teaching. Sometimes, their pronunciation, the pitch of their voice, mode of questioning and pauses and stress are so bad that they need drilling. The supervisor, in such cases should give a model reading while guiding them. The main point of the questions asked can be stressed only by proper modulation of voice and by proper pauses and stresses. Instead of rigidly confining the student-teachers to the lesson notes, they should help them with broad outlines and ask them to fill them in with the content themselves according to the needs of the situation. For example, in a language

lesson, if a pupil mispronounces a word which could not have been anticipated by the student-teacher, the error should not be overlooked just because it has not been included in the lesson plan for pronunciation drill. Similarly, if all the students pronounce correctly a word which has been included in the lesson plan for pronunciation drill, it should not be drilled, although it has been mentioned in the plan for the drill. Similarly, skill in questioning should not be developed by actually rehearsing a lesson plan, but by practising the art of asking appropriate questions extempore in appropriate situations.

SECTION-B.

SUGGESTIONS ABOUT SUPERVISION.

The actual supervisory practices deviate from the norms prescribed by the experienced teacher-educators in respect of the following:-

There is over emphasis on dealing with the partly correct answers of pupils in the class, on the maintenance of discipline in the class-room and on dealing with the mischief of the pupils.

The undue emphasis on the above noted practices may be minimised in the following manner:-

(a) The student-teacher may himself or with the help of other pupils bring out and rectify the short-comings in the

answer of the pupils.

(b) Specific corrections in respect of the shortcomings should be sought from a well-informed pupil. If he gives the correct answer, the pupil who gave the partly correct answer should be made to realize the incompleteness and inadequacy of his answer and to verbalise the fully correct answer. If the better informed pupil also fails to give a fully satisfactory answer, the student-teacher should himself give the correct reply and ask the pupils to verbalise it.

(c) The defect in the partially correct answer should be pointed out with the help of auxilliary questions.

Generally, the student-teacher puts the same question to almost all the pupils, till he gets a satisfactory answer. This practice is time consuming. Often the S.T. asks each pupil in the class to repeat the fully correct answer mechanically. There is very little gain from this time consuming practice, specially when the questions are rather difficult. There is no harm if the student-teacher gives the correct answer to a question when he discovers that no pupil is able to give it.

As regards discipline and eradicating mischief, punitive measures alone seldom prove effective. These measures will be effective only when the students are convinced that they are in the wrong, otherwise a rebellious attitude may develop among them which would prompt them to be more undisciplined and more mischievous.

The student-teachers, with the help of their supervisors, should clearly define what acts of behaviour are to be considered as instances of indiscipline and mischief. Sometimes, spontaneous conversation among the pupils is considered to be an act of indiscipline. Pupils are active and talkative by nature. They will be restless, whenever the teacher is dull or is out of the class-room or when they do not follow his teaching. It is, therefore, suggested that the causes of the unwanted behaviour should be removed, rather than the symptoms. Again, in an attempt to maintain discipline, the teacher should not try to reduce a group of lively young boys, brimful of energy, to rigid and lifeless statues. A minimum of activity on the part of the pupils should be tolerated.

SECTION-C.

SUGGESTIONS ABOUT PROFESSIONAL SKILLS

Gaps between the norms and the actual professional skills exist as detailed below:-

1. Too much emphasis is laid on developing the skill in preparing material aids.

2. The supervisors do not follow the training college methodology of teaching, as intensively as may be desirable, for making their teaching, as well as their supervision, efficient.

3. The supervisors maintain a distance between themselves and the student-teachers to a greater extent than is conducive to efficient supervision.

The experienced teacher-educators suggest that much time and resources should not be devoted to develop among the student-teachers the skill to prepare material aids, because they cannot be expected to prepare these aids when they join the profession as regular teachers. Instead, they suggest that S.Ts should develop skills in drawing sketches on the blackboard and in using the blackboard as the best material aid which is economical and trustworthy. They also suggest that the student-teachers should acquire the skill to use material aids procurable from the market or the audiovisual aids possessed by the school. It is easier to develop among S.Ts the skill to make effective use of these aids.

By and large, student-teachers fail to acquire any proficiency in preparing material aids. It is, therefore, recommended that much time and resources should not be devoted to the inculcation of this professional skill.

The experienced teacher-educators recommend that the supervisors should themselves follow the training college methodology of teaching to a greater extent than they do at present. Example is better than precept. If they demonstrate that the methodology is practicable and that the courses can be finished by means of this method of teaching, the student-teachers would gladly accept it as the proper methodology of instruction. Otherwise, they forget all about it as soon as the B.Ed. practical examinations are over. If the supervisors

follow the method, they can create greater faith in its effective-ness among their students. At present everybody follows the method only half-heartedly.

To follow the method the supervisors should divide the content of their teaching into suitable units and the units into lessons. They should prepare a time schedule for finishing the entire course and stick to the schedule. In some universities a detailed lecture-list for the session is prepared in advance by the faculty members and followed strictly.

It has been suggested by the experienced teacher-educators that the supervisors should not maintain any considerable distance between themselves and their students. The reason behind this practice seems to be lack of confidence among the supervisors in their ability to maintain informal relations with S.Ts and at the same time to see to it that they discharge their duties properly. But, this is a mistaken notion. The experienced teacher-educators therefore recommend, greater rapport with and more intimate personal relations between the supervisors and the student-teachers than what exists at present.

~~CHAPTER~~ SECTION - D.

SUGGESTIONS REGARDING PERSONAL CHARACTERISTICS.

A gap between the actual and the ideal personality characteristics of the supervisors is found in respect of the

following:-

1. Supervisors pay too much attention to the individual differences among the student-teachers.

2. Supervisors follow too strictly the dictum that the student-teachers should be criticised only in their presence, and not in their absence.

In respect of the first practice, the experienced teacher-educators observe that too much attention to individual differences is not very important for efficient supervision, because it taxes the supervisor unduly. They suggest that -

(i) group guidance may be given in respect of common aspects of the lesson planning. However, if any student-teacher has some peculiar or uncommon difficulty he may consult the supervisor individually.

(ii) The overall criticism of the class teaching by the student-teachers should be communicated to them in a group. This saves time and does not hurt the feelings of any particular individual Only if some serious or unusual error has been committed by a student-teacher, the criticism should be communicated to him individually.

Thus, supervisors should possess such personal characteristic as may enable them to guide the student-teachers both collectively and individually and not only individually.

As regards the practice of criticising the S.Ts. in their presence only, it should be followed as far as practicable. However it will not be out of place, if criticisms are made occasionally in the absence of the S.T. concerned with a view to improve the teaching of the student-teachers present.

SECTION-B.

SUGGESTIONS REGARDING ACADEMIC QUALITIES

The most conspicuous gaps between the ideal and the actual exist in respect of the academic qualities of the supervisors. The nature of these gaps is given in the following statements:-

1. Very few supervisors participate in seminars considered important by the experienced teacher-educators for efficient supervision.

2. Very few supervisors hold inter-disciplinary discussions on problems relevant to practice-teaching, but the experienced teacher-educators consider such discussions important for efficient supervision.

3. Experienced teacher-educators consider it very important for the supervisors to read professional journals, but very few of them (supervisors) actually read such journals.

4. Experienced teacher-educators consider it important for efficient supervision that supervisors engage themselves

in individual researches, but only a negligible fraction of supervisors does so.

The experienced teacher-educators suggest the following measures to bridge the gulf between the actual and the ideal:

1. The number of seminars held annually should be increased. In addition to these seminars, short mid-term seminars should be held for the supervisors supervising different subjects and it should be made compulsory for them to attend these seminars at least once a year.

Mid-term seminars are more attractive to the supervisors because, they have not to sacrifice their precious summer vacation in attending these seminars. Care should be taken to ensure that the opportunities to attend the seminars are evenly distributed among the supervisors. These opportunities should not be monopolised by a single teacher or a small group of teachers in a training college.

2. Interdisciplinary discussions on subjects relevant to practice teaching, should be arranged by the heads of the B.Ed. departments or the principals, atleast twice a year, just before the practice-teaching begins. A list should be drawn up of specific problems to be discussed in these meetings and circulated among the teachers in advance.

3. Ample provision should be made for the supply of professional journals in the library. And it would be not

too much, if the principals make it obligatory for each supervisor to prepare one paper, on a current topic of his interest, before his name is recommended for the annual increments. Of course, it should be obligatory for the principal or the head of the B.Ed. department to prepare one paper himself. Only then, such practices will be appreciated by the supervisors. This suggestion seems to be in line with the practices followed in many departments of the government, where actually departmental examinations are held before an individual is promoted to a higher post.

4. The experienced teacher-educators feel that it is beyond the capacity of an ordinary supervisor to do research. But they recommend that supervisors should cooperate in action researches taken up by the institution. It is surprising that supervisors teach so much theory about action research to their student-teachers, while they themselves do not take up research projects to improve their teaching. For example, the vast majority of those successful in the B.Ed. examination is placed in the third division in theory. But no teacher training institution has attempted to probe scientifically into the causes of this unfortunate event and to suggest ways and means for rectifying it. They contend that the previous academic record of the student-teachers is, by and large, poor, and so the S.Ts secure a poor division at the B.Ed. examination.

The suggestions made by the experienced educators to improve the academic qualities of supervisors seem to be practi-

-cable. But, the investigator feels that there should be some additional material incentive for the supervisors to improve their academic qualities. At the same time they should also be made to realise that if they do not engage themselves in activities which keep them abreast of the recent trends and innovations in the field of their specialization, they stand to lose substantial gains which would accrue to them.

SECTION-F.

SUGGESTIONS ABOUT MISCELLANEOUS PRACTICES.

It was found that the practice regarding the mode of lesson planning was not satisfactory (Chapter VIII pp. 210 and 213) because supervisors did not adopt an eclectic approach to planning the lesson, based on a combination of the Herbartian and the evaluation approaches. The following suggestions are given to help understand this eclectic approach.

1. For every subject, the content to be covered in 25 lessons at the ordinary level and 50 lessons at the advanced level should be selected with the help of the regular subject-teacher of the school and divided into units. Then, the units of content should be divided into individual lessons which should <u>invariably</u> be finished within the specified period of 40 to 45 minutes.

2. In each lesson, the teaching points should be unambiguously mentioned under the head 'Specific aims'. (Evaluation

approach).

3. The knowledge assumed should be noted down, as is done in the Herbartian approach.

4. Introductory questions leading to a statement of the aim of the lesson should be framed, as is done in the Herbartian approach.

5. Statement of the aim of the lesson should be made as it is done in the Herbartian approach.

6. Presentation of the teaching matter should be done, making use of the two approaches, within the frame work of - (i) objective of teaching, (ii) teacher activity and (iii) student activity. The student-teachers should actually write down the main questions or the activities in logical sequence under the head "teacher activity" and also the answers of the pupils under the head "student-activity".

This elaborate planning should be done till the student-teachers acquire proficiency in the skill of asking questions effectively and anticipating the appropriate answers of the students. Then, later on they may be permitted to make this part of the lesson-plan briefer. Each objective of the lesson should be presented section-wise, so that the teaching is not confused.

7. The steps of generalisation and recapitulation, as comprehended in the Herbartian approach, should be followed.

8. Home assignments should be mentioned in the lesson-plan.

9. At the end, the student-teachers should give a list of references they consulted for subject matter, as well as for the techniques of lesson planning.

Patterns of supervision:

The important patterns of supervision are those of supervising only those S.Ts whom the supervisor has guided in planning their lessons, and of supervising all the S.Ts offering the subject(s) of the supervisor's specialization, wherever they may be teaching. The experienced teacher-educators suggest that these two patterns may be followed as described below:

The admission of the student-teachers to the B.Ed. class should be regulated by the teacher-power of subject-specialists available in the department, so that each subject specialist has to guide and supervise about 12 student-teachers only at a time. Larger schools should be selected or approached for serving as practising schools, so that all the students under the charge of a supervisor could be engaged in the same school for the practice-teaching. Often classes of all the subjects in the practising school are taken by the student-teachers. In this attempt to engage all the classes, student-teachers offering different subjects are huddled

together in the same school and there is a lot of confusion when the same supervisor watches the practice-teaching in ~~all~~ almost all the subjects in ~~a small~~ the school. It is better that the planning of the practice teaching programme is done with a view to meet the requirements of different subjects separately.

However, if all the 12 student-teachers in a subject cannot be accommodated in the same school, a neighbouring institution should be requested to cooperate, where the remaining student-teachers may be accommodated without much inconvenience to the supervisor. Thus, the supervision of the teaching of student-teachers may be done by the subject specialists without inconvenience. Wherever there are two or more subject specialists in a subject they may exchange their groups for guidance and supervision in order to avoid narrowing down of the concept of good teaching, a consequence which is likely to develop in a situation where a student-teacher is monopolistically guided and supervised by a single supervisor. The broadening of the horizon of student-teacher as regards the standard of good teaching can be achieved by getting the criticism lessons evaluated by a panel of examiners comprising a subject specialist and two supervisors and also by holding seminars for discussing the different methods of teaching different subjects.

Modes of supervision:

The experienced educators hold the opinion that the only important mode of efficient supervision is to supervise two or three lessons per period of 40 minutes. It does not seem to be impracticable if each supervisor is required to watch only 12 lessons per day as he would have to work only for about 5 periods. Here it may be made clear that if a supervisor supervises the lessons in a subject(s) of his specialization, it would be easier for him to bring about improvement in his own standard of supervision. Other modes of supervision e.g. supervising only one lesson per period or 5 to 6 lessons per period are either too expensive to follow or too cursory to improve student teaching.

Improving blackboard writing:

The methods of improving the blackboard writing are all practicable and should be followed with determination (vide P. 192 of this report).

In this way a number of suggestions emerged from the responses of the experienced teacher-educators, and it seems reasonable to believe that a modification of the current supervisory practices, in the light of these suggestions, would help improve them and make the supervision more efficient.

CHAPTER X.

FINDINGS, CONCLUSIONS AND SUGGESTIONS FOR FURTHER RESEARCH.

The present project was undertaken to survey the current supervisory practices followed in the teachers' training colleges affiliated to Agra University, to determine the norms for efficient supervision and to suggest ways and means to bridge, wherever necessary, the gap between the norms and the actual practices. Chapters I through IV of this report present preliminary considerations and the steps taken to collect relevant data from knowledgeable sources. Chapters V and VI describe the current supervisory practices, Chapter VII states the norms for efficient supervision, Chapter VIII describes the extent and nature of the gap between the actual and the ideal practices and chapter IX gives the suggestions for bridging the gap between the actual and the ideal. This chapter presents the gist of the findings and the conclusions of this project and a few suggestions for further research as which may prove useful for improving the current supervisory practices.

The contents of this chapter have been organised as follows:-

1. Findings:

   (a) Satisfactory supervisory practices,

   (b) Unsatisfactory practices and suggestions for improving them,

2. Conclusions, and

3. Suggestions for further research.

SECTION 1.

FINDINGS

Satisfactory Practices:

The survey reveals that the following supervisory practices followed in the secondary teachers' training colleges are fairly satisfactory and conducive to efficient supervision.

Guidance:

The supervisors ascertain the preferences of the student-teachers for the practising-schools and assign them to the schools of their choice: at least the S.Ts. manage to get a practising school of their choice. The supervisors help S.Ts. in securing from the practising schools that part of the syllabus that they have to teach. They also help them in analys-ing the syllabus into lesson units and determining the teaching points. Sometimes, the supervisors test the knowledge of their students in order to see if they can prepare the lessons properly.

The supervisors lay emphasis on the logical sequence of the questions to be asked by the student-teachers, on the correctness of pronunciation. The supervisors give the student-teachers instructions in the use of material aids. They also try to develop self-confidence among the student-teachers in

planning their lessons.

Supervision:

The supervisors see to it, with special care and emphasis, that the student-teachers ask effective questions, develop the lessons with the help of the pupils, give correct blackboard summaries, make no mis-statement of facts, do not ridicule the pupils, and are punctual and regular. They also emphasise the need for imposing only light punishment on pupils and for avoiding corporal punishment almost totally. The supervisors lay reasonable emphasis on the use of material aids by the student-teachers, and on develâping among them self-confidence, habits of hard work and fluency of speech.

The supervisors lay the greatest emphasis on the proper and effective execution of the lessons and give constructive suggestions to achieve their goal. They also try to maintain cordial relations with the principals and the teachers of the practising schools, and treat them with courtesy and seek their help in maintaining class-room discipline.

Professional skills:

It is satisfying to find that the supervisors understand their students fairly well and teach them effectively. They use the blackboard in their own theory classes, are good in blackboard writing and use illustrations in their teaching. Their pronunciation of English words though not excellent, is fairly satisfactory and their pronunciation of Hindi is often

excellent.

Supervisors organise logically in writing the subject matter that they have to teach to their students, before they go to class. Their voice is properly pitched while lecturing and their speech is modulated and intonated. Most of them are also fluent in their speech. They possess the skill to guide their student-teachers in the preparation of material aids, specially of charts. The supervisors also enjoy teaching children and give demonstration lessons frequently. Most of them treat the student-teachers as their co-professionals and maintain warm and congenial relations with them.

B. Unsatisfactory practices and suggestions for improving them:

Below are given the current supervisory practices which were found to be unsatisfactory:

Organisation and administration:

The first and foremost inadequacy in the organisation and administration of the practice-teaching programme that came to light is that the supervisor-student ratio was found to be 1:16 for guidance and 1:15 for supervision, whereas the University has prescribed that this ratio should be 1:12. Secondary training colleges have no practising schools of their own. Most of these training colleges have inadequate library facilities and very little provision of journals, and inadequate accommodation and administrative staff. In most

of the colleges no evaluation chart is used to assess the day to day teaching of the student-teachers. There seems to be apathy to literary and co-curricular activities in most of the institutions.

Guidance:

The guidance practices are found to be unsatisfactory, firstly, unduly excessive emphasis is laid on assigning to the student-teachers, classes which they prefer to teach, secondly, the supervisors follow the Herbartian or the evaluation approach of lesson planning, neither of which is adequate for bringing about efficiency in the practice-teaching programme.

Supervision:

The following are the unsatisfactory supervisory practices; (i) laying too much emphasis on student-teachers correcting the incomplete or partially correct responses of the pupils, in a very formal and time-consuming manner, (ii) maintaining discipline mechanically in the class-room, by not permitting the pupils to give vent to some of their very natural reactions to the stimuli of the class-room and (iii) taking a very serious view of the mischief committed by the pupils and punishing them harshly. This is in conformity more with the traiditional feudalistic concept of discipline than with the modern concept of discipline from within or free discipline.

Professional characteristics:

The unsatisfactoriness of the practices intended to inculcate professional skills among the student-teachers lies sometimes in over-emphasising and sometimes in under-emphasising the skills, so that they deviate from the norm. Supervisors lay overemphasis on developing among the student-teachers the skills to produce material aids. The supervisors also maintain unnecessarily wide distance between themselves and their student-teachers. This practice creates a barrier and obstructs the free exchange of ideas, and smooth interpersonal relations between supervisors and the student-teachers.

Personal characteristics:

In this study, the following two supervisory practices, which reflect unsatisfactory tendencies in the personality of the supervisors, were found:

(i) the supervisors lay too much emphaises on individual differences among the student-teachers. Although this emphasis is important for efficient supervision, yet giving undue weightage to it only brings the individual differences into focus and the actual supervisory practice recedes into the penumbra,

(ii) the supervisors adhere too strictly to the practice of criticising the student-teachers only in their presence. Although this practice is also important for efficient supervision yet over-emphasis on it is not helpful to the desired

extent.

Academic qualities:

The supervisors' greatest weakness lies in this area. They do not take interest in reading new books and articles in professional journals in the field of their specialization. They seem to be averse to new innovations in teaching and improving their own teaching through research. Though ample opportunities are open to them to refresh their memory and brush up their knowledge through seminars, summer institutes, conferences, workshops and informal inter-disciplinary discussions, yet very few of them avail of these opportunities. There is much room for improvement in the study-habits of supervisors.

Miscellaneous practices:

The supervisors follow either the Herbartian approach or the evaluation approach of lesson planning. These approaches, taken separately, are unsatisfactory. Supervising student-teachers offering subjects other than the supervisor's speciality is not conducive to efficient supervision. It is a pity that the supervisors devote on an average only 8 minutes to supervise the student-teacher's actual classroom teaching in a period of 40 minutes. The supervisor's work is done hastily and cursorily. The attention given to improve the blackboard writing of S.Ts. is not satisfactory.

Suggestions to improve the unsatisfactory practices:

Suggestions for improvement of the current supervisory

practices are of vital importance. Therefore, they have been presented in a separate chapter (Chapter IX) in full detail. It is not necessary to repeat them here for the sake of formality.

SECTION 2.

CONCLUSIONS

On the basis of the findings, it may be concluded that it is not proper to condemn the current supervisory practices altogether. There is ample evidence that reasonable care is being taken by the supervisors to pass on to their students information, skills, personality characteristics and attitudes which they themselves possess. The supervisors' relationship with their students and with the teachers and principals of the practising schools is fairly cordial and warm. Supervisors are aware of their professional dignity and responsibility.

The notable unsatisfactory practices are that the supervisors follow the traditional modes of guidance and supervision rather doggedly. They seem to lack in initiative and courage to bring in innovations and experiment with new ideas in their field. There is dullness and monotony in their work. It seems that they are obsessed with the idea of conformity with the approved norms, because they have been found very often to deviate on the right side of the norms (i.e. they follow a good practice with excessive zeal, oblivious of the drawbacks of carrying it too far). It also seems

that the supervisors are too contented with what they know and practice and have no desire to improve themselves.

Limitations of the study:

It would be in the fitness of things to point out some of the limitations of this study which could not be overcome despite the best efforts of the investigator.

The data collected through questionnaires could not be verified by actual observation and interview. Although an attempt was made to observe the actual behaviour of the supervisors during the supervision work, it was not successful, because supervisors failed to function in the normal manner when expert observers were present in the class-room. Some respondents complained that questionnaires were lengthy. The responses of the supervisors and the others who cooperated in this study, may have been biased in some respects. However, since the data were collected from different sources, it seems reasonable to presume that the bias of the sources of data were not all in the same direction.

SECTION 3.

SUGGESTIONS FOR FURTHER RESEARCH.

It is realized that there is room for improvement in our knowledge about the current supervisory practices. This study was delimited only to the survey of practices followed in the Agra University. The scope of generalizations could be widened, if studies of this nature are carried out on larger

samples. A national survey of the current supervisory practices seems to be a necessity. A few other projects, the need for undertaking which was felt during the course of this study are given below:-

(1) A project may be undertaken to try out the effectiveness of different modes of lesson planning viz. (i) the Herbartian approach, (ii) the evaluation approach, (iii) a combination of (i) and (ii), (iv) no written planning. In each case the objectives of the lesson planning and behavioural specifications should be spelled out. With the help of proper experimental design, experiments should be carried out to compare the relative effectiveness of the above modes of lesson-planning.

(2) In a similar manner, the relative efficiency of different modes of supervision may be experimentally determined. The different modes of supervision may be (i) whole time supervision of a class on intermittent days, (ii) part-time supervision (2 or 3 student teachers being supervised per period daily) and (iii) no supervision (control group).

(3) A study may be carried out to locate the causes of absence of innovations and experimentation in the field of student-teaching.

(4) A study may be undertaken to assign priority and/or weithage to different outcomes of student-teaching, such as skills, personality characteristics, values and aptitudes.

BIBLIOGRAPHY

BOOKS

1. Adamse, Dickey. — Basic Principles of Supervision. New York: American Book Company.

2. Adaval, S.B. — Teacher Education, in The Third Year Book of Education, ~~New Delhi:~~ New Delhi: National Council of Educational Research and Training 1968.

3. Alberty, H.B. — Supervision in Secondary Schools. New York, D.C. Health and Co., 1931.

4. Association of Teachers in Colleges of Education: — Handbook of Training for Teachers. London: Methuen and Co., 1954.

5. Association for supervision and Curriculum Development of the National Educational Association. — Leadership through Supervision, 1946 Year Book, Washington D.C. 1946.

6. Ayer, F.C. — Fundamentals of Instructional Supervision. New York. Harper and Brothers.

7. Burton, W.H. — Supervision and Improvement of Teaching. London: Appleton & Col

8. Charters, W.W., and Waples, D. — The Common Wealth Teacher Training Study. Chicago: University of Chicago Press. 1929.

9. Cox, Philip et al. — Guidance by the class-room teacher. New York: Prentice Hall, 1946.

10. Evenson, E.S. — The Improvement of Teacher Education. Washington: American Council on Education, 1946.

11. Govt. of India: — Report of Education Commission 1964-66. New Delhi, 1966.

12. Green, G.H. *Planning the Lesson.* London: University of London, 1952.

13. Hart, F.W. *Teachers and Training.* London: Macmillan & Co.

14. Hammock, Gowings. *Supervising Instruction in Secondary Schools.* New York: McGraw Hill Book Co.

15. Huggett, A.J. & Stinnett, T.M. *Professional Problems of Teachers.* New York: The Macmillan Company, 1956.

16. Harold, Spears. *Improving the Supervision of Instruction.* Englewood Cliffs N.J. Prentice-Hall, 1953.

17. Harold, P.Adams & Franck, G. Dickey. *Basic Principles of Supervision.* New Delhi: Eurasia Publishing House.

18. Kenny, N.C. *Teachers' Professional Guide.*

19. Kimball, Wiles. *Supervision for Better Schools.* New York. Prentice Hall, 1955.

20. London, Josept. *The Principles and Practice of Teaching and Class Management.* London: Meiklejohn and Son, 1916.

21. Moorer, Sam H. *Supervision, The Key Stone to educational progress.* (Bulletin),U.S.A., State Department of Education, 1956.

22. Mead, A.R. *Supervised Student Teaching.* New York: Johnson Publishing Co., 1930.

23. Mukerji, S.N. *Secondary School Administration, Its Principles and Functions in India.* Baroda: Acharya Book Depot.

24. Mckean, Robert,C. and Mills, H.H. *The Supervisor*, New Delhi: Prentice Hall of India, 1968.

25. Melchior, William T. *Instructional Supervision. A Guide to Modern Practice.* Boston: D.C.Heath and Company.

26. Mort. *The Principles of School Administration.* New York: McGraw Hill Book Company.

27. McNerney, C.T. *Educational Supervision.* New York: McGraw Hill Book Company 1951.

28. Neagley, R.L. & Evans, N.D. — Handbook for Effective Supervision of Instruction. Englewood Cliffs, N.J.: Prentice Hall.

29. National Council for Educational Research and Training, N.Delhi. — Innovated Practices in Teacher Education, New Delhi, 1969.

30. " " — Seminar on Student Teaching Evaluation. New Delhi: 1960.

31. " " — Seminar on Teacher Education. New Delhi, [illegible]

32. " " — Revised [illegible] Programme. [illegible]

33. " " — Review of Education in India India (1947-61).

34. " " — The Indian Year Book of Education. (Elementary Education) Second Year Book, 1964.

35. " " — Workshop on Student Teaching and [illegible]

36. Paulson, J.A. — [illegible] [illegible]s Green [illegible]

37. Hugg, H. — The Training of Teachers. London: Harper Press, 1952.

38. Rastogi, K.G. — Supervision of Practice Teaching [illegible] Education, 1969.

39. Ryans, D.G. — Characteristics of Teachers. Washington: Council of Teacher Education, 1960.

40. Singh, J. — The Successful Headmaster. Ambala Cantt: University Press.

41. Speers, Harold. — Improving the supervision of Instruction New Delhi: Prentice Hall of India (Pvt.) Ltd.

42. Srivastava, R.C. — Evaluation and Practice-Teaching in Teachers Training Institutions. Delhi: C.I.E. Publication 1970.

43. Mudaliar A.L. Report of Secondary Education Commission, New Delhi: Government of India, 1952.

44. Taylor, W. <u>Society and Education of Teachers.</u> London: Faber and Faber Ltd., 1969.

45. U.N.E.S.C.O. <u>The Education and Training of Teachers.</u> Paris: Publication 1960.

46. Yeager, William A. <u>Administration and the Pupil.</u> New York: Harper & Brothers. 1949.

PAPERS IN PROFESSIONAL JOURNALS

1. Ahluwalia S.P. Socio-Economic change and Teacher Education in India, <u>Journal of</u> [illegible]

2. All India Association of Teachers' College. Evaluating Practice Teaching Symposium on Teacher Education, Ambala 1964.

3. Anderson, H.M. A Study of Certain Criteria of Teaching Effectiveness. <u>Journal of Expt. Education</u>. Vol. XXIII, 41-77.

4. Dutch, R.L.C. Teacher Rating. <u>Review of Educational Research</u> 1931, P.99.

5. Dasmallik, Tapan P. The Validity of Teacher's Ratings of Students Traits. <u>Indian Journal of Psychology.</u> 1959, 344 pp. 167-176.

6. Butler F.A. Prediction of Success in Practice Teaching, <u>Educational Administration of Supervision.</u> Vol. XXI. 1935.

7. Burn, C.H. A critical survey of Recent Practices of Evaluating Student Teaching. <u>Educational Administration and Supervision. Vol. XXVIII. 1942.</u>

8. Chaurasia G. A New Approach to Teacher Education, <u>N.I.E. Journal</u>, Vol. 1, No.1. September 1966, pp. 18-26.

9. Chatterjee, M. — Trans-instructional Methods of Training. N.I.E. Journal Vol. II, No.1. September'67, pp. 23-26.

10. Colber, F.C. — Criteria of Assessment of Practice Teaching, Education for Teaching. Vol. XLVIII, February 1959.

11. Crabb. L.A. — Measuring Efficiency in Supervision and Teaching, Contribution to Education. No. 175, Columbia University, Columbia.

12. Doldy, D.M. — A Study in a Group of Teacher. British Journal of Educational Psychology, Vol. VII. 1937. p.1-22.

13. Dutt Sunitee — The Teacher's Function in the Learning Process. N.I.E. Journal Vol. II. No. 1. September'67, pp. 58-61.

14. Dave, Indu. — Personal Problems of Prospective Teachers. Journal of Educational and Vocational Guidance. 1961, 7:4. pp. 194-200.

15. Eliassen, R.H. — Recruitment for Teacher Training. Journal of Educational Research. [illegible]

16. Gibson, D.M. — Professional Socialisation. The effect of a college course upon role conceptions of students in Teacher Training. Educational Research. Vol. 14, No.3. July'72. pp. 213-218.

17. Hollmann, J.D. & W.D.Ann. — The Rating of College Teachers on Ten Traits by their students. Journal of Educational Psychology. [illegible]

18. Hampton N.D. — An Analysis of Supervisory Ratings of Elementary Teachers, Graduate from IOWA. State Teachers College, Journal of Experimental Education. Vol. XX 1951, pp. 179-216.

19. Harris F.A. — Guidance Programme for the regional college and school project. Journal of Educational and Vocational Guidance. Vol. 11, No.3, 1963, pp.62-63.

20. Henry, L.A. — The Supervising Teacher, *Educational Administration and Supervision.* Vol. XXXIX, 1953.

21. Jones A.D. — The Prediction of Teaching Efficiency from Objective Measures. [illegible] *Experimental Education* Vol [illegible] pp. 85-99.

22. Jingalwalla N. — What makes a Good College Teacher? N.I.E. Journal Vol. 1, No.1. Sept.'66. pp. 60-66.

23. Mathew, Mohan & Vijayan N. — Professional Training for Junior College Teachers: The opinion of College Teachers. *Journal of Educational Research and Extension.* Vol. 9, No.2, 1972. pp. 93

24. Margaret, L.J. — Analysis of Certain Aspects of Teaching ability. *Journal of Experimental Education* XXV, 1956, pp. 103-120.

25. Mukerji S.N. — Administration of Education in India. *N.I.E. Journal.* Vol. II, No.2. Nov.'67. pp. 5-10.

26. Morris, S. and Stones E. — The Assessment of Practical Teaching, [illegible] Vol.14, No.2. [illegible] -119.

27. Natarajan V. — Student Teachers' Preference for Teaching Profession. *Jr. of Edu. Research and Extension* Vol. 9, No.1. 1972. pp. 23-31.

28. Panandikar, P. (Miss). — Practice Teaching in Teachers' College, *Education Quarterly.* Vol. XV. 1963.

29. Patwardhan. — Training Institutions and Practising Schools. *Education Review* XII. 1961.

30. Raina, T.N. — Authoritarianism and Professional Attitudes of Indian Student-Teachers. [illegible] Vol. [illegible] pp. [illegible]

31. Roy, C.D. — An Experimental Technique for the Prediction of Teacher Effectiveness. *Journal of Educational Research.* Vol. 50. 1957. pp. 79-89.

32. Rao, V.[illegible] The Growing Teacher, N.I.E. Journal Vol. 1, No.1. Sept.'66, pp. 3-10.

33. Roy Bishwanath and Boral Bishwanath. A Study of a few Qualities of Teachers as judged by students. Psychological Studies. 1964. 9:2, pp. 91-99.

34. Raina, T.N. & [illegible] Raina Perception of Teacher-Educators in India. About the ideal pupil. The Journal of Educational Research [illegible]

35. Schrock, T.C. Counselling Theory, some Cultural Implications. Journal of Educational [illegible] 1964. [illegible]

36. Swaminathan Mina. Training Teachers for Creative Teaching. N.I.E. Journal Vol. 1. No.1. September'66. pp. 57-59.

37. Srinivasa Rao M.A. A Study of Pupils' Rating of Teachers Personality Traits. Journal of Education and Psychology. Vol.XXVI. No.3. October 1968, pp. 189-196.

38. Srivastava R.C. Improving the Supervision of Practice teaching in Training Colleges. The Progress of Education XXVIII - 196

UNPUBLISHED M.ED. DISSERTATIONS.

1. Agrawal, Uma. Problems of Pupil Teachers during Practice of Teaching. Allahabad University 1960.

2. Arora, Vimla. Mutual Expectations of Student-teachers and Supervisors. Unpublished M.Ed. dissertation, [illegible] 1969.

3. Vasisht, Jai Pal. An Investigation into the Personal and Professional Problems of Trained Graduates. Teaching in the Secondary Schools of Ludhiana District. Punjab University, Punjab. 1968.

4. Bali, A.N. Critical Study of Selection of pupil-teachers for Training Colleges of Agra University, Allahabad University 1958.

5. Deb, Maya. (Nee Guha) — A Study of Temperamental Qualities necessary for Teaching Profession at the University level. Allahabad University 1959.

6. Desai, H.A. — An Investigation into the Leisure Time Activities of Teachers in High Schools of Bombay and their bearing on Teachers' Education, Bombay University 1960.

7. Ghouri G.A. — An Investigation into the Attitude of Secondary School Teachers towards the prevailing practices in Rajasthan. Rajasthan University, Rajasthan.

8. Kshattriya, Kamla. — The self-concept and ideal concept of Teacher Supervisors. Unpublished M.Ed. dissertation, W.T.C., Agra Univ. 1969.

9. Kukde, D.P. — A Study of Attitude of Pupil-teachers in Training Institutions in Vidarbha Region towards the Teaching Profession, Nagpur University, 1958.

10. Kothari, Vimla. — A Study of Attitudes of Parents, Pupils and Teachers towards teaching as a career. Bombay University, 1958.

11. Parameshwarappa, S. — Teacher Education in Mysore. Mysore University, Mysore. 1960.

12. Pandey Usha. — A Study of the Women Teacher Trainees Attitude towards their profession. Allahabad University, Allahabad 1956.

13. Rastogi, K.P. — Analysis of Attitude of Training College Students towards teaching profession. Allahabad University, Allahabad, 1956.

14. Srivastava R.C. — A Study of Institutions for the Training of Teachers for Higher Secondary Schools in Uttar Pradesh, Allahabad University, Allahabad, 1960.

15. Sandhu, Gian Singh. — A Study of the qualities of a Good Teacher as ranked by the High School students. Punjab University, Punjab 1960.

16. [illegible] — A battery of psychological test for [illegible] of success in teaching. [illegible] Ph.D. dissertation in Education, [illegible] Agra University 1964.

17. Vyas, [illegible] — An Investigation into the [illegible] Education Supervision and [illegible] with special reference to [illegible] Bhopal Regions of the New State of Madhya Pradesh Vikram University, Ujjain. 195[illegible].

APPENDIX - L

LIST OF TRAINING COLLEGES/ DEPARTMENTS OF EDUCATION AFFILIATED TO AGRA UNIVERSITY

List of the Training Colleges/Departments of Education affiliated to the Agra University.

S.N.	Institution
1.	Women's Training College, Dayalbagh, Agra.
2.	R.B.S. College of Education, Agra.
3.	Baikunthi Devi College, Agra.
4.	R.E.I., Dayalbagh, Agra.
5.	Bareilly College, Bareilly.
6.	Dayanand Arya Kanya College, Moradabad.
7.	Hindu College, Moradabad.
8.	Gokul Das College, Moradabad.
9.	Vardhman College, Bijnor.
10.	Almora College, Almora.
11.	Varshney College, Aligarh.
12.	D.S.College, Aligarh.
13.*	Swami Sukhdevanand College, Shahjahanpur.

* The Principal and Head of the Department of this college did not fill in the questionnaire sent to them, but the teacher-supervisors did.

APPENDIX II

LESSON PLAN ANALYSIS CHART.

WOMEN'S TRAINING COLLEGE
DAYALBAGH,
AGRA

Chart for the Analysis of Supervisor's Remarks in Lesson Plan Note Books

Area of Remarks	Negative	Negative but suggestive	Neutral	Appreciative	Constructive
	(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
Preparation					
1. Lesson Plan					
2. Lesson (grasp of the topics etc.)					
3. Further Reading suggestive.					
Execution of the Lesson					
Introduction					
Development of the Lesson					
Explanation					
Narration					
Demonstration					
Model Reading					
Examples.					

	Negative	Negative but suggestive	Neutral	Appreciative	Constructive
	1	2	3	4	5
Progress of the student teacher.					
Application of the knowledge of Psychology					
Sympathetic attitude					
Motivation of children					
Interest of children					
Attention of children.					
<u>Personality</u>					
Speech					
Confidence					
Self critical					
Willingness to learn					
Habit of hardwork					
Sincerity					
Carefulness					
Tolerance					
Patience					
Resourcefulness					
Commonsense					
Self control					

	Negative	Negative but suggestive	Neutral	Appreciative	Constructive
	1	2	3	4	5
Classroom manners.					
Student teacher's activities					
Knowledge of individual differences.					
Dealing with gifted children					
Dealing with problem children					
Remedying the problems of children					
Other areas (Please specify and check).					
1. ______					
2. ______					
3. ______					
4. ______					
5. ______					
6. ______					

APPENDIX II.

QUESTIONNAIRE NO. 1.

- -

WOMEN'S TRAINING COLLEGE, DAYALBAGH (AGRA-5)

(Research Department)

Project

on

"Evaluation of Current Supervisory Practices"

QUESTIONNAIRE No. I

Questionnaire on Guidance and Supervision

of

Practice Teaching of Student Teachers in B.Ed. Classes

of

Agra University Colleges.

PART-I

Sec. A.	Administration and Organization of Teacher Training Colleges
Sec. B.	Duties and Functions of Supervisors in respect of Guidance.
Sec. C.	Duties and Functions of Supervisors in respect of Supervision.

WOMEN'S TRAINING COLLEGE, DAYALBAGH (AGRA-5)

(RESEARCH DEPARTMENT)

"Project on Supervision"

Questionnaire No.I

Part I - Section - A

(To be filled in by the Principal of Teacher Training College/the Head of the Department of Education)

The information sought in this Section of the Questionnaire relates to Organization and Administration of Teachers Training Colleges/Departments of Education, and is meant to serve as a general back-ground for the study of Supervisory Practices.

It is, therefore, requested that the responses to each item may kindly be made as complete as possible. It is needless to say that the information supplied will be kept strict confidential and will be used for purposes of Research only.

General:

1. Name of the Institution: ______________________

2. Year of Establishment: ______________________

   (a) of B.Ed. Section ....

   (b) of M.Ed. Section ....

   (c) of Research Section (Ph.D. etc.) ....

3. Year in which permanent recognition by the University was received for -

   (a) B.Ed. Section ....

   (b) M.Ed. Section ....

   (c) Research Section ....

4. Maximum no. of students sanctioned by the University.

   .Ed. ....

   M.Ed. ....

   Ph.D., and D. Litt. ....

5. (a) No. of teachers for different sections:

	B.Ed.	M.Ed.	Research (Ph.D., & D. Litt.)	Total

(b) Grades of Teachers: No. Salary Scales

Grades of Teachers	No.	Salary Scales
Professors	......	....
Readers	......	....
Lecturers	......	....
Others	......	....

6. Are subject requirements of B.Ed. kept in view while appointing teachers ? Yes/No

7. What is the approved strength of Administrative Staff exclusively for the Teacher Education Section ....

8. What is the approved strength of Karmacharis ? ....

LIBRARY:

9. No. of Books in the B.Ed., M.Ed. and Research Sections of the Library. ....

10. No. of Journals subscribed for -

Indian	B.Ed. Level	....
	Research Level	....
Foreign	M.Ed. Level	....
	Research Level	....

11. Is there provision for the Open-shelf system in your Library ? Yes/No

12. Is there provision for the issue of books on content of teaching-subjects to B.Ed. Students ? Yes/No

13. Is there provision for Departmental Libraries ? Yes/No

14 (a) How many books are issued to students at a time ? ....

(b) How long may these books be kept by the students ? ....

15. (c) Are Journals also issue to B.Ed. Students ? Yes/No

(d) If yes, how many are issued at a time ? ....

(e) How long may they keep them ? ....

LABORATORY AND ...

(b) If [illegible] the subject in which subject such provision exists.

Subjects

1. ....
2. ....
3. ....
4. ....
5. ....

17 (a) Is th[illegible] provision for additional sp[illegible] for guiding S.T's in the preparation of m[illegible] aids and [illegible] hand-work ? — Yes/No

(b) If there is no such provision how is [illegible] guidance done ? (Please give details) ....

....

....

....

18. What is the type of Educational Hand-work done by B.Ed. Students (Please give details)

....

....

....

CO-CURRICULAR ACTIVITIES:

19. What Co-curricular activities are provided for B.Ed. Students ? (Please check mark in the list given -

(a) Dramatics

(b) Debates

(c) Sports and Games

(d) Scouting

(e) First Aid

(f) Community Service

Any other,

Are Excursions organised -

(a) for B.Ed. Students ? — Yes/No

(b) If Yes, how often in the year are they organised ? ....

....

....

(Contd....4)

(Research Department)

"PROJECT SUPERVISION"

Questionnaire No.I

Part I - Section 'C'

(To be filled by Supervisors*)

1. Which of the following pattern of Supervision is following in your Institution? Please check the pattern.

The Supervisor supervises the class teaching of -

(a) Only those Student Teachers whom he has guided in lesson planning. ....

(b) All Student Teachers in the Practising School assigned to him irrespective of the fact whether he has guided them or not ? ....

(c) All Student Teachers in the subject(s) of his specialization wherever they may be teaching. ....

(d) Any other pattern (Please specify and check)

....

....

....

2. Which of the following modes of supervision do you follow? Please check.

(a) Supervise every day all the Student Teachers assigned to you, each for a part of a period. .....

(b) Supervise each Student Teacher for the whole period. (In this pattern a Student Teacher is supervised once in 2, 3 or 4 days). .....

(c) Supervise 2 or 3 or more Student Teachers in a period by rotation. ....

(d) Any other mode (Please specify and check)

....

....

3. If you follow mode a, or c, please state how much time you devote to a Student Teacher on an average -

(a) ....

(c) ....

(d) ....

---

*For purpose of this Questionnaire a Supervisor is a whole-time or Part-time teacher in a Secondary Training College or Department of Education who guides and Supervises the Class Teaching done by Student Teachers.

4. Below are given several types of errors committed by Student Teachers. Please indicate on the 5 poi in column 3 how serious is the error in your opinion. And in column 4 state the measures you generall for correcting the error.

(1) Serial No.	(2) Types of Errors	(3) Degree of seriousness: Extremly serious – Very serious – Serious – Not serious – Negligible	Remedial
1.	The S.T. forgets to keep his lesson plan and/or criticism book in the proper place.		....
2.	The S.T. forgets to write the topic on the Black Board.		....
3.	The S.T. is not able to connect the introductory questions with the statement of the aims of the lesson.		....
4.	The S.T's aim is not stated emphatically.		....
5.	The S.T. does not distribute the question evenly among his pupils.		....
6.	The S.T. asks faulty questions.		....
7.	The S.T. does not deal satisfactorily with the partly correct answers of the pupils.		....

(1) S.No.	(2) Types of Errors	(3) Degree of Seriousness: Extremely serious — Very serious — Serious — Not serious — Negligible	Remedial
8.	The S.T. does not use material aids where its use could have made the teaching more effective.		....
9.	The S.T. does not use the material aids appropriately.		....
10.	The S.T. makes redundant use of material aids		....
11.	The S.T. leaves the material aids in disorder after using them.		....
12.	The S.T. does not develop the lesson with the help of the pupils.		....
13.	The S.T. is not able to maintain good discipline in the class.		....
14.	The S.T. does not encourage the pupil to ask questions.		....
15.	The S.T's B.B. writing is poor		....
16.	The S.T's B.B. writing is faint.		....
17.	The S.T. does not give a B.B. summary		....

(1) S.No.	(2) Types of Errors	(3) Degree of seriousness: Extremely serious	Very serious	Serious	Not serious	Negligible	(4) Remedial mea
18.	The S.T's B.B.Summary is not properly organised.						....
19.	The S.T. is poor in B.B. sketching.						....
20.	The S.T. makes a mis-statement of facts in his teaching.						....
21.	The S.T. gives wrong answer to an oblique question asked by the pupil.						....
22.	The S.T. ridicules a pupil if his (pupil's) answer is wrong or his question is oblique.						....
23.	The S.T. is unable to finish the lesson in time.						....
24.	The S.T's pronunciation is markedly different from the usually accepted pronunciation of a word.						....
25.	The S.T. drills his class in wrong pronunciation.						....
26.	The pitch of the S.T's voice is too high or too low for the class						....
27.	The S.T. shows mannerisms.						....
28.	The S.T. comes late to the class.						....

(1) S.No.	(2) Types of error	(3) Degree of seriousness: Extremely serious / Very serious / Serious / Not serious / Negligible	(4) Remedial me
29.	The S.T. is not properly dressed.		....
30.	The S.T. misses the Class without informing the Supervisor.		....
31.	The S.T. does not keep his promise to his class in respect of aids to the lesson he is teaching.		....
32.	The S.T. is partial to a pupil or a group of pupils.		....
33.	The S.T. is unnecessarily harish upon the pupils.		....
34.	The S.T. overlooks the mischief of the pupil and/or encourages them to do more mischief.		....
35.	The S.T. administers corporal punishment to a pupil when a lighter punishment would have been in order.		....
36.	The S.T. [illegible] nervous [illegible] you enter his class room.		....
37.	The S.T. [illegible] to the pupil's questions.		....
38.	The S.T. is unable to explain a concept or process satisfactorily.		....
39.	There is a mistake in the B.B. Summary given by S.T.		....

MISCELLANEOUS:

40. In your opinion should every lesson given by S.T. be supervised ? Yes/No

If 'Yes' suggest ways and means by which such supervision may be done.

....

....

....

41. Should every error committed by the S.T. be corrected ? Yes/No

If 'No' what should be the pattern of correction? (Please specify).

....

....

42. Do you try to develop self-confidence among S.Ts ? Yes/ No

If 'Yes' please state the measures you adopt.

....

....

43. How do you convey your criticisms to the S.Ts ?

1. By written remarks on the Lesson Plan itself. ....
2. By written remarks on a separate commentary sheet. ....
3. Orally to S.Ts. ....

Any other means (please specify) ....

44. Please state exactly what you do when you supervise ? ....

....

....

....

(a) Please suggest ways and means for improving Current Practices in Supervision and ....

45. Som=times when a Lesson is given, but not sup rvised at all, S.T. approaches the Head of the Practising School and obtains a Certificate that the Lesson has been given.

Please state your opinion on this Practice.

....

....

....

46. Please state how this questionnaire may be improved by mentioning -

(a) additional categories that may be included,

(b) additional questions under,

(i) the existing categories, and

(ii) the new categories sugg=sted by you.

47. Any other comments that you would like to make.

WOMEN'S TRAINING COLLEGE, DAYALBAGH (AGRA-5)

(RESEARCH DEPARTMENT)

Project

on

"Evaluation of Current Supervisory Practices"

QUESTIONNAIRE

No. I

Questionnaire on Guidance and Supervision

of

Practice Teaching of Student Teachers in B.Ed. Classes

of

Agra University Colleges

PART - II

(To be filled in by Supervisors)

Section	A	Professional Skills
Section	B	Personality qualities
Section	C	Academic Qualifications

WOMEN'S TRAINING COLLEGE, DAYALBAGH (AGRA-5)

(Research Department)

<u>Part - II</u>

Section A - Professional Skills

(NOTE:-1. In this section of the Questionnaire you are requested to give a self-estimate of your work as a Teacher-Educator. The job of the Teacher-Educator is highly specialised and is also multi-facetted. A very high degree of efficiency and competence in all its facets is not within the easy reach of all members of the profession. Each one may excel in some facets only, and not in others. Please, therefore, give a free and frank estimate of yourself. The information supplied by you will be kept strictly confidential and will be used for purposes of research only.

2. In the point scales against the Questions given below, only the two extremes are defined. You may kindly visualise the definitions of intervening points and check accordingly)

---

1. What is the level of your understanding of your S.Ts ?   V. high |—|—|—|—| V.low

2. To what extent do your S.Ts follow your teaching ?   Fully |—|—|—|—| Never

3. How often do you use B.B. in your class lectures ?   Always |—|—|—|—| Never

4. How good are you in your B.B. writing?   Excellent |—|—|—|—| V. poor

5. How good is your B.B. sketching ?   Excellent |—|—|—|—| V.poor

6. Do you organise the subject matter you have to lecture on to your S.T's logically in writing before going to the Class ?   Yes/No

7. How often do you use illustrations to make teaching effective in your lecture classes ?   Always ⊢—⊢—⊢—⊢—⊣ Never

8. Is your voice during lectures properly pitched?   Yes/No

9. Is your speech properly intonated and modulated ?   Yes/No

10. How good is your English pronunciation?   Excellent ⊢—⊢—⊢—⊢—⊣ V. poor

11. How good is your Hindi pronunciation?   Excellent ⊢—⊢—⊢—⊢—⊣ V. poor

12. Is your speech fluent ?   Yes/No

13. Do you posses the skill to guide your S.Ts in the preparation of material aids ?   Yes/No

14. Do you know how to operate the following ?

    1. Projector   Yes/No
    2. Tape Recorder   Yes/No
    3. Camera   Yes/No

15. Which of the following material aids can you prepare ?

    1. Charts   Yes/No
    2. Models   Yes/No
    3. Any other aids (Please specify)

16. In lecturing to your class of S.Ts, how often do you follow the methods you teach the S.Ts for use in their practice lessons?

    Always ⊢—⊢—⊢—⊢—⊣ Never

17. Do you enjoy teaching children?   Yes/No

18. Do you enjoy giving demonstration lessons ?   Yes/No

19. Do you attend to the individual needs of S.Ts in your class ?   Yes/No

    If you do, please specify what you do.

    ....

20. Please specify the measures you adopt for improving the handwriting of your S.Ts ?

....

....

21. Do you maintain social distance between you and S.Ts ? Yes/No

22. Do you criticise S.Ts in the presence of their class fellows ? Yes/No

23. Do you treat S.Ts as co-professionals rather than as pupils ? Yes/No

24. Do you try to develop neat and tidy work habits among S.Ts ? Yes/No

25. Do you inculcate gentlemanly behaviour in S.Ts ? Yes/No

26. Do your S.Ts ask questions in your class ? Yes/No

27. Have you ever faced awakward situations in the class ? Yes/No

If so, please state them and how you dealt with them.

....

....

28. Do you pay special attention to -

(a) gifted students ? Yes/No

(b) Backward students ? Yes/No

Please state how you deal tith these deviants..........

....

29. Are you easily accessible to your S.Ts ? Yes/No

PART - II

Section - B

Personal Characteristics

Below are given certain characteristics of behavioural situations in which Supervisors establish relationships with student-teachers. Please make the appropriate response to each item so far as it applies to you as a Supervisor.

	Always	Some-times	Never
1. I try to gain popularity among S.Ts.			
2. In my dealings with S.Ts. I maintain the dignity of the Profession.			
3. In my relationship with S.Ts I maintain a gentlemanly attitude rather than the attitude of a teacher.			
4. I snub S.T. whenever his behaviour is not gentlemanly.			
5. I am unsparing in my criticism of S.Ts teaching.			
6. I give helpful and constructive suggestions rather than negative criticism in order to improve S.Ts teaching.			
7. I give due consideration to individual differences among S.Ts when I give guidance.			
8. It is difficult to assess S.T. objectively.			
9. I give full opportunity to S.Ts to express themselves freely.			
10. I lose temper whenever S.Ts fail to come up to my expectations.			
11. Losing temper is a good method of making S.Ts.work at optimum level.			
12. I do not mind unpunctuality on the part of S.T. only if I can spare the time when he calls.			
13. I criticise S.Ts only in their presence.			

Statement	Always	Some-times	Never
14. I quote a deserving S.T. as a model to other S.Ts.			
15. I am sympathetic to S.Ts.			
16. I do not pay attention to the complaints of S.Ts.			
17. I maintain some distance between me and S.Ts.			
18. My attitude to S.T. is not rigid.			
19. I try to be smart in dress and manners.			
20. I treat the members of the Staff of Practising Schools with courtesy.			

PART - II

Section - C

Academic Qualities

Please check the following from your own stand-point:-

1. The advancements in theory of education are, by and large, the fruit of researches. Yes/No

2. The researches in education have helped immensely the cause of effective teaching. Yes/No

3. The advancements in the field of education are the product of critical thinking and insight rather than systematic and scientific research. Yes/No

4. The researches in the field of education have yielded no beneficeal results to the profession. Yes/No

B 1) Do you have a personal Library of your own ? Yes/No

2) If yes, please indicate the main subjects of the books in your Library and the approximate no. under each head.

....

....

....

....

....

....

3) Do you generally buy for yourself copies of the books you like to read ? Yes/No

(a) If No, how do you procure the books (Please check the appropriate item)

a) Take on loan from Libraries ......

b) borrow from Colleagues ......

c) borrow from the Book-seller ......

d) Any other means,

....

4) How much of your leisure time do you spend in reading serious literature (Please check)

All the time ....

Part of the time ....

None of the time ....

5) Please state your leisure time activities: (please check the item or items).

Reading light literature.	....
Reading serious literature	....
Playing Games - Indoor	....
Outdoor	....
Going on walks	....
Physical exercise	....
Pursuing Hobbies	....
Practising Music	....

Any other (Please specify)

....

....

6) Please state below how often you read Newspapers, Mazazines and Processional Journals (Please check).

	Read regularly	Read now and then
Daily paper	......	....
Popular Magazines	......	....
Professional Journals	......	....
Research Journals	......	....

7) Please state the names of the Daily Papers and other Periodicals you subscribe to :

Daily papers	Weekly, Fortnightly & Monthly Magazines	Professional & Research Journals

8) Please rank the following types of articles in preferential order depending on the degree of your interest.

Rank order.

Editorials
Political news
Advertisements
Crime & sensational news
Sports news
Market shares
Science Notes
Short Stories
Book Reviews
Serious Articles
Poem
Others (Please name & rank them)

....
....

9) Please check the Branch of Education in which you have specialised.

1. Philosophy of education (including Principles & thorem) ....
2. Educational Psychology ....
3. Psychology of children & adolescents. ....
4. Psychology of Exceptional children ....
5. History of Education. ....
6. Current Problems of Education ....
7. Sociology of Education. ....
8. Administration and organization. ....
9. Economics of Education & Educational finance. ....
10. Management applied to Education. ....
11. Research Methodology in Education ....

Any other branch.

10) Please state three recent Books and Journals that you want to read in your special area.

Books	Journals
1. ______________	1. ______________
2. ______________	2. ______________
3. ______________	3. ______________

11) What are the subjects other than your teaching subjects in which you are interested? Please specify.

1. ....
2. ....
3. ....

12) Please state which of the following, you have attended and when you have aided as resource personnel or you have yourself organized or directed.

	Attended/Year	Acted as Resource Personnel	Organised Directed	Year
Seminars				
Conference				
Workshops				
Summer Institutes				
Any other (please specify)				

13) In your experience what purpose have the Seminars and Conferences served mainly,

as a venues for academic discussion ....

as occasions for social gatherings and friendly get together ....

(Please check)

14) How often do you organize group discussions in your College ?

Often Occasionally Never

15) Do you hold Inter-Departmental discussions in your College ? Yes/No

(To be answered only in the case of multi-faculty Colleges)

16) How many Tutorial classes do you take per week ? ....

17) Do you have informal talks with S.Ts in tutorial classes in order to gain their confidence ? Yes/No

18) Please state briefly your view on teachers' participation in politics

....

....

....

....

19) Please state the Research Projects, if any, you have completed other than your M.Ed. Dissertation Project.

....

....

....

20) Please state the Research Papers you have published and the journals in which they have been published.

Title of Paper	Journal with date
1.	....

21. Please state any articles in Education and allied subjects that you have contributed to popular periodicals.

....

....

....

....

22. Are you at present engaged in any Research Project either for the Ph.D. Degree or for any other purpose? Please specify.

for Ph.D. ....

for other objectives ....

....

23. In case you have already taken the Ph.D. please state if you are guiding students for the Doctoral Degree (Please give details)

....

....

24.(a) Have you received any Grant or Award from N.C.E.R.T. or U.G.C. for conducting Research or Publishing your Research Reports? Please specify.

	Nature of Award/Grant and year.	Project	Progress made so far.
N.C.E.R.T.	....	....	....
U.G.C.	....	....	....
Other Institutions	....	....	....

....

....

25. What steps do you take to make B.Ed. Students research minded ? Please specify. ....

....

APPENDIX IV.

QUESTIONNAIRE NO. 2.

WOMEN'S TRAINING COLLEGE, DAYALBAGH, AGRA

(Research Department)

Project

on

"Evaluation of Current Supervisory Practices"

QUESTIONNAIRE No.2 (Hindi)

Questionnaire on S.Ts' opinion on the Current Supervisory Practices followed in B.Ed., Classes

of

Agra University Colleges

Sec. A. Duties and Functions of Supervisors in respect of Guidance.

Sec. B. Duties and Functions of Supervisors in respect of Supervision.

Sec. C Professional Skill of the Supervisors.

Sec. D Personal characteristics of the Supervisors.

Sec. E. Academic qualities.

प्रोजेक्ट " सुपरविजन " (पर्यवेक्षण)
प्रश्नावली सं0 2
वर्ग । उपवर्ग 'अ'
(छात्राध्यापकों द्वारा भरा जाय)

1- संस्था का नाम : -

2- छात्राध्यापक/छात्राध्यापिका का नाम - - - - - - - - - - - - - - - - आयु - - - - -

3- शैक्षिक योग्यतायें :-

	विश्वविद्यालय एवं बोर्ड	उत्तीर्ण होने का वर्ष	विषय लिये परीक्षा पत्र *
बी0ए0/बी0एस0सी0/बी0काम/**	- - - - -	- - - - -	- - - - -
एम0ए0/एम0एस0सी0/एम0काम0	- - - - -	- - - - -	- - - - -
अन्य डिग्री एवं डिप्लोमा	- - - - -	- - - - -	- - - - -

4 - शिक्षण अनुभव :-

हाईस्कूल कक्षाओं का - वर्ष

स्नातक एवं स्नातकोत्तर - - - - - - - - - - - - - - - - - - - वर्ष

कक्षाओं का - - - - - - - - - - - - - - - - -

5- शिक्षण हेतु चुने गये विषयों का विवरण —

- -

- -

6 -पाठ्यक्रम सहगामी क्रियायें जिनमें - - - - - - - - - - - - - - - - - -
आपकी रुचि है । -

7 - बी0एड0 के अध्यापकों की कुल संख्या - - - - - - - - - - - - - - - - -
जिनके द्वारा आपके अध्यापन का निरीक्षण - - - - - - - - - - - - - - - -
किया जाता है । - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

* एल0टी0/बी0टी0/बी0एड0/ के लिये गये प्रायोगिक विषयों एवं लिये गये अन्य विशेष विषयों का विवरण दीजिए ।

** अनावश्यक पद/पदों को काट दीजिए ।

८ — प्रतिदिन आप कितने पाठ (Lesson) ------------------------------
पढ़ाते थे ? ------------------------------

प्रतिदिन आपके कितने पाठ सूत्रों का ------------------------------
निरीक्षण किया जाता था ? ------------------------------

नीचे उन बहुत सी कार्य परिपाटियों (Practices) का वर्णन किया गया है जिनका पालन प्रशिक्षण महाविद्यालयों/शिक्षा विभागों में किया जाता है। आपको निर्देशन देने में आपके पर्यवेक्षक (Supervisors) किन प्रथाओं का अनुसरण करते थे, कृपया उनका वर्णन निम्न प्रश्नों के उत्तरों की सहायता से कीजिए। आपके उत्तर पूर्णतया गुप्त रखे जायेंगे और केवल अनुसंधान के हेतु प्रयुक्त किये जायेंगे ।

1- क्या आपके द्वारा दी गई वरीयताओं (Preferences) के अनुसार आपको अध्यापन स्कूल (Practising School) देने का प्रयास किया गया ? — हाँ/नहीं

2- क्या आपको अपने द्वारा प्रदान की गई वरीयतानुसार अध्यापन स्कूल प्राप्त हुआ ? — हाँ/नहीं

3- क्या आपके निरीक्षक ने यह पता लगाया कि आप किस कक्षा को पढाना चाहते थे ? — हाँ/नहीं

4- यदि हाँ तो, क्या आपके निरीक्षक ने आपको वही कक्षा दी जिसे आप पढाना चाहते थे.? — हाँ/नहीं

5- क्या आपके पर्यवेक्षक ने आपको प्रायोगिक स्कूलों से पाठ्य विवरणिका (सिलेबस) के उस अंश को प्राप्त करने में सहायता पहुँचाई जिसे आपको पढाना था ? — हाँ/नहीं

6- क्या आपके पर्यवेक्षक आपको सिलेबस के अनुसार पाठ योजना विभक्त करने में सहायता करते थे ? — हाँ/नहीं

7- क्या आपके पर्यवेक्षक आपको पाठयोजना के लिये अध्यापन करने वाले उपशीर्षकों को निर्धारित करने में सहायता करते थे? — हाँ/नहीं

8- क्या आपके पर्यवेक्षक आपके विषय वस्तु सम्बन्धी ज्ञान का मूल्यांकन करते थे ? — हाँ/नहीं

9- क्या कभी आपके पर्यवेक्षक आपके विषय वस्तु के ज्ञान को निम्नस्तर का कहते थे ? — हाँ/नहीं

(अ) यदि पर्यवेक्षक आपके विषय वस्तु के ज्ञान को उपयुक्त स्तर का नहीं पाते थे तो वे आपके विषय ज्ञान को स्तरानुकूल लाने के लिये क्या करते थे ?

1-

2-

3-

(ब) यदि पर्यवेक्षक विषय ज्ञान का मूल्यांकन नहीं करते थे तो उन्हें कैसे ज्ञात होता था कि आपका अध्यापन विषय के/ज्ञान के दृष्टिकोण से ठीक था ?

कृपया उल्लेख करें ।

- -

- -

- -

10- पाठयोजना बनाने में आप निम्नांकित विधियों में से किस विधि का प्रयोग करते थे ।

1- हर्बर्शियन विधि

2- मूल्यांकन विधि

3- प्रथम एवं व्दितीय का सम्मिश्रण

4- अन्य कोई विधि

- -

- -

11- यदि आपके पर्यवेक्षक आपके पाठयोजना को स्तरानुकूल नहीं समझते तो वे क्या करते थे ?

(अ) पाठयोजना में सुधार

(ब) आपको सुधार हेतु मौखिक निर्देश एवं नवीन पाठयोजना तैयार करने के लिए कहना

(स) अन्य कोई विधि (कृपया लिखें)

- -

- -

12- क्या कभी ऐसा अवसर आया कि आपसे पाठयोजना में असत्य तथ्य प्रस्तुत हो गये? यदि पर्यवेक्षक को यह ज्ञात हो जाता था कि पाठयोजना में आपने असत्य तथ्यों को प्रस्तुत किया/तो वे क्या करते थे ? हाँ/नहीं

(अ) कथनों को ठीक करना

(ब) आपसे कथनों को ठीक करने को कहना

(स) कथनों का सुधार करते हुए वहाँ कुछ रिमार्क लिखना

(द) उपयुक्त पाठ्य वस्तु के चुनाव हेतु कुछ पुस्तकों का विवरण देते हुए नवीन पाठयोजना तैयार करने को कहना ।

(य) उनके व्दारा अपनाई गई अन्य कोई विधि (कृपया लिखें) -

- -

13- क्या आपके पर्यवेक्षक आपके व्दारा पूछे जाने वाले प्रश्नों के तार्किक क्रम पर बल देते थे ? हाँ/नहीं

14- क्या वे भाषा की शुध्दता, उच्चारण, लिखित भाषा, एवं वर्तनी सम्बन्धी शुध्दता पर बल देते थे ? हाँ/नहीं

15- क्या वे आपके स्वर व उच्चारण को शुध्द कराने के ध्येय से प्रश्नों का रिहर्सल कराते थे ? हाँ/नहीं

16- क्या [illegible] साधनों के प्रयोग हेतु उचित निर्देश देते थे? हाँ/नहीं

17- क्या वे आपको स्कूल अथवा विद्यालय से अध्यापन हेतु सहायक- सामग्री प्राप्त करने में सहायता पहुँचाते थे ? हाँ/नहीं

18- क्या उन्होंने कभी बिना जँची हुई पाठयोजना पढाने की अनुमति दी ? हाँ/नहीं

19- क्या वे प्रथम पाठयोजना की प्रत्येक एवं सम्पूर्ण गल्तियों को शुध्द करते थे ? हाँ/नहीं

20- यदि नहीं तो वे पाठयोजना निर्माण में आपकी निपुणता हेतु किस प्रविधि का अनुसरण करते थे ?

(कृपया लिखें)

(अ) -

(ब) -

(स) -

21- क्या वे आपकी प्रत्येक पाठयोजना को जाँचते थे? हाँ/नहीं

22- क्या वे पाठयोजना निर्माण सम्बन्धी कुशलता लाने के लिये आपके अन्दर आत्मविश्वास का विकास करते थे ? हाँ/नहीं

23- यदि हाँ, तो किस प्रविधि का अनुसरण करते थे?

(अ) -

(ब) -

24 – आपके पर्यवेक्षक अपने स्तरानुकूल पाठयोजना तैयार कराने हेतु आपको किस प्रकार अनुप्रेरित करते थे ।

(कृपया लिखें)

(अ) -

(ब) -

(स) -

(द) -

25- क्या आपके पर्यवेक्षक यदा-कदा आपके साथ कठोर व्यवहार करते थे? हाँ/नहीं
यदि हाँ तो आपकी समझ में वे ऐसा व्यवहार क्यों करते थे ?

1- जिससे आप भावी व्यवसाय की वास्तविक दशाओं का अनुमान कर सकें ।
2- आपमें सुधार हो ।
3- अपनी परेशानी टालने के लिये
4- अन्य कोई (कृपया लिखिए)

[illegible]

अनुसंधान विभाग

प्रोजेक्ट "सुपरविजन" (पर्यवेक्षण)

प्रश्नावली सं0 2

वर्ग : उपवर्ग

(छात्राध्यापकों द्वारा भरा जाय)

1- पर्यवेक्षण के निम्नांकित तरीकों में से आपकी संस्था में किस तरीके का अनुसरण किया जाता है ? (कृपया चिन्हांकित करें)

पर्यवेक्षक केवल उन छात्राध्यापकों के कक्षाध्यापन का पर्यवेक्षण करते थे

——(अ) जिनको पाठयोजना पर वे निर्देशन करते थे ।

——(ब) जो उस *प्रायोगिक स्कूल में पढ़ाते थे जिनमें उन्हें पर्यवेक्षण करना होता था, चाहे उन छात्रों को उन्होंने निर्देशन दिया हो या नहीं ।

——(स) जो उनके विशिष्ट विषयों को पढ़ाते हों, चाहे वे किसी भी प्रायोगिक विद्यालय में क्यों न पढ़ा रहे हों ।

(द) अन्य कोई विधि (कृपया लिखिये)

- -

- -

2- निम्नांकित विधियों में से आपकी संस्था में पर्यवेक्षण की कौन सी विधि अपनाई जाती थी (कृपया चिन्हांकित करें)

——(अ) आपके पर्यवेक्षक सौंपे गये प्रत्येक छात्राध्यापक के शिक्षण का पर्यवेक्षण प्रतिदिन कालांश (Period) के थोड़े समय में करते थे ।

——(ब) आपके पर्यवेक्षक प्रत्येक छात्राध्यापक का पर्यवेक्षण पूरे कालांश में करते थे (इस विधि में छात्राध्यापक का निरीक्षण 2, 3, 4 दिनों में एक बार किया जाता है)

- -

——(स) एक ही कालांश में दो तीन या इससे अधिक छात्रों का पर्यवेक्षण करते थे । ——

(द) अन्य कोई विधि (कृपया लिखिये)

- -

- -

3- यदि आपके पर्यवेक्षक विधि 'अ' या 'स' का अनुसरण करते थे तो वे सामान्यतः एक छात्राध्यापक के पर्यवेक्षण में कितना समय लगाते थे, ? मिनट

अ -

ब -

स -

---

* प्रायोगिक स्कूल का अर्थ अभ्यास विद्यालय (Practising School)से है ।

नीचे छात्राध्यापकों द्वारा की जाने वाली अनेक प्रकार की त्रुटियों का उल्लेख किया गया है कृपया "पांच अंकीय निर्धारित माप दण्ड" पर कालम 3 में संकेत दें कि आपके द्वारा की गई इन गल्तियों को पर्यवेक्षक कितनी गम्भीरता से लेते थे और कालम 4 में उल्लेख करें कि पर्यवेक्षक इन गल्तियों को सुधारने हेतु किस मापदण्ड का अनुसरण करते थे ।

1 क्रमांक सं0	2 त्रुटियों के प्रकार	3 गम्भीरता का स्तर अत्यधिक गम्भीर	 कुछ कम गम्भीर	 गम्भीर	 गम्भीर नहीं	 [illegible]	4 पर्यवेक्षकों द्वारा सुधार के लिये किये गये उ...
1-	यदि छात्राध्यापक अपनी पाठ योजना पुस्तिका या आलोचना पुस्तिका उपयुक्त स्थान पर रखना भूल जाये ।						
2-	छात्राध्यापक श्यामपट पर प्रसंग लिखना भूल जाये।						
3-	छात्राध्यापक प्रस्तावना के प्रश्नों को पाठ के उद्देश्य कथन से सम्बन्धित करने में असमर्थ रहे ।						
4-	छात्राध्यापक द्वारा उद्देश्यकथन का प्रभावपूर्ण ढ़ंग से प्रस्तुतीकरण न किया जाय ।						
5-	छात्रा ध्यापक अपने प्रश्नों का उचित वितरण न करें						
6-	छात्राध्यापक गलत प्रश्न पूछे ।						
7-	छात्राध्यापक छात्रों के अपेक्षित उत्तरों को सन्तोषजनक मुद्रा में न स्वीकारें ।						

क्रम सं0	त्रुटियों के प्रकार	गम्भीरता का स्तर: अत्यधिक गम्भीर	गम्भीर	गम्भीर नहीं	उपेक्षणीय	पर्यवेक्षकों द्वारा सुधार के लिये दिये गये सुझाव
8-	छात्राध्यापक ने उस समय सहायक सामग्री का प्रयोग न किया हो जबकि उसके प्रयोग से पाठ को अधिक प्रभावशाली बनाया जा सकता रहा हो ।					
9-	छात्राध्यापक द्वारा सहायक सामग्री का उपयुक्त प्रयोग न किया गया हो ।					
10-	छात्राध्यापक सहायक सामग्री का आवश्यकता से अधिक प्रयोग करे ।					
11-	छात्राध्यापक सहायक सामग्री को प्रयोग के पश्चात् अव्यवस्थित रूप में फेंक दे ।					
12-	छात्राध्यापक पाठ का विकास छात्रों के सहयोग से न करें ।					
13-	छात्राध्यापक कक्षा में अच्छा अनुशासन स्थापित करने में असफल रहे ।					
14-	छात्राध्यापक छात्रों को प्रश्न पूछने के लिये प्रेरित न करे					
15-	छात्राध्यापक का श्यामपट्ट-लेख खराब हो ।					
16-	छात्राध्यापक का श्यामपट लेख धुंधला हो ।					

क्रम सं0	त्रुटियों के प्रकार	गम्भीरता का स्तर (3)					परिवेक्षकों व्दारा दिये किये (4)
		अत्याधिक गम्भीर	बहुत गम्भीर	गम्भीर	गम्भीर नहीं	उपेक्षणीय	
17-	छात्राध्यापक व्दारा श्यामपट सारांश न लिया जाय ।						
18-	छात्राध्यापक ने श्यामपट सारांश को विधिवत् संगठित न किया हो ।						
19-	छात्राध्यापक का श्यामपट पर किया गया रेखाचित्रण खराब हो ।						
20-	छात्राध्यापक अपने अध्यापन में तथ्यों से सम्बन्धित गलत कथन करे।						
21-	छात्राध्यापक छात्रों व्दारा पूछे गये अस्पष्ट प्रश्नों का गलत उत्तर दे ।						
22-	छात्राध्यापक छात्रों व्दारा गलत उत्तर देने या अस्पष्ट प्रश्न पूछने पर उनकी मजाक उडाता हो ।						
23-	छात्राध्यापक समय पर पाठ्योजना पूर्ण करने में असफल रहे ।						
24-	छात्राध्यापक का शब्दोच्चारण शब्द के शुद्ध उच्चारण से पूर्णतः भिन्न हो ।						
25-	छात्राध्यापक अपनी कक्षा को गलत शब्दोच्चारण का अभ्यास कराये ।						
26-	छात्राध्यापक का स्वर कक्षानुसार बहुत ऊँचा या नीचा हो ।						
27-	छात्राध्यापक कक्षा में अस्वाभाविकता एवं कृत्रिमता का प्रदर्शन करे ।						
28-	छात्राध्यापक कक्षा में देर से आये ।						

1	2	3					4
क्रम सं०	त्रुटियों के प्रकार	गम्भीरता का स्तर					पर्यवेक्षक द्वारा सुधार के लिये किये गये प्रयास
		अत्यधिक गम्भीर	बहुत गम्भीर	गम्भीर	गम्भीर नहीं	उपेक्षणीय	
29-	छात्राध्यापक उपयुक्त वेशभूषा में न हो ।						
30-	छात्राध्यापक पर्यवेक्षक को सूचित किये बिना कक्षा से ले न आये ।						
31-	छात्राध्यापक अपनी पाठयोजना में उध्दृत सहायक सामग्री का अध्यापन में प्रयोग न करे ।						
32-	छात्राध्यापक छात्र विशेष या छात्रों के समूह विशिष्ट के साथ पक्षपात पूर्ण व्यवहार करता हो ।						
33-	छात्राध्यापक व्यर्थ ही छात्रों के साथ रुक्ष व्यवहार करे ।						
34-	छात्राध्यापक छात्रों द्वारा की जाने वाली शैतानियों की उपेक्षा करें या उन्हें शैतानी हेतु प्रेरित करें ।						
35-	छात्राध्यापक छात्रों को शारीरिक दण्ड दे जबकि उससे हल्का दण्ड ही उपयुक्त हो ।						
36-	छात्राध्यापक कक्षा में पर्यवेक्षक के आते ही घबरा जाता हो ।						
37-	छात्राध्यापक छात्रों के प्रश्नों का गलत उत्तर दे ।						
38-	छात्राध्यापक किसी विचार को स्पष्ट रूप में व्यक्त करने में असमर्थ रहे ।						
39-	छात्राध्यापक द्वारा दिये गये श्यामपट सारांश में गलती हो ।						

40– आपके विचार से क्या आपके द्वारा दिये गये प्रत्येक पाठ का पर्यवेक्षण होना चाहिये? यदि हाँ तो उन तरीकों एवं साधनों का उल्लेख करें जिनसे इस प्रकार का पर्यवेक्षण सम्भव हो सके। हाँ/नहीं

— —

— —

— —

41– क्या आपके द्वारा की गई प्रत्येक गलती को ठीक किया जाना चाहिये? हाँ/नहीं
यदि नहीं तो जाँचने में कौन सी विधि का अनुसरण होना चाहिये? (कृपया लिखें)

— —

— —

42– क्या आपके पर्यवेक्षक आपमें आत्मविश्वास पैदा करने का प्रयास करते थे? हाँ/नहीं
यदि हाँ तो वे किस विधि का प्रयोग करते थे?

— —

— —

43– आपके पर्यवेक्षक आपकी आलोचना आप तक किस तरह पहुँचाते थे — — — — — — — —

1– पाठयोजना पुस्तिका पर लिखित रूप से — — — — — — — — — — — — — —
2– अलग पुस्तिका पर (Criticism Book) लिखकर — — — — — — — — — — — —
3– छात्राध्यापकों को मौखिक निर्देश द्वारा — — — — — — — — — — — — — —
अन्य कोई साधन (कृपया लिखें) — — — — — — — — — — — — — — — —

44– कृपया स्पष्ट लिखें कि आपके पर्यवेक्षक पर्यवेक्षण — — — — — — — — — — — —
के समय वास्तव में क्या करते थे। — — — — — — — — — — — —

45– कृपया उन साधनों एवं तरीकों का उल्लेख करें — — — — — — — — — — — — — —
जिनसे वर्तमान पर्यवेक्षण पद्धतियों में सुधार — — — — — — — — — — — — — —
लाया जा सके? — — — — — — — — — — — — — —

46– कभी कभी पाठयोजना का पर्यवेक्षण न होने पर छात्राध्यापक प्रायोगिक स्कूल के प्रधान से "पाठ पढ़ाया गया" लिखा लेते हैं, इस व्यवहार परिपाटी के सम्बन्ध में कृपया अपने विचार व्यक्त करें।

प्रश्नावली सं0 2

उपविभाग 'स' व्यावसायिक कुशलताएं

टिप्पणी । प्रश्नावली के इस खण्ड में आपसे ऐसे प्रश्न पूछे गये हैं जिनमें आपको अपने पर्यवेक्षकों की व्यावसायिक दक्षता का मूल्यांकन करना होगा । आप इस बात से सहमत होंगे कि सभी शिक्षक सभी व्यावसायिक कुशलताओं में समान रूप से दक्ष नहीं हो सकते । अतः आपसे आशा की जाती है कि आप निसंकोच एवं निर्भय होकर मूल्यांकन कार्य करें । आपसे किसी पर्यवेक्षक का नाम नहीं पूछा जा रहा है। अतः किसी प्रकार के व्यक्तिगत आक्षेप का भी डर नहीं होना चाहिये । आपके द्वारा दिये गये मूल्यांकन के आधार पर पर्यवेक्षकों की व्यावसायिक कुशलता को सुधारने का प्रयास किया जायेगा । आपके उत्तर पूर्णतः गुप्त रखे जायेंगे एवं केवल शोध कार्य के लिये प्रयुक्त किये जायेंगे ।

टिप्पणी 2 - प्रश्नों के सामने दिये हुए पैमानों में केवल उनके दोनों सिरे ही परिभाषित हैं मध्य के बिन्दुओं की परिभाषा का आप स्वयं अनुमान लगा सकते हैं और इसके आधार पर किसी बिन्दु पर अपने मतानुसार सही का चिन्ह लगा सकते हैं। कृपया सही का चिन्ह किन्हीं दो बिन्दुओं के मध्य में ही लगाएं ।

1- आपके पर्यवेक्षक आपको समझाने का कितना प्रयास करते थे

बहुत अधिक ——|——|——|—— बहुत कम

2- आप किस सीमा तक अपने पर्यवेक्षकों द्वारा किये गये शिक्षण कार्य को समझते थे ।

पूर्णतः ——|——|——|—— कभी नहीं

3- आपके पर्यवेक्षक अपने शिक्षण कार्य में श्यामपट का कितना प्रयोग करते थे

बहुत अधिक ——|——|——|—— कभी नहीं

4- आपके पर्यवेक्षकों का श्यामपट लेख कैसा था ।

उत्तम ——|——|——|—— बहुत खराब

5- आपके पर्यवेक्षक श्यामपट पर रेखाचित्र बनाने में कितने कुशल थे ।

बहुत अधिक ——|——|——|—— बहुत कम

6- क्या आपके पर्यवेक्षक अपने शिक्षण में विषय वस्तु को संगठित करने के लिये उसे लिखकर कर लाते थे ? हाँ/नहीं

7- अपने अध्यापन को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए आपके पर्यवेक्षक कक्षा में उदाहरणों का प्रयोग किया करते थे ।

सदैव ——————————————— कभी नहीं

8- शिक्षण के समय क्या आपके पर्यवेक्षकों के स्वर का उतार चढ़ाव ठीक होता था? हाँ/नहीं

9- आपके पर्यवेक्षकों द्वारा किया गया वाचन क्या उचित स्वर एवं लय में होता था ? हाँ/नहीं

10- आपके पर्यवेक्षकों का अंग्रेजी भाषा का उच्चारण कैसा था ?

बहुत अच्छा ——————————————— बहुत बुरा

11- आपके पर्यवेक्षकों का हिन्दी भाषा का उच्चारण कैसा था ?

बहुत अच्छा ——————————————— बहुत खराब

12- क्या वे धारा प्रवाह बोलते थे हाँ/नहीं

13- क्या आपके पर्यवेक्षकों में सहायक सामग्री बनाने हेतु उचित निर्देशन देने की योग्यता थी । हाँ/नहीं

14- क्या आपके पर्यवेक्षक निम्नांकित उपकरणों का प्रयोग जानते थे ?

1- प्रोजेक्टर हाँ/नहीं
2- टेप रिकार्डर हाँ/नहीं
3- कैमरा हाँ/नहीं

- -

- -

15- निम्नलिखित में से आपके पर्यवेक्षक कौन सी सहायक सामग्री तैयार कर सकते थे ?

1- चार्ट हाँ/नहीं
2- मॉडल हाँ/नहीं
3- अन्य कोई सहायक सामग्री (कृपया लिखिए)

- -

- -

प्रविधियों का प्रयोग करते थे ?

हमेशा — — — — कभी नहीं

17- क्या आपके पर्यवेक्षक कक्षों को पढ़ाने में आनन्द लेते थे ? हाँ/नहीं

18- क्या आपके पर्यवेक्षक "प्रदर्शन पाठ" को पढ़ाने में आनन्द लेते थे ? हाँ/नहीं

19- क्या आपके पर्यवेक्षक कक्षा में आपकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं को ध्यान में रखते थे ?

यदि हाँ तो वे किस प्रकार ध्यान रखते थे

- -

- -

20- आपकी लिखाई सुधारने के लिये आपके पर्यवेक्षक क्या करते थे ?

- -

- -

- -

21- क्या आपके पर्यवेक्षक आपकी आलोचना आपके सहपाठियों के सम्मुख कर देते थे ? हाँ/नहीं

22- क्या आपके पर्यवेक्षक आपके साथ विद्यार्थियों का व्यवहार न करके सहकर्मियों का सा व्यवहार करते थे ? हाँ/नहीं

23- क्या आपके पर्यवेक्षक आपमें स्वच्छता पूर्वक कार्य करने की आदत डालने का प्रयास करते थे ? हाँ/नहीं

24- क्या आपके पर्यवेक्षक आपको शिष्टता पूर्वक व्यवहार करने की शिक्षा देते थे ? हाँ/नहीं

25- क्या आप कक्षा में अपने पर्यवेक्षक से प्रश्न पूछते थे ? हाँ/नहीं

26- क्या आपके पर्यवेक्षकों को कक्षा में कभी परेशानी पूर्ण परिस्थिति (प्रश्न का उत्तर न दे सकने या किसी विषय वस्तु को स्पष्ट रूप से न समझा सकने से उत्पन्न) का सामना करना पड़ता था । हाँ/नहीं

यदि हाँ तो उन परिस्थितियों का उल्लेख कीजिए एवं बतलाइये कि आपके पर्यवेक्षक उन परिस्थितियों का सामना किस प्रकार करते थे ।

- -

- -

27- क्या आपके पर्यवेक्षक निम्नांकित छात्रों पर विशेष ध्यान देते थे ?

'अ' प्रतिभावान छात्र? हाँ/नहीं

'ब' अध्ययन में पिछड़े छात्र हाँ/नहीं

कृपया उल्लेख कीजिए कि आपके पर्यवेक्षक उपर्युक्त छात्रों की समस्याओं का समाधान कैसे करते थे ?

- -

- -

- -

28- क्या आपके पर्यवेक्षक आपको सरलता पूर्वक उपलब्ध होते थे ? हाँ/नहीं

- -

- -

" व्यक्तिगत विशेषताएं "

पर्यवेक्षक छात्राध्यापकों से किस रूप में सम्बन्ध स्थापित करते हैं इससे सम्बन्धित कुछ व्यवहारात्मक परिस्थितियों की विशेषताएं (Characteristics of behavioural situation) नीचे दी गई है। कृपया प्रत्येक कथन का उचित उत्तर देते हुए बतायें कि आपके पर्यवेक्षकों के लिये कौन सा कथन उपयुक्त था।

1- क्या आपके पर्यवेक्षक छात्राध्यापकों के मध्य जनप्रिय होने का प्रयास करते थे ? हाँ/नहीं

2- आपके पर्यवेक्षक आपसे सम्बन्ध स्थापित करते समय भी अपने कार्य की व्यावसायिक प्रतिष्ठा को बनाये रखते थे ? हाँ/नहीं

3- क्या आपके पर्यवेक्षक पारस्परिक सम्बन्ध में आप लोगों के साथ अध्यापक का दृष्टिकोण न रखकर एक भद्र पुरुष का शिष्टाचार पूर्ण (gentlemanly) दृष्टिकोण रखते थे ? हाँ/नहीं

4- जब कभी आपके व्यवहार में शिष्टाचार की कमी रह जाती थी तो क्या आपके पर्यवेक्षक आपको डाँट देते थे ? हाँ/नहीं

5- क्या आपके पर्यवेक्षक आपके अध्यापन की कटु आलोचना करने से नहीं चूकते थे ? हाँ/नहीं

6- क्या आपके पर्यवेक्षक आपके शिक्षण में सुधार लाने के लिये नकारात्मक आलोचना करने की अपेक्षा रचनात्मक सुझाव देते थे ? हाँ/नहीं

7- क्या आपके पर्यवेक्षक भिन्न-भिन्न छात्राध्यापकों को निर्देशन देने में उनके व्यक्तिगत अन्तर का ध्यान रखते थे ? हाँ/नहीं

8- क्या आपके पर्यवेक्षक आप लोगों के कार्य का मूल्यांकन वस्तुनिष्ठ ढंग से करते थे ? हाँ/नहीं

9- क्या आपके पर्यवेक्षक आपको अपनी बात कहने का पूरा पूरा अवसर देते थे ? हाँ/नहीं

10- जब कभी आप अपने पर्यवेक्षक के अनुमानानुसार अध्यापन में उच्च स्तर नहीं प्राप्त कर पाते थे तो क्या वे जोर से बिगड़ जाते थे ? हाँ/नहीं

11- क्या आपके पर्यवेक्षक आपकी कार्यकुशलता को वांछनीय स्तर तक पहुँचाने के उद्देश्य से बिगड़ जाया करते थे ? हाँ/नहीं

12 - क्या आपके पर्यवेक्षक आपके देर से आने पर ध्यान नहीं देते थे यदि उस समय उनके पास खाली समय होता था ? हाँ/नहीं

13- क्या आपके पर्यवेक्षक आपकी आलोचना आपके सम्मुख ही करते थे ? हाँ/नहीं

14- क्या आपके पर्यवेक्षक किसी योग्य छात्राध्यापक को दूसरे छात्राध्यापकों के सम्मुख उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करते थे? हाँ/नहीं

15- क्या आपके पर्यवेक्षक आपकी शिकायतों को सुनी अनसुनी कर देते थे ? हाँ/नहीं

16- क्या आपके पर्यवेक्षक अपने और आपके बीच दूरी रखते थे ? हाँ/नहीं

17- क्या आपके पर्यवेक्षक आपके प्रति कोई निश्चित दृष्टिकोण रखते थे जिसमें परिवर्तन नहीं होता था ? हाँ/नहीं

18- क्या आपके पर्यवेक्षक अपने व्यवहार और पहनावे में चुस्त रहने की कोशिश करते थे ? हाँ/नहीं

उपभाग – ख

शैक्षिक गुण

कृपया निम्नलिखित कथनों के विषय में अपना मत प्रकट कीजिए :-

1- अधिकांश रूप में शिक्षा सिद्धान्त में हुई प्रगतियाँ अनुसंधान की देन है । हाँ/नहीं

2- शिक्षा में हुए अनुसंधानों से प्रभावी ढंग से पढ़ाने के उद्देश्य को पूरा करने में अत्यधिक सहायता मिली है। हाँ/नहीं

3- शिक्षा के क्षेत्र में हुई प्रगति आलोचनात्मक चिन्तन और अर्न्तदृष्टि के परिणाम है न कि व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक अनुसंधान के । हाँ/नहीं

4- शिक्षा क्षेत्र में हुए अनुसंधानों ने शिक्षण व्यवसाय को कोई लाभ नहीं पहुँचाया है । हाँ/नहीं

5- (1) क्या आपके पास अपना व्यक्तिगत पुस्तकालय है? हाँ/नहीं

(2) यदि हाँ तो मुख्य विषयों के नाम तथा उनमें वर्तमान पुस्तकों की अनुमानित संख्या लिखिए ।

- -
- -
- -
- -
- -
- -

(3) क्या बहुधा आप जिन पुस्तकों को पढ़ना पसन्द करते है उनकी निजी प्रतिलिपि खरीद लेते है ? हाँ/नहीं

यदि नहीं तो आप किस प्रकार से पुस्तक को प्राप्त करते है

अ) पुस्तकालय से उधार लेना -

ब) सहयोगियों से उधार लेना -

स) पुस्तक विक्रेता से उधार लेना - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

द) अन्य कोई साधन -

- -
- -

(4) आप अपने अवकाश का कितना समय गम्भीर साहित्य के अध्ययन में व्यतीत करते है (कृपया लिखें)

पूरा समय
कुछ समय
बिल्कुल नहीं

(5) कृपया अपने अवकाश के कार्यों के सामने सही का चिन्ह लगाएं ।

मनोरंजक साहित्य पढ़ना — — — — — — — — — — — — — — — —

गम्भीर साहित्य पढ़ना — — — — — — — — — — — — — — — —

खेल खेलना — — — — — — — — — — — — — — — — — —

गेंद —

बाउरी —

टहलने जाना —

शारीरिक व्यायाम — — — — — — — — — — — — — — — — — — —

अभिरुचियों के काम करना — — — — — — — — — — — — — — — —

ललित कलाओं का अभ्यास — — — — — — — — — — — — — — — —

संगीत — — — — — — — — — — — — — —

कला — — — — — — — — — — — — — — —

कविता इत्यादि — — — — — — — — — — — —

अन्य कोई (कृपया लिखें)

— —

— —

6- कृपया लिखिए कि आप दैनिक समाचार पत्र, मैगजीन व व्यावसायिक साहित्य कितना पढ़ते हैं ।

	नियमित रूप से पढ़ना	कभी कभी पढ़ना
दैनिक समाचार पत्र	— — — — — — — —	— — — — — — — —
जनप्रिय पत्रिकाएं	— — — — — — — —	— — — — — — — —
व्यावसायिक पत्रिकाएं	— — — — — — — —	— — — — — — — —
अनुसंधान पत्रिकाएं	— — — — — — — —	— — — — — — — —

APPENDIX V.

QUESTIONNAIRE NO.3.

प्रश्नावली सं० 3

(प्रायोगिक विद्यालयो के प्रधानाध्यापकों/अध्यापकों के लिये)

निर्देश :- आप ने अनुभव करते होंगे कि आपके विद्यालय का शिक्षण-कार्यक्रम उन विद्यालयों के शिक्षण कार्यक्रम से अंशतः भिन्न है जिनमें बी०एड० प्रशिक्षण विद्यालयों या शिक्षा विभागों के छात्राध्यापक प्रयोगात्मक कार्य के लिये शिक्षण कार्य नहीं करते हैं। आपके विद्यालय में बी०एड० प्रशिक्षण के छात्राध्यापक शिक्षण कार्य के लिये आते है इस कार्यक्रम के फलस्वरूप आपके कार्य में अन्तर आता है। इस सम्बन्ध में आपकी निष्पक्ष और स्वाभाविक प्रतिक्रिया को जानने के लिये ही इस प्रश्नावली की रचना की गई है । कृपया अपने विचारों और अनुभवों से अवगत कराकर इस " अनुसंधान कार्य " को सफल बनाएँ। आपके विचार पूर्णतः गुप्त रखे जायेंगे और केवल शोध कार्य के लिये प्रयुक्त किये जायेंगे ।

1- क्या छात्राध्यापक आपकी कक्षा को पढ़ाने के लिए विषय वस्तु के चुनाव में आपसे सहायता लेते है ? हाँ ——
नहीं ——

2- यदि हाँ तो छात्राध्यापक ऐसी सहायता किस समय लेते हैं? (उचित स्थान पर सही का चिन्ह( ) लगाइये)

(1) सत्र के प्रारम्भ में ——————
(2) बीच-बीच में ——————
(3) दैनिक ——————
(4) अन्य ——————

3- क्या छात्राध्यापक कक्षा शिक्षण की विधि (Method) के बारे में आपसे सलाह लेते हैं?

(1) अधिकतर ——————
(2) कम ——————
(3) बिल्कुल नहीं ——————

4- क्या छात्राध्यापक कक्षा को नियंत्रण में रखने के लिये आपकी सहायता लेते हैं?

(1) अधिकतर ——————
(2) कम ——————
(3) बिल्कुल नहीं ——————

5- क्या छात्राध्यापक किसी पाठ्य सामग्री को कितने दिनों में समाप्त किया जाय इस विषय में आपसे राय लेते है ? हाँ/नहीं

6- जब छात्राध्यापक आपकी कक्षा को पढ़ाते है तो उस समय सामान्यता आप क्या करते हैं ?

7- नीचे कुछ ऐसी परेशानियों का वर्णन है जिनका सामना उन विद्यालयों के अध्यापकों को करना पड़ता है जहाँ बी0एड0 के छात्राध्यापक पढ़ाते है । उनमें से जिनका अनुभव आपको हुआ हो उनके सामने 'हाँ' जिनका अनुभव न हुआ हो उनके सामने 'नहीं' के स्तम्भ में सही का चिन्ह लगाइये ।

(अ) छात्राध्यापकों के पढ़ाने से छात्र शरारती हो जाते है	हाँ	नहीं
(ब) छात्रों का कोर्स पिछड़ जाता है।	"	"
(स) छात्र सहायक सामग्री द्वारा पढ़ने के आदी हो जाते है	"	"
(द) छात्रों में स्वाध्याय की आदत समाप्त हो जाती है।	"	"
(य) छात्र गृहकार्य करने से जी चुराते है	"	"
(र) अध्यापकों के प्रति उनके मन में आदर कम हो जाता है क्योंकि वे रोजाना देखते है कि छात्राध्यापकों की आलोचना की जाती है।	"	"
(ल) छात्राध्यापक कभी कभी विषयवस्तु का गलत ज्ञान दे जाते है ।	"	"

(व) छात्राध्यापकों के पढ़ाने से आपको यदि किसी और परेशानी का अनुभव होता हो तो कृपया नीचे लिखें ।

- -

- -

- -

- -

8- जहाँ पर बी0एड0 के छात्राध्यापक पढ़ाते है वहाँ के अध्यापकों को कुछ सुविधाएं रहती है। नीचे कुछ सुविधाएं दी गई है उनमें से जिनसे आप सहमत हों उनके सामने 'हाँ' और जिनसे असहमत हों उनके सामने 'नहीं' के स्तम्भ में कृपया सही का चिन्ह लगाइए ।

(अ) विद्यालय के अध्यापकों का कार्य-भार हल्का हो जाता है।	हाँ	नहीं
(ब) विद्यालय के अध्यापकों को शिक्षण के प्रगतिशील विधियों से सम्बन्ध बना रहता है।	"	"
(स) बी0एड0 के अध्यापकों से परिचय होने से शैक्षिक/सामाजिक क्षेत्र बढ़ जाता है।	"	"

10- क्या बी०एड० के अध्यापक आपकी बातों को उचित महत्व देते हैं ?

हाँ ———

नहीं ———

11- क्या बी०एड० के अध्यापक शिक्षण विधि के विषय में आपसे बातें करते हैं?

हाँ ———

नहीं ———

12- क्या बी०एड० के अध्यापक आपसे छात्राध्यापकों के शिक्षण का पर्यवेक्षण करने का अनुरोध करते हैं?

हाँ ———

नहीं ———

13- क्या आप इसे पसन्द करते हैं कि बी०एड० के छात्राध्यापक आपके विद्यालय में प्रशिक्षण के लिये अध्यापन करें ?

हाँ ———

नहीं ———

यदि नहीं, तो क्यों ?

कृपया अपने विषय में निम्नलिखित विवरण दीजिए :-

1- नाम - 2- आयु - - - - - - - -

3- शैक्षिक योग्यता - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

- -

4- शिक्षण अनुभव ———वर्ष ———माह

5- शिक्षण विषय (1) - - - - - - - - - - - - - - - -(2)- - - - - - - - - - - -

(3) - - - - - - - - - - - - - - - -(4) - - - - - - - - - - - - -

(5) - - - - - - - - - - - - - - - - -

6- पद : (1) प्रवक्ता ———

(2) ट्रेन्ड ग्रेजुएट अध्यापक ———

(3) भाषा अध्यापक - ———

(4) जे०टी० सी० अध्यापक ———

(5) अन्य ———

7- विद्यालय का नाम -

8- तिथि - - - - - - - - - - - - -

APPENDIX VI.

[illegible] SCALE.

[illegible]

RATING SCALE

Section I(A)

DUTIES AND FUNCTIONS OF SUPERVISORS
(Guidance)

Social Instructions:

Below are given certain practices followed by Supervisors who supervise the Practice Teaching of B.Ed. students in Teacher Training Colleges and Departments of Education, while discharging their supervisory duties and functions. You are requested to rate the degree of the helpfulness of these practices for making supervision effective, if it helps S.Ts acquire those skills, Personality Characteristics, Attitudes and Habits necessary for becoming efficient teachers of boys and girls.

Please place a check mark (✓) against a particular item at-

Pt. 5	if you consider the practice		Extremely helpful
Pt. 4	"	"	Moderately helpful
Pt. 3	"	"	Neither helpful nor unhelpful
Pt. 2	"	"	Slightly unhelpful
Pt. 1	"	"	Extremely unhelpful

	Extremely helpful	Moderately helpful	Neither helpful nor unhelpful	Slightly unhelpful	Extremely unhelpful
	5	4	3	2	1
1. Ascertaining the preferences of a student Teacher (S.T.) for a particular practising school, and assigning him/her to that School.					
2. Assigning the S.T. to the practising school according to the discretion of the Supervisor in the interests of the S.T.					

	Extremely helpful	Moderately helpful	Neither helpful nor unhelpful	Slightly unhelpful	Extremely unhelpful
	5	4	3	2	1
3. Ascertaining the preference of S.T. for a particular class for teaching and making an assignment accordingly.					
4. Helping the S.T. in analysing the syllabus into lesson units.					
5. Helping the students in determining the teaching points in a lesson.					
6. Asking the S.T. to rehearse the lesson before he/she goes to teach.					
7. Correcting each and every mistake in the very first lesson plan of the S.T.					
8. Correcting each and every lesson plan of the S.T.					
9. S.T. securing a certificate from the Head/subject Teacher of the Practising School to the effect that a lesson has been delivered, when it has not been supervised by the supervisor.					

RATING SCALE

(Section I(B)

DUTIES AND FUNCTIONS OF SUPERVISORS

(Supervision)

Below are given a number of mistakes and wrong practices found among student teachers in their teaching. Although these are all undesirable, yet all of them cannot be corrected equally flawlessly, nor do all of them affect the efficiency of teaching in an equal measure. You are, therefore, requested to rate them on a five point scale, indicating how seriously they affect the efficiency of teaching.

	Very serious	Serious	Neither serious nor non-serious	Non serious	Completely non-serious (may be ignored)
	5	4	3	2	1
1. The S.T. is not able to connect the introductory questions with the statement of the aim(s) of the lesson.					
2. The S.T. asks faulty questions.					
3. The S.T. does not deal satisfactorily with the partly correct answers of the pupils.					
4. The S.T. does not develop the lesson with the help of the pupils.					
5. The S.T. is not able to maintain good discipline in the class.					
6. The S.T. does not encourage the pupils to ask questions.					
7. The S.T. ridicules the pupil, if the pupil's answer is wrong or the pupil's question is oblique.					

	Very serious	Serious	Neither serious nor non-serious	Non serious	Completely non-serious (That is may be ignored)
	5	4	3	2	1
8. The S.T. comes late to the Class.					
9. The S.T. misses the Class without informing the supervisor.					
10. The S.T. is partial to a pupil or group of pupils.					
11. The S.T. is harsh upon the pupils.					
12. The S.T. overlooks the mischief of the pupils which encourages them to do more of it.					
13. The S.T. is unable to explain a concept or process satisfactorily.					
14. There is a mistake in the b.b. summary given by the S.T.					

RATING SCALE

(Section II)

PROFESSIONAL SKILLS OF SUPERVISORS

Below are given a set of professional skills of supervisors. You are kindly requested to rate them with regard to their importance in making supervision efficient.

	Very Important.	Important.	Neither Important nor unimportant.	Unimportant.	Very unimportant.
	5	4	3	2	1
1. Use of the b.b. by the Supervisor in his own teaching in the theory Class.					
2. Sound preparation of the lesson by the supervisor before he goes to take his theory class.					
3. Use of illustrations by the Supervisor in his own Class teaching.					
4. Correctness of pronunciation of supervisor.					
5. Skill of the Supervisor to guide the S.T. in the preparation of material aids.					
6. Following the method of the Training College by the supervisor in his own teaching.					
7. Supervisor maintaining distance with the S.T.					
8. Supervisor treating the S.T. as a co-professional rather than a pupil.					
9. Supervisor stimulating the S.Ts in his theory class to ask questions.					

RATING SCALE
(Section III)
PERSONALITY CHARACTERISTICS OF SUPERVISORS

Below are given a few personality characteristics of supervisors. Kindly rate them with regard to their importance in making supervision efficient.

	Very important.	Important.	Neither important nor unimportant.	Slightly un-important.	Completely un-important.
	5	4	3	2	1
1. Supervisor maintaining the dignity of the profession in his dealings with S.Ts.					
2. Supervisor maintaining a democratic attitude in his relationship with the S.Ts.					
3. Supervisor giving helpful and constructive suggestions rather than negative criticism to improve S.T.'s teaching.					
4. Supervisor giving due consideration to individual differences among S.T.'s in guiding them.					
5. Supervisor giving the S.T.'s full opportunity to express themselves freely.					
6. Supervisor criticising the S.T's only in their presence.					
7. Supervisor [illegible] S.T's.					
8. Supervisor having a flexible attitude towards the S.T.					
9. Supervisor maintaining an authoritarian attitude in his relationship with the S.T.					

RATING SCALE

(Section V)

Indicate on the 5-pt scale how important the following are for making supervision efficient.

	Very impor-tant.	Important.	Neither Imp-ortant nor Unimportant.	Un-important	Very unimpor-tant.
	5	4	3	2	1
Miscellaneous					
1. Modes of Lesson Planning					
(i) Herbartian approach.					
(ii) Evaluation approach.					
(iii) Combination of (1) and (2)					
2. Patterns of Supervision					
(i) Supervising only those student teachers whom the supervisor has guided in planning their lessons.					
(ii) Supervising all the S.Ts in a practising school assigned to the supervisor, whether he has guided them or not.					
(iii) Supervising all the S.Ts in the subject(s) of the supervisor's specialization wherever they may be teaching.					
(iv) Supervising the S.Ts who are teaching the subject of the supervisor's specialization and also S.Ts teaching other subjects. as well.					
3. Modes of supervision					
(i) Supervising every day all the student-teachers assigned to a supervisor for a part or whole of the period, as time permits.					

RATING SCALE

(Section -IV)

ACADEMIC QUALITIES OF SUPERVISORS

Below are given certain statements about the academic qualities of the supervisor. You are requested to rate, on a five point scale, these qualities with regard to their importance in making the supervisor's work effective.

	Very Important.	Important.	Neither Important nor unimportant.	Unimportant.	Very unimportant.
	5	4	3	2	1
1. Supervisor holding the view that researches in education have helped immensely the cause of effective teaching.					
2. The view that researches in the field of education have yielded no beneficial results to the profession of teaching.					
3. Participation in seminars and conferences by the supervisors.					
4. Holding inter-disciplinary discussions in a multifaculty college.					
5. Holding informal personal talks with the S.Ts in order to gain their confidence.					
6. Spending leisure time in serious reading.					
7. Spending leisure time in reading Daily News Papers.					
8. Spending leisure time in reading professional journals.					
9. Building up a personal library.					
10. Carrying out individual researches.					

	Very Important.	Important.	Neither Important nor un-important.	Un-important.	Very Unimportant.
	5	4	3	2	1
3. Modes of Supervision.					
(ii) Supervising one student-teacher for the whole period and neglecting other S.Ts in that period. (Every S.T. is supervised by rotation in this scheme.)					
(iii) Repeated supervision of the same student in the same period at specified intervals.					
4. Mode of Communication of criticisms to the S.Ts by the supervisor.					
(i) By written remarks on the lesson plan itself.					
(ii) By written remarks on a separate commentary sheet.					
(iii) Orally to individual S.Ts.					
(iv) Orally by group discussion.					
(v) Orally in the Class-room itself as and when the mistake occurs.					
5. Measures taken for improving b.b. writing.					
(i) Giving the S.Ts written work.					
(ii) Providing the S.Ts incentives in terms of marks and verbal appreciation of good handwriting.					
(iii) Supervisor giving black board practice to S.Ts with instructions in the techniques of writing.					
(iv) Asking S.Ts to practice b.b. writing at home on the roller board.					
(v) Allotting a separate period for supervised b.b. writing.					
(vi) Giving demonstration in good b.b. writing.					

6. Reading material from daily papers and/or periodicals for interviews.

(Please first judge the relevance or irrelevance of the material and mark the relevant ones only).

	Irrelevant	Relevant	Rank for relevant items only.
(i) Editorials			
(ii) Political News			
(iii) Advertisements			
(iv) Crime and Sensational news.			
(v) Sports News			
(vi) Market Changes			
(vii) Science Notes			
(viii) Short stories.			
(ix) Book Reviews			
(x) Serious articles.			
(xi) Poems			
(xii) Readers Forum			
(xiii) Research articles.			

APPENDIX VII.

OBSERVATION SCHEDULES.

Women's Training College
Dayalbagh, Agra

RESEARCH DEPARTMENT

"Project Supervision"

Observation Sheet (vide item No. 4(b) under the heading "Procedure" at page 2 in the Revised Synopsis of "Project Supervision").

(Note to Experts observing the Supervisor. Please fill in Sec. I Items 1-5 before starting the observation of supervisors and item 6 at the close of observation.

I

1. Name and Location of school where observation is being made. ______________________________

2. Date of observation ______________________________

3. Name of Supervisor ______________________________

4. Name of S.T. giving the lesson. ______________________________

5. Class __________ Period __________ to __________ A.M./P.M.

6. a) Topic of lesson ______________________________

   b) Sub Topic ______________________________

7. Duration of Supervision by the supervisor. From __________ To __________ A.M./P.M.

II

Note to Experts (please observe the supervisor while he/she discharges his/her functions as supervisor of S.T. inside the class which S.T. is teaching and mark one tally against the relevant item as often as he/she does the activity mentioned in the item).

Supervisor's activities inside the class room in which S.T. is Teaching.

	Orally during the lesson.	Through remarks written in the Lesson Plan book while the lesson is in progress.
(i) Gives Suggestions to improve the questioning.		
(ii) Points out errors in teaching.		
(iii) Gives suggestions to improve b.b. writing.		
(iv) Communicates criticism of teaching.		
(v) Communicates appreciation of teaching.		

	Orally during the lesson.	Through remarks written in the lesson plan book while the lesson is in progress.
(vi) Points out what is lacking in class room discipline.		
(vii) Gives oral instructions about the proper use of material aids.		
(viii) Draws attention to mannerisms or other undesirable habits.		
(ix) Any other remark by supervisor.		

Supervisor's activity (directed to ST) outside the classroom

Note to experts- (Please note whether the supervisor meets the S.T. when lesson is over and discusses the lesson; if so mark tallies against the relevant items below.)

(1) Points out the errors in ST's teaching.	
(2) Gives suggestions to S.T. to improve the teaching.	
(3) Any other (Please indicate and mark tallies)	

III

Supervisor's activity (directed to pupils in the class taught by ST)

1. Asks them to sit properly.	
2. Asks them to attend to the class-room teaching.	
3. Looks into the class notes of pupils.	
4. Helps settle disputes among pupils.	
5. Any other	

IV

Please comment below on aspects of Supervision you have observed not covered by the observation sheet.

V

<u>Note to the Expert observers</u>

Please write your comments on the Supervisor's work in terms of the Profoma attached.

Place ____________

Date ____________

____

Signature of Expert Observers

Women's Training College, Dayalbagh, Agra

EVALUATION LESSON REPORT FORM

Term ____________________

Date ____________ Pd. ________

Name ____________________ Qualification ____________________

Class ____________________ Subject ____________________

Recommendation (Lesson Plan) ____________ Topic ____________________

Recommendation (Execution) ____________

1. Teacher (Personality, Speech, Manners, Knowledge, Confidence etc.)

2. Aims of the lesson:—How conceived, how followed and how achieved)

3. Notes of lesson (Methodical or not, followed rigidly or flexibility allowed).

4. Method of Teac hing (Preparation and motivation, Ability to instruct, questioning).

5. Class Discipline (Mechanical or spontaneous, ability to deal with all kind of children).

6. Blackboard Work (writing and sketch work its speed smooth, free and evenness, in st. lines or not summery)

7. Teaching aids used (What and How)

8. Written work and its supervision (Mechanical or real).

9. Any special remark

APPENDIX VIII.

LIST OF COOPERATING SCHOOLS.

List of the Practising Schools

S.No.	T.T.C./B.Ed. Deptt.	Practising Schools
1.	Almora College, Almora	1. Ramja Inter College. 2. Almora Inter College.
2.	Dayanand Arya Kanya College, Moradabad.	Baldeve Inter College, Moradabad.
3.	Bareilly College, Bareilly.	1. Model School, Bareilly. 2. Kasturba School, Bareilly.
4.	R.E.I. Dayalbagh, Agra.	Sindhi Model School, Agra.
5.	Bakunthi Devi Kanya College, Agra.	Murari Lal Inter College, Ag
6.	R.B.S. College of Education, Agra.	Vbtoria Inter College, Agra.
7.	Women's Training College, Agra.	Ram Swarup Singhal Girl's Inter College, Agra.
8-	Hindi College, Moradabad	Gokuldas Girl's Inter College, Morddabad.
9.	Gokul Das College, Moradabad	Pratap Singh Hindu Girl's Inter College, Moradabad.
10.	Vardhman College, Bijnor.	1. Govt. Inter College, Bijnor.
11.	S.D. College, Aligarh.	Maheshwari Inter College, Aligarh
12.	Vasehney College, Aligarh.	1. D.A.V. Balika School , Aligarh. 2. Cherengee Lal Inter College, Aligarh.

APPENDIX XI.

SYNOPSIS OF THE [illegible] PROJECT.

Women's Training College, Dayalbagh,
(Agra -5)

Research Department

"Project Supervision"

" Evaluation of Current Supervisory Practictices"

(Synopsis)
(Revised in the light of experience gained in executing the project).

INTRODUCTION:

Supervision plays a very significant role in the internship programme of teacher-education. It is true that a teacher-training programme should provide for and organise adequate and effective student -teaching, but without proper supervision and evaluation, it will fail to serve its purpose. What is the concept of supervision? What are its objectives? What are the Duties and Functions of an efficient Supervisor? How can supervision be made more useful and effective? What are the current supervisory practices? In what way do they differ from the ideal practices? Those are some of the question which need to be answered after thorough investigation.

Teacher educators at the Seminars at Allahabad, Bhubaneshwar and Baroda gave some thought to a few of these problems but in a very cursory way. Their views were based only on their own personal experience in the field. It is observed from the reports of these Seminars that the concept of an ideal supervisor and the objectives of supervision have not been uniformly visualised by teacher-educators. No research study involving field-work, seems to have been conducted by them in this area of teacher-training. Hence there is need to study and evalute the current supervisory practices with a view to raising the standard of efficiency of supervision. Hence, the Women's Training College, Dayalbagh, Agra has taken up a Research Project in " Evaluation of Current Supervisory Practices".

AIMS AND OBJECTIVES OF THE PROJECT:

1. To analyse the job of a Supervisor.

2. To survey the current supervisory practices.

3. To formulate-

(a) the Duties and Functions,)
(b) the Professional skills,)
(c) The personality characteristics,) of an efficient (ideal) Supervisor.
and (d) the Academic qualities)

4. To estimate the nature and degree of the lack of congruity between 2 and 3.

5. To suggest ways and means for bridging the gap between 2 & 3.

DELIMITATION:

1. Delimitation of the problem

Supervisory practices relating to practice-teaching alone will be surveyed.

Delimitation of the sample

The investigation will be confined to the study of supervisory practices in the B.Ed. Colleges under the jurisdiction of the Agra University.

METHODS : Descriptive Survey Method.

TECHNIQUES: Interview, observation , Rating, Questionning and appropriate statistical Techniques.

TOOLS: 1. Interview Schedules.
2. Rating Scale
3. Observation Sheet.
4. Questionnaire and opinionnaire.

Procedure

1. Survey of Related Literature.
2. Listing by group discussion the qualities which are the expected outcomes of the Practice Teaching Programme for B.Ed. students.

3. Listing
   a) the Duties and Functions.
   b) Professional skills
   c) Personal Characteristics.
   d) Academic qualities of Supervisors.
   (This will be done through group discussions, study of literature and the personal experience of the investigators)

4. Survey of Current Supervisory Practices through questionnaire
   a) Principals T.T.C./ Heads of Departments of Education.
   b) Supervisors.
   c) Student Teachers
   d) Heads and Teachers of Practising Schools,
   e) Analysis of Lesson Plan books, criticisms and Sessional Reports given by supervisors.
   f) Observation of Supervisors by an Expert Team consisting Principal T.T.C. Senior Professors of T.T.C and Principal of Practising School.
   g) Interview with a representative sample of 4(a),(b).(c) &(d)
5. Determining the profile of an efficient (ideal) Supervisor through a Rating Scale administered to Principals T.T.C's,Heads of University Departments of Education, D.Directors and Inspectors and eminent Educationists involved in Secondary Education
6. Determining the extent of the lack of congruity between 4 and 5 (the actual and the ideal).
7. A questionnaire to those mentioned at items 5 to findout the reasons for the gaps between 4 and 5 and ways and means for bridging the gaps.

8. Analysis, discussion, findings conclusions and suggestions.